

GYANKUNJ

BBS COLLEGE JOURNAL

Volume - 1

Issue 1

December2018

BBS College
Sourvenir & Documentary Sub-Committee

Chairman

Shri Sanjay Rana
Principal

Convenor

Mrs Sunita Lama
Vice Principal

Member

Shri Kunjan Lama

Member

Dr. Krishna Chauhan

BBS College

Literary Sub-Committee

Chairman

Mrs Sunita Lama

Vice Principal

Convenor

Mrs Sarita Gurung

Members

Dr. Rita Nameirakpam

Mrs Madhavi Kumari

Dr Tek Narayan Upadhaya

Miss Diana Shadap

Mr Vivekananda Gautam

Miss Shanti Thapa

Contributing Departments

HINDI

Dr. Bikram Thapa (HOD)

Mrs. Reena Regmi

Dr. Rajiv Kumar

KHASI

Mr. H. S. Nongbri (HOD)

Miss Diana Shadap

Miss Lahunshisha Warjri

Mr. Kitboklang Nongphlang

NEPALI

Dr. Tek Narayan Upadhaya (HOD)

Mrs. Pinky Thapa

Mrs. Sushma Shahi

Content

हिंदी

| | | | |
|----|---|----------------------------|-------|
| 1. | पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति | - डॉ. विक्रम थापा | 1 |
| 2. | पूर्वोत्तर भारत में हिंदी | - डॉ. श्रुति पांडेय | 2-4 |
| 3. | पूर्वोत्तर भारत साहित्य और संस्कृति | - अलोक कुमार | 5-9 |
| 4. | पूर्वोत्तर भार ओर हिंदी यात्रा वृत्तांत | - सुनील कुमार | 10-12 |
| 5. | दलित स्त्री आंदोलन तथा साहित्य | - प्रा. वजरंग बिहारी | 13-29 |
| 6. | राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य | - डॉ. फिल्मेका मारवानियांग | 30-36 |

Khasi

| | | | |
|----|-----------------------------|-------------------------|-------|
| 1. | KEYNOTE ADDRESS | ~ Prof H.S.Nongbri | 36-37 |
| 2. | Ka Jingtbit-Kren Kum Ka ... | ~ Prof . D.R.L.Nonglait | 38-42 |
| 3. | KI KTIEN TNAT HA KA.... | ~ Mrs. I.M. Nongbet | 43-46 |
| 4. | Ka Ktien Khasi Ka Bor.... | - Dr. Sukjai Swer | 47-51 |

नेपाली

| | | | |
|----|---|--------------------------|---------|
| 1. | पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा-संस्कृतिको विकास... | - प्रा. मोहन पी. दाहाल | 52-54 |
| 2. | पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषिक समाजको... | - डा. सञ्जय बान्तवा | 55-65 |
| 3. | पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली लोकसाहित्य... | - डा. खेमराज नेपाल | 66-78 |
| 4. | पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा साहित्यको... | - डा. खगेन शर्मा | 79-84 |
| 5. | मेघालयमा नेपाली भाषा-साहित्यको... | - डा. टेकनारायण उपाध्याय | 85-104 |
| 6. | असममा नेपाली भाषा साहित्यको... | - डा. दैवकी देवी तिमिना | 105-123 |

Editorial

It gives immense pleasure to present the first college journal of Buddha Bhanu Saraswati College entitled; 'Gyankunj'. The importance of language as means of communication to understand each other cannot be overlooked, as each and every community has its own language to propagate information about itself, hence the proposal to organise seminar in the three language(s) Hindi, Khasi and Nepali which is being taught as Honours course for BA in the college was taken up to commemorate the 25th year of establishment of the college by the Silver Jubilee Celebration Committee headed by Shri. D.B. Gurung, President Governing Body.

The need to organise the seminar in the three languages for which the college offers Honours level course for Bachelor of Arts were felt for the following reason;

Hindi as national language should be popularized amongst the students of the region so as to enable them understand the literature and culture of mainland India in its totality.

Of late the Khasi Author Society is demanding for recognition of the Khasi language in the 8th schedule of the constitution of India, and for the college offering Honours course in Khasi for Bachelor of Arts, the recognition of the Khasi language is a cause which should be supported for the benefit and welfare of the students as well as the state.

Nepali as one of the subject for the Honours course and the language recognized in the 8th schedule of the constitution should be upheld and popularized amongst the students speaking Nepali language for there is ample job opportunity for those students who are in tune with the Nepali language and it is often found that the opportunity goes untapped.

With the above idea in mind the Head of Department(s) Hindi, Khasi and Nepali of the college were requested to approach Prof. D.K Choubey, Department of Hindi, NEHU, Dr. Streamlet Dkhar, Department of Khasi, NEHU, Dr. Puspharaj Dahal, Department of Nepali, North Bengal University to feel the pulse about the and possibility for organising the seminar(s) proposed.

Once assured, the task for organising the seminar in Hindi, Khasi and Nepali was bestowed upon the literary sub-committee and the following resource persons and paper presenters Prof. Bajrang Bihari Tiwari, Dr. Dinesh Kumar Chaubey, Dr. S Pandey, Dr. M. Pandey, Dr. M. Marbaniang, Dr. MP Pandey, Dr. G. S. Dkhar, Shri A Kumar, Shri S Kumar, Dr. Bikram Thapa, Shri H S Nongbri, Dr. S Dkhar, Dr. S. Lamare, Dr. S Swer, Prof. D R L Nonglait, Mrs I M Nongbet, Dr. M P Dahal, Dr. S Bantawa, Dr. K Nepal, Dr, K Sharma, Dr. T N Upadhyay, Dr. D D Timsina were invited for the seminar(s).

Accordingly, the seminar was divided into three sections, Hindi, Khasi and Nepali. The first seminar organised was for Hindi on the 22nd September 2018 under the theme 'Purvottar Bharat Me Hindi Ki Sthiti' then for Nepali on 17th November 2018 under the theme 'Purvottar Bharatma Nepali Bhasha-Sa-hitya Ko Vikash' and Khasi on 24th November 2018 under the theme 'Im Ka Ktien Im Ka Jaitbynriew'

The paper presented in the seminar(s) by the resource persons have been complied and published in the first journal of the college, entitled 'Gyankunj,' for the benefit of avid readers interested in the

subjects. The journal 'Gyankunj' which contains the original opinion and views of the resource persons and paper presenters will definitely benefit the students and avid readers of the particular subjects.

I take this opportunity to thank, the Governing Body and the Silver Jubilee Celebration Committee for bestowing the responsibility to organise the seminar and to publish the journal 'Gyankunj' on behalf of the college. Prof, D. K. Choubey, Prof Streamlet Dkhar and Dr. M. P. Dahal who needs a special mention here for supporting and guiding the college in the organisation of the seminar. The seminar would have not been possible without the resource persons and paper presenters and as such the college is indebted to them for their valuable presence and resourceful presentation. I also take this opportunity to thank the members of the literary sub-committee and the Head of Department(s) for organising the seminar, and member of teaching, non teaching staffs and students participants for participating in the seminar(s) organised. Last but not the least, I also thank M/s Printing Zone for printing the valuable research materials in the college journal 'Gyankunj'.

Sunita Lama

Convenor

Souvenir & Documentary Sub-Committee

पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी की स्थिति एक संक्षिप्त रूपरेखा

डॉ. विक्रम थापा

बुद्ध भानु सरस्वती कॉलेज, शिलोंग के हिंदी विभाग द्वारा को एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजन किया गया। आयोजित संगोष्ठी का विषय था 'पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति'। संगोष्ठी कई मायनों में काफी महत्वपूर्ण रही। पहली बार शिलोंग में किसी कॉलेज में ऐसी संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में पूर्वोत्तर क्षेत्रों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास के विभिन्न विषयों पर देश एवं पूर्वोत्तर के विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने विचार रखे। संगोष्ठी में दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी के अलावा प्रो. अवधेश मिश्रा, प्रो. माधवेंद्र प्रसाद पांडेय, प्रो. दिनेश कुमार चौबे, प्रो. दिलीप कुमार मेधी, डॉ. हितेंद्र कुमार मिश्र, डॉ. श्याम बाबू शर्मा, डॉ. फिल्मिका मरबनियांग, डॉ. श्रुति पांडेय, डॉ. जितेंद्र गुप्ता, डॉ. जीन डखार, डॉ. इवलरी के डूनाई, डॉ. राजकुमार झा, डॉ. मैत्रेई पाल आदि उपस्थित थे।

सर्वप्रथम कार्यक्रम की शुरुआत सरस्वती वंदना के साथ किया गया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो. अवधेश कुमार मिश्रा के द्वारा किया गया। इस सत्र में वक्ता के रूप में डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी मौजूद थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि हिंदी का प्रचार-प्रसार महात्मा बुद्ध के द्वारा पूर्वोत्तर में हुआ था। साथ ही शंकरदेव और माधवदेव आदि के द्वारा भी पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रचार-प्रसार पर महत्वपूर्ण भूमि निभाए। लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के समय में पूर्वोत्तर में हिंदी का प्रसार महात्मा गांधी के समय

से माना जा सकता है। इसके साथ-साथ पूर्वोत्तर में विभिन्न संस्थानों द्वारा भी सक्रिय रूप में हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया जा रहा है।

मुख्य वक्ता के रूप में प्रो. दिनेश कुमार चौबे ने अपने विचार रखते हुए कहा कि पूर्वोत्तर के साहित्य को अनुवाद के द्वारा जनसामान्य के लिए सर्वसुलभ बनाया जाए तभी हिंदी का विकास संभव है। इस सत्र का संचालन कार्यक्रम संयोजक विक्रम थापा ने किया और धन्यवाद ज्ञापन सुनीता लामा के द्वारा किया गया।

इसके बाद दूसरे सत्र की अध्यक्षता प्रो. माधवेंद्र प्रसाद पांडेय ने की। इस सत्र में डॉ. दिलीप कुमार मेधी, डॉ. जितेंद्र गुप्ता एवं डॉ. फिल्मिका मरबनियांग मुख्य वक्ता के रूप में थे। डॉ. मेधी ने अपने विचार रखते हुए कहा कि हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए हिंदी और असमिया को एक-दूसरे के साथ जोड़ा जाए।

इसके बाद तृतीय सत्र का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता प्रो. दिलीप कुमार मेधी ने की। इस सत्र में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. श्रुति पांडेय, डॉ. जीन एस डखार, डॉ. राजकुमार झा थे। इसके बाद अंतिम और शैक्षणिक सत्र रखा गया, जिसकी अध्यक्षता प्रो. दिनेश कुमार चौबे ने की। इस सत्र में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. श्यामबाबू शर्मा, पंडित विवेकानंद, डॉ. इवलरी, डॉ. मैत्रेयी पाल मौजूद रहे। प्रतिवेदन प्रस्तुति विभाग की अध्यापिका श्रीमती रीना रेग्मी द्वारा किया गया और धन्यवाद ज्ञापन संयोजक डॉ. विक्रम थापा द्वारा किया गया।

पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी

डॉ. श्रुति पांडेय

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपक भी होता है जिसके आलोक में युग-विशेष 'व्यक्ति' एवं 'समाज' के आपसी रिश्तों की पड़ताल करता है। 'व्यक्ति' जहाँ निजत्व की सीमित अवधारणा से सम्बद्ध होता है, वहीं 'समाज' व्यक्ति की 'सामूहिक चेतना' से परिभाषित होता हुआ 'लोक' के विराट सांस्कृतिक-बोध की व्याख्या करता है। ऐसे में साहित्य 'व्यक्ति' एवं 'समाज' के आपसी दायित्वबोध के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की प्रगति एवं अन्वेषक-वृत्ति की समझ विकसित करता प्रतीत होता है और यहीं वह भूमिका है जिससे समाज के विकास की दिशा द्योतित होती है। इस अर्थ में पूर्वोत्तर भारत की विशाल सांस्कृतिक विविधता साहित्य एवं कला के नव्यतम रूपों को प्रेरित एवं पुष्ट करने की सामर्थ्य ही नहीं रखती वरन् पूर्व-प्रचलित कला रूपों की व्याख्या एवं परिन्यास की क्षमता भी रखती है। प्राकृतिक-सौन्दर्य की छटा यहाँ सिर्फ भौगोलिक विस्तार तक सीमित न होकर लोक के चरित्र की पहचान देती है — यही इसकी विशिष्टता है, खासियत है। कुल मिलाकर कहा जाय तो साहित्य के सौन्दर्य की सीमा जो हो सकती है, उसकी पूरी संभावना यहाँ प्रतीत होती है। यही कारण है कि स्थानीय साहित्यिक विकास बहुत व्यापक न होते हुये भी अपनी ताज़गी एवं टटकेपन के कारण अद्वितीय है। पूर्वोत्तर की तमाम भाषाओं में रचित साहित्य का अपना सौन्दर्य है तथा यह किसी भी विकसित साहित्य से हेठा नहीं है, वरन् ऐसे-ऐसे सौन्दर्य-चित्र इनमें भरे पड़े हैं जिसकी प्रगाढ़ संवेदनशीलता किसी भी अन्य साहित्य में मुश्किल से मिलेगी।

पूर्वोत्तर भारत में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विकास काफी लम्बे समय से होता रहा है और आज यह पूर्वोत्तर भारत की सर्वाधिक प्रचलित सम्पर्क भाषा है। जहाँ तक हिन्दी के साहित्यिक विकास का प्रश्न है, वह अभी यहाँ संक्रान्ति की अवस्था में ही दिखाई देता है। यद्यपि पूर्वोत्तर की तमाम साहित्यिक संस्थाएँ इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, फिर भी अभी लम्बा रास्ता तय करना बाकी है।

पूर्वोत्तर में हिन्दी-संवेदना के विकास की अगर हम बात करें तो इसका इतिहास महात्मा गाँधी से जुड़ता है। सन् 1934 के अप्रैल महीने में जब गाँधी जी 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ' की स्थापना के सिलसिले में गुवाहाटी आये थे, उस समय एक जनसभा में उन्होंने प्रत्येक असमिया से हिन्दी सीखने का अनुरोध किया था। वापस जाकर बाबा राघव दास को वर्धा से 1934 में ही असम भेजा और वहीं से हिन्दी के प्रचार-प्रसार की शुरुआत औपचारिक रूप से इस क्षेत्र में हुई। हिन्दी के प्रारम्भिक उन्नायकों में अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी, गडमूड़ीय गोस्वामी, गोपीनाथ बरदलै, यमुना प्रसाद श्रीवास्तव, कमलदेव नारायण, नीलमणि फूकन इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। 1936 में गुवाहाटी में 'अखिल भारतीय हिन्दी

प्रचार समिति' के गठन से इस कार्य में तेजी आयी । यद्यपि हिन्दी का पहला पत्र 'प्रकाश' डिब्रूगढ़ से श्री विश्वेश्वर दत्त शर्मा के संपादन में सन् 1919 में ही निकल चुका था, परन्तु हिन्दी पत्रकारिता में वास्तविक क्रान्ति बाद में ही शुरू हुई जब 1939 में 'नव-जागृति' तथा उसके बाद 'अकेला', 'नवीन समाज', 'शंखनाद', 'पूर्वज्योति', 'रणभेरी', 'जागृति', 'जयहिन्द' इत्यादि तमाम पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । क्रमशः पूर्वोत्तर के अन्य ~~अन्य~~ प्रांतों से भी पत्र-पत्रिकाओं का ^{प्रकाशन} प्रारम्भ ^{होना} शुरू हुआ । मणिपुर से 'कामाख्या - 'न्यूज लेटर', 'आधुनिक' जैसे पत्रों का प्रकाशन महत्वपूर्ण है । फिर अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैण्ड इत्यादि स्थानों से भी हिन्दी पत्रों का प्रकाशन धीरे-धीरे होना शुरू हुआ ।

पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी साहित्य का विकास प्रारम्भ में छिटपुट रूप में ही होता रहा । निजी एवं वैयक्तिक रुचियों को प्रधान बनाकर साहित्य सर्जना का काम असंगठित ही रहा । वैसे असम के महान संत एवं साहित्य-मनीषि श्रीमंत शंकरदेव साहित्यिक भाव-लोक में हिन्दी की चिन्ताधारा को पहले से ही प्रतिष्ठित कर चुके थे । उन्होंने मैथिली, ब्रजी तथा असमिया के सम्मिश्रण से ऐसी भाषा को जन्म दिया जिसे 'ब्रजबुली' के नाम से जाना गया । वस्तुतः यह 'ब्रजबुली' हिन्दी न होते हुए भी 'हिन्दी-चरित्र' की भाषा ^{रूप} तथा इसकी बोधगम्यता हिन्दी के काफी नजदीक बैठती थी । इस प्रकार शंकरदेव ने अपनी भाषा के माध्यम से असम को शेष भारत के साहित्यिक परिदृश्य से जोड़ा । पूर्वोत्तर में हिन्दी साहित्य एवं संवेदना के विकास का केन्द्र मुख्यतः असम ही रहा है । श्री कमल नारायण देव, डा. विरंचि कुमार बरुआ, डा. वाणीकांत काकती, डा. परेश चन्द्र देव शर्मा जैसे विद्वानों ने असमिया तथा हिन्दी के साहित्य को करीब लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इसके साथ ही डा. हीरालाल तिवारी, डा. कृष्ण नारायण ^{प्रसाद} मागध इत्यादि के प्रयास से भी हिन्दी साहित्य का विकास इस क्षेत्र में स्थायित्व प्राप्त कर सका ।

असम के पश्चात् हिन्दी का दूसरा सबसे बड़ा केन्द्र पूर्वोत्तर में मणिपुर रहा । मणिपुर से हिन्दी का सम्पर्क काफी पुराना है । वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण संस्कृत तथा हिन्दी का थोड़ा-बहुत प्रचलन पहले से ही था । धार्मिक विकास के साथ-साथ 'ब्रजबुली' का प्रभाव यहाँ काफी बढ़ा । मणिपुरी मीरा कही जाने वाली बिम्बावती मजुरी द्वारा कुछ पदों की रचना का उल्लेख भी मिलता है । 'मणिपुर का सनातन धर्म' 1951 में पण्डित अतोम्बापू शर्मा द्वारा लिखित मणिपुर का पहला हिन्दी ग्रन्थ है । इसके पश्चात् श्री एस. गोपेन्द्र शर्मा, डा. रमाशंकर नागर, डा. जगमल सिंह, डा. देवराज, आचार्य राधा गोविन्द थोंगाम, हजारी मयुमगोकुलानन्द शर्मा, याइमा शर्मा, इत्यादि विद्वानों के प्रयास से यहाँ हिन्दी का साहित्यिक विकास अपनी गति पकड़ रहा है ।

नागालैण्ड की पहाड़ियों में हिन्दी अपना स्थान धीरे-धीरे परन्तु स्थायी रूप से बनाती जा रही है । प्रारम्भ में हिन्दी शिक्षण का काम फौज से निवृत्त नगा लोग प्रमुखता से करते थे ।

परन्तु अब हिन्दी के प्रति समर्पित लोगों की यहाँ कमी नहीं है। के. फयोखमो लोथा, एम. पी. तमज्जन आओ, टी. मोआ तमजक इत्यादि विद्वानों के प्रयास से हिन्दी वृद्धिवती हो रही है।

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर का ऐसा प्रदेश है जहाँ सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का सर्वाधिक प्रयोग होता है। सैनिकों तथा व्यापारियों के सम्पर्क के कारण इसमें लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। विश्वविद्यालय तथा कालेजों में उच्च शिक्षा की सुविधा के कारण भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ा है। मेघालय में भी हिन्दी का विकास अत्यन्त तीव्रता के साथ स्थायी भाव में हो रहा है। पूर्वोत्तर हिन्दी अकादमी, पूर्वांचल साहित्य परिषद् जैसी कई साहित्यिक संस्थाएँ तथा पूर्वाञ्जलि, मेघालय-दर्पण इत्यादि पत्रिकाएँ इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग इस दिशा में ठोस प्रयास करता दिखाई पड़ रहा है।

पूर्वोत्तर के दूसरे प्रदेशों यथा त्रिपुरा, मिजोरम में भी हिन्दी का विकास गैर-राजनीतिक तरीकों से क्रमशः हो रहा है। यद्यपि किसी संयोजित एवं संगठित प्रयास का वहाँ अभाव दिखता है, परन्तु वह जन की सामान्य बोलचाल की भाषा बनने की ओर लगातार अग्रसर है और यह अत्यन्त शुभ संकेत है।

पूर्वोत्तर में हिन्दी के तीव्र एवं प्रभावशाली विकास को प्रभावित करने वाली जहाँ कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं, वहीं हिन्दी भाषी प्रदेश के लेखक एवं साहित्यकार कम उत्तरदायी नहीं हैं इसके लिए। ये स्वनामधन्य हिन्दी लेखक अहिन्दी भाषी प्रदेशों के लेखन को दोयम दर्जे का या रद्दी समझने के आदी हो गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हिन्दी इन्हीं की बपौती हो। ऐसे में अहिन्दी भाषी क्षेत्र के लेखक अपने को अपमानित और ठगे से महसूस कर रहे हैं। अहिन्दी भाषी लेखक हिन्दी सीखते हैं, बोलते हैं, हिन्दी में लिखते हैं, समझते हैं फिर भी राष्ट्रीय स्तर पर उनको हिन्दी लेखक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। पहचान का यह संकट हिन्दी के प्रति उनकी आस्था को डिगाता है।

इस सब के बावजूद हिन्दी की संवेदना इस पूरे क्षेत्र में राष्ट्रीय संवेदना के रूप में निरन्तर बढ़ ही रही है। अभी रास्ता बहुत बाकी है तथा वह भले ही आसान न हो, विकास की संभावना के नये नये स्रोत सामने आ रहे हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त स्थानीय समुदाय के लोग अत्यन्त रुचि से हिन्दी को अपना रहे हैं। यह अत्यन्त शुभ-संदेश है तथा यह आशा की जा सकती है कि आने वाले दिनों में हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास इस क्षेत्र में और भी तीव्रता से होगा।

पूर्वोत्तर भारत : साहित्य और संस्कृति

भारत के संदर्भ में जब कभी हम भाषाई और सांस्कृतिक बहुलता की बात करते हैं तो अनायास ही इस देश के उत्तरी पूर्वी राज्यों की इकट्ठी पहचान का स्मरण हो आता है। आकार और आबादी में छोटे-छोटे ये राज्य में आठ ही हैं लेकिन ये एकसाथ मिलकर विशाल भारत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर की सुंदर नजीर पेश करते हैं। ये राज्य सामुहिक रूप से भारत के बहुवचनात्मक वैविध्य की अनेकानेक अर्थ-छवियों से संपन्न उकसा बहुरंगी झिलमिल संसार प्रस्तुत करते हैं। सही मायने में इसी से भारत की अतुल्यता की धारणा पुष्ट होती है। हालांकि सांस्कृतिक बहुवचनीयता अखिल भारत के स्वभाव में या कहें उसके जैविक गुणसूत्र में विद्यमान है। अतः सदियों से इस देश के जन का समूचा जीवन-व्यापार ही इस विस्मयकारी बहुवचनीयता से निर्धारित और संचालित होता रहा है।

सौभाग्य से भारत का उत्तर-पूर्व क्षेत्र आधुनिक-ज्ञान-विज्ञान के आलोक में अपनी जनपदीय भाषाओं और संस्कृतियों के वैविध्य में समृद्ध, विकासमान भारत का नया गौरवशाली चेहरा है। वह एक साथ प्रकृत और आधुनिक है। एक साथ स्मृतिजीवी और रूढ़ परंपराभंजक। वह एक ओर लोक-जीवन में परिव्याप्त मिथकीय कल्पनाओं से जीवन-रस खींचने वाला और बेहतर भविष्य के लिए स्वप्नदर्शी है, तो वहीं दूसरी ओर आधुनिक तर्क-बुद्धि और विवेक के आलोक में अपने समय, समाज और देश-दुनिया के यथार्थ को विवेचित-विश्लेषित कर सकने की सामर्थ्य रखने वाला नवजागरित मनुष्य है। सुदूर उत्तर-पूर्व के छोटे-छोटे जन-जातीय समुदायों और देश के अन्य दुर्गम इलाकों में बसने वाले जन-जातीय समुदायों के बीच 'चेतना में यह मौलिक फर्क है। इस कारण प्रकृति के अत्यंत निकट संपर्क में स्वाभाविक जीवन-यापन करता हुआ भी उत्तर-पूर्व का मानव-समुदाय लंबे समय से आधुनिक और वैज्ञानिक अभिवृत्ति से संपन्न भारत का अपूर्व मानव-समुदाय बना रहा है। अनायास ही डॉ. भूपेन हजारिका की पंक्तियाँ मानस पटल पर उपस्थित हो जाती हैं।

“आकाशी गंगा बिछरा नाई—नाई बिछरा स्वर्ण अलंकार।
निष्ठुर जीवन संग्रामत बिछारे मरमर मात एखार।।

भावार्थ :- आकाश की गंगा मैं नहीं चाहता। न ही मुझे स्वर्ण अलंकार की चाहत है। निष्ठुर जीवन संग्राम में बस मुझे प्यार के दो शब्द चाहिए।”¹

पूर्वोत्तर भारत में छोटी-छोटी आंचलिक बोलियों और भाषाओं की अपूर्व सधनता है। इस दृष्टि से यह देश के समृद्धतम भाषाई क्षेत्रों में परिगणित है। इसमें अनेक ऐसी भाषाएँ हैं जिनको बोलने वालों की संख्या बेहद कम है। ऐसी भाषाएँ खतरे की जद में आती हैं। किसी भाषा के साथ उस भाषाई समुदाय की देश-कालातीत विरासत विन्यस्त होती है। भाषा मनुष्य की चेतना के संसार का अनिवार्य हिस्सा है उसकी स्मृति का अभिन्न हिस्सा। भाषा मनुष्य के मात्र ऐतिहासिक दाय मात्र का वहन नहीं करती, वह इतिहास और समय की जद को अतिक्रमित कर इतिहासेतर समायातीत में प्रवेश करती है और वहीं से वह मनुष्य की जीवनेषणा, जीवनानुराग और जीवन-रस खींच लाती है।

भाषा एकमात्र आश्रय है जहाँ मनुष्य का समग्र कालबोध, अस्तित्व-चेतना और स्मृति का संसार विश्राम पाता है। पूर्वोत्तर भारत का मनुष्य इस अर्थ में सौभाग्यशाली है। वह अनेक छोटी-छोटी बोलियों-भाषाओं के गर्भ में अपनी विशिष्ट पहचान समोए हुए है। इस पहचान में भाषा के समस्त गुण-धर्म शामिल हैं, जिनमें ऊपर कतिपय गुण-धर्म प्रमुख हैं। अलग-अलग अस्मितओं से संपन्न भाषाई समुदाय दूसरे भाषाई समुदायों से बिल्कुल अलग-थलग नहीं है। कोई एक दूसरे से इतनी ही अलग है जितने से एक को दूसरे की पहचान को अतिक्रमित कर सकने की सहूलियत न मिल जाए। बल्कि प्रत्येक भाषा-बोली की ऐसी स्वायत्ततास सुलभ हो सके कि वे एक-दूसरे के परिसर में अबाध आवाजाही भी कर सकें और स्वयंप्रतिष्ठ भी हों। मिलान कुंदेरा के शब्दों में यह 'रेडिकल स्वायत्तता' है।

भाषाएँ शब्दों और वर्णों का निरा संयोजन मात्र नहीं हैं। वे मनुष्य के सामूहिक जीवन के रेशों-धागों से महीन बुनावट में निर्मित होती हैं। हर भाषा की बुनावट के रेशों-धागों में उसका अपना लोक भी विन्यस्त होता है, जो उस भाषाई समुदाय की संस्कृति को वहन करता है। पूर्वोत्तर भारत में तमाम बोलियों-भाषाओं का जो व्यापक संजाल है, जो उस क्षेत्र की सामाजिक संरचना की निर्दिष्ट करता है। यह लोकाधारित बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक सामाजिक संरचना पूर्वोत्तर भारत को शेष भारत से अलग एक विशिष्ट पहचान सुलभ कराती है। इस संदर्भ में पूर्वोत्तर भारत को देखना, पढ़ना, समझना बेहद दिलचस्प अनुभव है।

वही साहित्य भाषा और संस्कृति का प्रमुख घटक है और उत्पाद भी साहित्य है। यह मौखिक भी और लिखित भी। मौखिक साहित्य का स्वरूप लौकिक है – लोक से निःसृत और उसी से विन्यस्त। जिन भाषाओं और बोलियों का लोक से सीधा नाता है, वे अपना साहित्यिक जीवन लोक से उद्भूत काव्य-कथा और कला-रूपों से ग्रहण करती हैं। इन रूपों का प्रमुख

उदगम-स्थल लोक में पुराकाल से प्रचलित मिथ और मिथकीय आख्यान हैं। मिथकीय आख्यान नाना-रूपतामक होते हैं जैसे-दंत-कथा, परी-कथा, पशु-कथा, लोक-नाटिकाएँ, लोक-कथा, लोकगीत, सृष्टि-कथा, छंदबद्ध मुहावरे, कहावतें इत्यादि। ये उपादान जब लोक के जरिए लोक के मौखिक साहित्य का अंग बनते हैं, तो संबद्ध भाषाई और सांस्कृतिक समुदाय की जीवन-शैली को आमूल-चूल प्रभावित करते हुए उसे परिवर्तित भी करते हैं। साहित्य के ये मौखिक रूप पूर्वोत्तर भारत के लोक जीवन का अभिन्न अंग है। लौकिक साहित्य पूर्वोत्तर के भारतीय मनुष्य का सनातन प्रकृति के साथ पवित्र रिश्ते का आख्यान है। यह मनुष्य सदियों से इस पवित्र रिश्ते को जीता और उससे प्रतिकृत होता आया है —

“ओ, जब से पृथ्वी, जल और चट्टानों का है अस्तित्व
हम हैं योंग वेम-ओउ-निउ के पुत्र
ओ, लड़के हों स्वस्थ तथा बलशाली
रहें वे एकता के सूत्र में बँधे।”²

पूर्वोत्तर भारत का साहित्य सर्वाधिक उन्नत रूप में देखने को मिलता है। “21 वीं सदी को पूर्वोत्तर भारत के साहित्य का नवजागरण काल कहा जा सकता है। असमिया साहित्य में शंकरदेव, माधवदेव, इंद्रिरा गोस्वामी और लक्ष्मीनाथ बेजवरुआ के कारण संपूर्ण भारत में प्रतिष्ठित तो है ही, खासी, गारो, मणिपुरी भाषाओं का भी साहित्य अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए कशमशा रहे है। असम प्रांत में बोड़ो, कार्बी, डिमाशा, राभा, मिरि, तिबा, मिसिड. और ग्वालपड़िया बोलियाँ प्रचलित हैं, किंतु इनमें साहित्य की समृद्ध परंपरा केवल बोड़ो और कार्बी में ही मिलती है।”
.....बोड़ो साहित्य के प्रारंभिक कवियों की कविताओं का संकलन रूपनाथ ब्रम्हा और मादाराम ब्रह्माने 1923 ई. में प्रकाशित किया। इस काल के यशस्वी साहित्यकारों में प्रसन्न कुमार खाख्लारी, आनंद ब्रह्म, सतीशचंद्र बसुमतारी, काली कुमार लाहरी, प्रमोदचंद्र ब्रह्म माने जाते हैं।”³

“ वही 20 वीं शताब्दी का प्रारंभिक काल खासी साहित्य का नवजागरण-युग कहा गया। यह खासी समाज के सांस्कृतिक जागरण का भी समय है। इस समय के अनेक कवि आज भी खासी साहित्य का गौरव माने जाते हैं, जैसे-राबोन सिंग, जीवन राय, राघोन सिंग बेरी, हीमोवेल लिड.छो सोसोथाम खासी साहित्य के सर्वोच्च शिखर हैं ये मूलतः प्रकृति और करुणा के सिद्ध कवि थे। इनकी तुलना छायावाद के स्तंभ सुमित्रानंदन पंतजी से की जाती है। सोसोथाम और पंतजी का समय लगभग एक है। सोसोथाम को खासी साहित्य में आधुनिक काव्य शैली का जन्म दाता भी कहा जाता है। सोसोथाम ने अपनी एकलौती पुत्री की अकाल मृत्यु की स्मृति में आज्ञाद पंक्षी नामक कविता लिखी जिसकी तुलना महाप्राण निराला की कविता ‘सरोज-स्मृति’ से की जाती है।

सोसाथाम के समकालीन अन्य कवि जैसे—वाहलांग, ब्रोनाथैक्यू, लेविस ने भी आधुनिक खासी कविता को नया आयाम दिया। सोसाथाम की तरह वाहलांग भी मूलतः प्रकृति के मर्मज्ञ कवि माने गए हैं।⁴

खासी साहित्य के अतिरिक्त गारो साहित्य का भी सर्वाधिक उन्नत देखने को मिलता है आज भी गारो जनजाती के लोग काव्य को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की इच्छा रखते हैं। गारो भाषा के काव्य के आरंभिक कवियों में एम. के. डब्ल्यू. मोमिन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इस काल के अन्य कवियों में मोधू नाथ मोमिन, तूनीराम माराक, कोसन जी, मोमिन तथा फी.बी. मोमिन इत्यादि प्रमुख हैं। इस काल का गारो काव्य नीति प्रधान और उपदेश परक है तथा गारो भाषा के इस काव्य में 'जनशिक्षा' का स्वर मुखर है।

“सन् 1940 ई. के आस-पास गारो भाषा के साहित्य के परिदृश्य पर उभरे कवियों में हावर्ड डी. मोमिन, इवलिन आर. माराक तथा जॉन मोनी डी. शीरा इत्यादि प्रमुख हैं। इन कवियों के काव्य ने गारो भाषा के काव्य के विषय क्षेत्र का विस्तार तो किया ही, साथ ही कलात्मक उत्कृष्टता की ऊँचाइयों का भी स्पर्श किया। गारो भाषा के ये युवा कवि अपनी सांस्कृतिक विरासत से भी परिचित थे और अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपने दायित्वों का ज्ञान भी उन्हें था। इसलिए इन कवियों ने अपने रचनाओं को सामाजिक जागरण का माध्यम बनाया। अपनी मातृभूमि के प्रति स्नेह की अभिव्यक्ति भी इन सभी कवियों ने की है।⁵

भाषिक विविधता की तरह अरुणाचल प्रदेश का साहित्यिक परिदृश्य भी वैविध्यपूर्ण है। आजादी के पहले तो यहाँ पर किसी भी प्रकार की साहित्यिक हलचल नहीं थी, तब यहाँ जो कुछ भी साहित्य था वह लोकभाषाओं में विद्यमान लोक साहित्य ही था। अरुणाचल की सभी जनजातियों के पास लोककथाओं, लोकगीतों, लोकगाथाओं की एक समृद्ध परंपरा है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ आजादी के बाद अरुणाचली युवाओं का एक वर्ग साहित्य लेखन और अन्मुख हुआ और इसके लिये उन्होंने जिस भाषा का चयन किया वह थी असमिया। अरुणाचल के पहले रचनाकार लुम्मेर दायी असमिया भाषा में ही साहित्य लेखन करते थे। अरुणाचल प्रदेश के पहले एकमात्र साहित्य अकादमी विजेता श्री वाई. डी. थोंगची जी को उनकी असमिया कृति 'मौन उट मुखर हृदय' पर ही साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि अरुणाचल की पहली पीढ़ी ने असमिया माध्यम से ही शिक्षा की थी। उनकी साहित्यिक समझ एवं संवेदना असमिया रचनाओं से ही विकसित हुई थी।

इनके अतिरिक्त तागाड. ताकी, सामुरु लुढत्रचाड., रिंचीन नोबू मासोबी जैसे कुछ और रचनाकार हैं जिन्होंने असमिया में अपनी लेखनी चलायी है। श्री तागाड. ताकी ने चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर 'बार्डर इमि' (सीमा अग्नि) नामक एक नाटक लिखा है, जो इस मामले में एक दुर्लभ पुस्तक है कि यह किसी भुक्तभोगी की लेखनी से निकली है।

असमिया के साथ-साथ अरुणाचल की स्थानीय भाषाओं में भी कहानी और कविताएं लिखी गयी हैं। अरुणाचल अन्य भाषा में आदि भाषा साहित्यिक रूप में समृद्ध नहीं हैं लेकिन उनमें वैचारिक अकुलाहटें शुरू हो गई और देर सवेर उनमें भी आधुनिक साहित्य लिखा जाएगा। गालों

समाज के चर्चित रचनाकार जुमसि सीराम ने अपनी भाषा में तीर्गी आलुक नामक लघु उपन्यास लिखा है।

इसके अतिरिक्त मिजो, मणिपुरी, नागा, साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य में पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न प्रांतों भाषाओं, बोलियों और सांस्कृतियों को आपस में जोड़ा है। बल्कि इसने देश के दूसरे प्रांतों भाषाओं, बोलियों और सांस्कृतियों को जोड़कर एक साझा सांस्कृतिक विरासत के भारतीय प्रत्यय को बल प्रदान किया है। इस तरह से पूर्वोत्तर भारत के साहित्यकारों ने प्रकृति को अपना चिरनतन सहयोगी माना है। इसलिए उनकी भाषाओं की शब्द सम्पदा, भाव सम्पदा, और अन्य अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियाँ प्रकृति के प्रदाय की ऋणी है। फलस्वरूप प्रकृति ने इस मनुष्य की संस्कृति संरचना में भी महत्वपूर्ण जगह बनाई है। फिर इस संरचना ने प्राथमिक तौर पर उनके साहित्य को गहरी प्रभावित किया है। वहाँ के लौकिक साहित्य का रेशा-रेशा प्रकृति के मुक्तहस्त अवदान का ऋणी है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. पूर्वोत्तर समन्वय- सं. डॉ. अपर्णा सारस्वत, अंक-18, 2013
2. वही, अंक-8, 2010
3. हंस-संपादक-संजय सहाय, जून, 2016, पृष्ठ-77
4. वही, पृष्ठ-78
5. पूर्वोत्तर समन्वय- सं.- डॉ. अपर्णा सारस्वत- अंक-18, 2013 पृष्ठ-6

आलोक सिंह
मौ. न.-7308473440

यात्रा का आरंभ संसार को जानने समझने एवं जीवन-यापन के संसाधनों की तलाश से आरंभ हुआ, और इसी यात्रा के फलस्वरूप उत्पन्न साहित्य यात्रा साहित्य कहलाया। मसालों का स्रोत जानने तथा व्यापार के लिए बहुत से व्यापारी विदेश भ्रमण किये। इस भ्रमण के दौरान उन्होंने जिस जगह जो भी देखा, उस परिस्थिति, समाज तथा संस्कृति का जीवन्त वर्णन अपने लेख या पुस्तक में किया है। इस प्रकार के यात्रियों द्वारा लिखे गये लेखों एवं पुस्तकों के माध्यम से हम तत्कालीन समय-समाज के परिस्थितियों को जान सकते हैं। जीवन गतिशीलता से प्रभावित होती है। अतः यात्रा का जीवन से अविच्छिन्न संबंध है। ऐतरेय ब्राह्मण का तो सूत्र वाक्य ही है "चरैवेति चरैवेति"। कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा ज्ञान, शिक्षा, का स्रोत है, साथ ही साथ सामाजिक परिस्थिति, लोकजीवन को जानने का प्रमुख साधन है। जहाँ यूरोप में यात्रा-वृत्तांतों की भरमार है वहीं हिन्दी साहित्य में लगभग अभाव। विनोद भारद्वाज लिखते हैं कि "हिन्दी लेखकों को यात्राएं करनी चाहिए। हिन्दी की दुनिया में कवि, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार तो बहुत हैं। लेकिन उतने यात्रा-वृत्तांत लेखक नहीं।"¹ साहित्यिक मनोभाव के यायावर को प्रकृति, स्थान, समाज, संस्कृति और इतिहास का अद्भुत आकर्षण अपनी ओर खींचता है। इनके अलावा यात्रा साहित्य से एक महत्वपूर्ण तथ्य निकलकर सामने आता है, वह है लोकजीवन। इस लोकजीवन में उस देश, उस समाज की सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं, उस समाज के सांस्कृतिक, आचार-विचार, रहन-सहन आदि को हम भली-भांति समझ सकते हैं। पाठक उस यात्रा-वृत्तांत को पढ़कर अपने आपको उस स्थान में पाता है। उसे लगता है कि वह स्वयं लेखक के साथ यात्रा कर रहा है। लोकजीवन, लोकरंग किसी भी समाज की पहचान होती है उसकी विरासत होती है। लेकिन आज भूमण्डलीकरण, बाजारवाद ने लोकरंग एवं लोकजीवन को काफी हद तक क्षति पहुँचायी है। पंकज विष्ट इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"व्यापारिक बुद्धि ने लोकरंगों को भुनाने का कार्य किया है। इसलिए जो यात्रा-वृत्तांत हमें पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलते हैं, उनमें आने-जाने, खाने-पीने के बारे में तो सविस्तार तो होता है पर उन क्षेत्रों के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश या उनसे हमारे सम्बंधों के बारे में शायद ही कुछ होता है।"² हम हर समाज को नहीं जानते। ओड़िसा है, बृहत्तर ओड़िसा समाज है, इसके भीतर भी अनेक स्तरों के समाज हैं। मिजोरम है, मिजो को जानने कभी हम नहीं जाते हैं। उसके लोक रंग, आचार-विचार, रहन-सहन, व्यापार तथा जीविकोपार्जन की परिस्थितियों को जानने का प्रयास नहीं करते। यही प्रयास हमें यात्रा-वृत्तांत में देखने को मिलता है। यात्रा-वृत्तांत में लोकजीवन, परिस्थिति समय समाज की जानकारी इतिहास या भूगोल की पुस्तकों जैसे नीरस शैली में न होकर कलात्मकता के साथ किया जाता है। लेखक उन स्थानों का वर्णन ऐसी आत्मीयता से करता है, लगता है कि उसका मन वहां की प्रकृति में, वहां के समाज में, वहां के संस्कृति और कला में, वहां के कण-कण में रम गया था। लेखक वहां के सौंदर्य, मानवीय आशा-आकांक्षाओं से पूरित जीवन व कला- अभिरुचि और प्रकृति को प्राणवत्ता के साथ उद्घाटित करता है। डॉ० रामचन्द्र तिवारी इस विषय पर प्रकाश डालते हुए

¹ साहित्यिक विधाएं: पुर्नविचार, डॉ० हरिमोहन, पृष्ठ संख्या-271

² खरामा-खरामा, पंकज विष्ट, पृष्ठ संख्या-7

लिखते हैं कि—“यायावरों कि साहसिक यात्राएँ मानव की जिजीविषा का उद्घाटन करती हैं। जिजीविषा हर जीवधारी की मूलभूत वृत्ति है। यात्रा—वृत्तांतों के पढ़ने से इस वृत्ति की तुष्टि होती है। इसलिए यात्रा—साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यात्रा—वृत्तांत सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र और रिपोर्ताज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य—रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है। हिन्दी में यात्रा—साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।”³

हिन्दी के यात्रा—वृत्तांत की अगर बात की जाय तो समृद्धि उसमें भी कम नहीं है। हिन्दी लेखकों ने वी.एस. नॉयपाल (विद्याधर सूरजप्रसाद नॉयपाल) की तरह केवल यात्रा—वृत्तांत ही नहीं लिखा है, गीत, कविता, कहानी, उपन्यास भी लिखा है। यात्रा—वृत्तांत के प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखों ने पाठकों को यात्रा करने के लिए प्रेरित किया है। नये-नये स्थानों के अवलोकन से नया ज्ञान, नई जानकारी मिलती है। इसलिए मनुष्य को यात्राएं करनी चाहिए। “अरे यायावर रहेगा याद” में अज्ञेय लिखते हैं—“यायावर ने समझा है कि देवता भी जहाँ मंदिर में रुके कि शिला हो गये और प्राणसंचार की पहली शर्त है गति: गति: गति:।”⁴ किसी भी समाज के रचना उसके रहन-सहन, सामाजिक आधार को समझने के लिए यात्रा आवश्यक है। असम के समाज में नामघर तथा वहाँ नामघर के महत्व को सांवरमल सांगानेरिया ने बताया है “नामघर असम के गांव-गांव में है। ये मात्र नामघर या किर्तनघर ही नहीं, ये तब से आज तक असमिया समाज के उपादान बने हुए हैं।.....ग्राम पंचायत की परिकल्पना हमारे समाज में है, उसे आज से चांच सौ वर्ष पहले ही श्रीमंत शंकरदेव ने नामघर के रूप में स्थापित कर दिया था।.....सामाजिक न्याय, कला, एवं संस्कृति को साकार करने में नामघरों का अद्वितीय स्थान है।”⁵ यदि उत्तर भारत के पितृसत्तात्मक समाज का पुरुष यात्री भारत में ही मातृवंशी समाज वाले मेघालय पहुंचे तो उसे अजीब लगेगा, चारों तरफ कर्मठ स्त्रियाँ—घर—परिवार—दफ्तर—व्यापार संभालती दिखेंगी। समर्थ संस्कृतियों के यात्री, औपनिवेशिक यूरोपीय यात्रियों की तरह ही, व्यापार का निर्यात ही नहीं संस्कृति का भी निर्यात करते दिखते हैं। मेघालय की खासी महिलाओं के बारे में अनिल यादव ने लिखा है “खासी महिलाओं को पूर्वोत्तर में काफी चतुर माना जाता है।”⁶ असगर वजाहत भी इस संबंध में मिजोरम के यात्रा—वृत्तांत में लिखते हैं “सब्जी मंडी, गोश्त मंडी के साथ दूसरी दूकानें भी बड़ी तादात में थीं। लेकिन हर दुकान में एक चीज कॉमन थी और वह यह कि सामान बेचने वाली कोई कोई लड़की या महिला थी। हर दुकान पर लड़की या औरत को देखकर लगा कि यहां पुरुष क्या करते होंगे?”⁷ हिन्दी लेखकों ने यूरोप, बैकॉक, जापान, हिमालय के यात्रा के बारे में तो खूब लिखा है, परन्तु भारत उत्तर पूर्व में अवस्थित मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, सिक्किम तथा असम के समाज, संस्कृति, परिस्थिति के बारे में बहुत कम लिखा है, और जितना लिखा गया है उतना पर्याप्त नहीं है। किसी क्षेत्र का रोचक यात्रा—वृत्तांत उस क्षेत्र के बारे में जानने के लिए ललक पैदा करता है। पूर्वोत्तर भारत भी देश का अभिन्न अंग है परंतु इसके बारे में ऐसी धारणाएं फैलती रहती हैं कि लोग कोलकाता से दिल्ली जाना आसान समझते हैं लेकिन समीप में स्थित मेघालय, असम नहीं। “कमोबेश यही मानसिकता देशवासियों के मन में असम या कहना चाहिये कि पूरे पूर्वोत्तर के बारे में, आज भी बनी हुई है। यहां आने से लोग झिझकते हैं। एक अज्ञात भय उनके मन में

³ हिन्दी का गद्य साहित्य: रामचन्द्र तिवारी, पृ—

⁴ अरे यायावर रहेगा याद, अज्ञेय, पृ—

⁵ लोहित के मानसपुत्र: शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, पृ.12

⁶ यह भी कोई देश है महाराज, अनिल यादव, पृष्ठ संख्या—80

⁷ रास्ते की तलश में, असगर वजाहत, पृ—66

समाया है। असम की भौगोलिक विषमता और यहां के प्रति रही अज्ञानता ही इस भय का कारण है। स्वतंत्रता के बाद यहां पनपे अलगाववाद के कारण भी लोग यहां आने से कतराते हैं। इससे यहां के बारे में लोगों के मन में भ्रम का अंधियारा छाया है।⁸ इन सब के बावजूद भी हिन्दी के जिन लेखकों ने पूर्वोत्तर भारत के बारे में लिखा है वह हिन्दी साहित्य को अमूल्य देन है। अज्ञेय ने अपने यात्रा-वृत्तांत " अरे यायावर रहेगा याद " में असम से लेकर मेघालय तक के सीमान्त का वर्णन किया है। यात्रा के क्रम में उन्होंने पूर्वोत्तर के जिस समाज को देखा उसे शब्दबद्ध करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। 'ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे' में ब्रह्मपुत्र नदी किस तरह से असम की संस्कृति को सदियों से प्रभावित करता आ रहा है, दिखाया गया है " ब्रह्मपुत्र के किनारों पर बसन्त का आगमन बिहू-गीतों के साथ होता है। यहां पर बसी बोड़ो, खसी, जयन्तिया, गारो, आदि जनजातियां अपनी-अपनी रंग-बिरंगी पोशाकों, अपनी मान्यताओं, अपने रीति-रिवाजों, अपनी भाषाओं, आस्थाओं और लोकनृत्यों से इसकी घाटी को अनुगुंजित करती रहती है।⁹ यह चित्रण जितना यात्रा-वृत्तांतों में किया गया है उतना हिन्दी के किसी और विधा में नहीं। असगर वजाहत के यात्रा-वृत्तांत "रास्ते की तलाश में" उन्होंने मिजोरम के बाजार, प्राकृतिक हरियाली, वहां के स्वच्छंद घूम रही स्त्रियों के बारे में लिखा है। पूर्वोत्तर भारत को छोड़कर भारत के सभी भाग में पुरुष मानसिकता का वर्चस्व है। असगर वजाहत ने अपनी मिजोरम के यात्रा के दौरान स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। पूर्वोत्तर में कर्मठ स्त्रियाँ आधी आबादी का दर्जा प्राप्त करती हुई दिखती हैं। यात्रा-वृत्तांत की पुस्तकों के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में पूर्वोत्तर भारत से संबंधित लेख भी मिलते हैं, जिनके माध्यम से भी हम पूर्वोत्तर को जान एवं समझ सकते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ

1. साहित्यिक विधाएं: पुर्नविचार, डॉ० हरिमोहन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005 ई०
2. खरामा-खरामा, पंकज विष्ट, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2012 ई०
3. हिन्दी का गद्य साहित्य: रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007 ई०
4. अरे यायावर रहेगा याद, अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2003 ई०,
5. यह भी कोई देश है महाराज, अनिल यादव, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2012 ई०
6. लोहित के मानसपुत्र: शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, हेरिटेज फाउण्डेशन, गुवाहाटी, 2011
7. रास्ते की तलाश में, असगर वजाहत, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2012 ई०
8. लोहित के मानसपुत्र: शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, हेरिटेज फाउण्डेशन, गुवाहाटी, 2011 ई०
9. ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे, सांवरमल सांगानेरिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2007 ई०

हिंदी विभाग
शिलांग-793022
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
मो.-09402516681

⁸ लोहित के मानसपुत्र: शंकरदेव, सांवरमल सांगानेरिया, पृ.9

⁹ ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे, सांवरमल सांगानेरिया, पृ.7-8

दलित स्त्री आंदोलन तथा साहित्य

बजरंग बिहारी

भारतीय भाषाओं में दलित स्त्री लेखन को रूपाकार लिए हुए दो दशक से ज्यादा गुजर चुके हैं। यह पूरा दौर दलित स्त्रीवादी कार्यकर्ताओं, रचनाकारों के लिए कठिन संघर्षों का रहा है। सामाजिक बदलाव की दिशा में काम करने वाले तमाम संगठनों, मंचों और समूहों तक अपनी बात पहुँचाने, उन बातों की गम्भीरता का अहसास कराने और उनकी कार्यसूची में मुमकिन हद तक अपने मुद्दों को जगह दिला सकने में उन्हें जटिल दिक्कतों का सामना करना पड़ा है। जाति-व्यवस्था के खिलाफ लड़ने वाले दलित संगठनों ने जहाँ इस मुहिम को थोड़े शक की नज़र से देखते हुए दरकिनार करने की कोशिश की वहीं स्त्रीवादी संगठनों ने जाति और पितृसत्ता के गठजोड़ को तवज्जो देने लायक नहीं समझा। यह जुझारू दलित स्त्रियों और उनके समर्थकों की सतत और पुरजोर पैरोकारी का नतीजा था कि स्त्री आन्दोलन के चौथे राष्ट्रीय अधिवेशन में जाति आधारित यौन-हिंसा और दलित स्त्री के प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा हुई। यह अधिवेशन 1990 में कालिकट में आयोजित हुआ था। (1), यह सिलसिला बाद के अधिवेशनों में सघनतर होता गया। जाति के प्रश्न के साथ आदिवासी स्त्रियों का सवाल भी तिरूपति (1994) के राष्ट्रीय अधिवेशन में शामिल हुआ। कोलकाता का 2006 में हुआ अधिवेशन भी उल्लेखनीय रहा। 2, जेण्डर को जाति से जोड़कर देखने-समझने की अकादमिक गतिविधि क्रमशः गति पकड़ती गयी। बेला मलिक ने अपने निबंध 'अनटचेबिलिटी एंड दलित वीमेंस ऑप्शन' में 20 दिसम्बर, 1998 को दिल्ली में ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक वीमेंस असोसिएशन (ए आई डी डब्ल्यू ए) द्वारा अस्पृश्यता और दलित महिला के उत्पीड़न पर आयोजित सम्मेलन को खासा महत्व देते हुए लिखा है कि इस सम्मेलन ने जातिउत्पीड़न तथा पितृसत्तात्मक शोषण की जुगल-बंदी की ओर ध्यान दिलाया। 3, इस सम्मेलन में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश की हजारों दलित महिलाओं ने हिस्सा लिया था। अलग-अलग पृष्ठभूमि से आयी इन समाजकर्मी महिलाओं ने दलित स्त्री की जिंदगी की वास्तविकता से रूबरू कराया और अपने अनुभवों तथा संघर्षों को बेलाग तरीके से प्रकट किया। इन दलित स्त्रियों में कुछ राजनैतिक रूप से सक्रिय थीं, कुछ कृषिमजदूर थीं, कुछ भवन-निर्माण में दैनिक मजदूरी या ठेकेदार के अन्तर्गत काम करती थीं।

बेला मलिक के अनुसार उक्त सम्मेलन ने यह तथ्य रेखांकित किया कि वैसे तो पूरा दलित समुदाय उत्पीड़ित किया जाता है लेकिन उत्पीड़न का अधिकांश दलित स्त्रियों के हिस्से में पड़ता है। घर में भीतर का श्रम विभाजन जोड़ें और पेय जल तक पहुँच, जलावन तथा शौचादि समस्याओं को ध्यान में रखें तो दलित स्त्रियों की बदतर स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। अवमानना व हिंसा की घटनाएं दलित स्त्रियों के साथ सर्वाधिक घटती हैं। उनके उत्पीड़न में ऊंची जाति की स्त्रियों की भागीदारी अक्सर दिखाई पड़ती हैं। (4), दलित महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की प्रकृति को देखते हुए बेला सुझाव देती हैं कि उनकी बेहतर जिंदगी के लिए किए जाने वाले संघर्ष को व्यापक

सामाजिक मुक्ति के अजेंडा से जोड़कर देखे जाने की जरूरत है। (5), संगठनों का निर्माण पर्याप्त नहीं, मजबूत और सक्रिय प्रतिरोध अपेक्षित है। सतत संघर्ष के बगैर परिवर्तन की संभावना नहीं बनती।

शारमिला रेगे सामान्य नारीवादी संगठनों के महत्व को नहीं नकारतीं लेकिन दलित स्त्रियों के प्रश्न पर दलित स्त्री संगठनों का होना आवश्यक मानती हैं। (6), उन्होंने उचित ही इस बिडंबना की ओर ध्यान खींचा है कि दलितवाद पुरुषीकरण तथा स्त्रीवाद सवर्णीकरण के आशय तक सिमट गया है। उनके अजेंडे में दलित स्त्रियों को जगह न मिलने के कारण ही इस आशय की निर्मिति हुई है। 1971 में बने दलित पैंथर में भी दलित स्त्रियों की, उनसे सम्बद्ध मुद्दों की अनुपस्थिति रही। शारमिला रेगे के मत से वाम झुकाव वाले नारीवादी संगठनों ने जाति को वर्ग में विलीन कर दिया तथा स्वायत्त स्त्री समूहों ने उसे भगिनीवाद में। दोनो ने ही ब्राह्मणवाद को चुनौती नहीं दी। (7), ऐसा नहीं है कि इस (नारीवादी) आन्दोलन ने दलित, आदिवासी तथा अल्पसंख्यक समुदायों की स्त्रियों के मुद्दों को उठाया ही न हो। यह मुद्दे उठे ज़रूर और कुछ ठोस उपलब्धियां भी रहीं मगर इन स्त्रियों को केंद्र में रखने वाली नारीवादी राजनीति उभर नहीं सकी। (8), दलित स्त्री की पहचान वाले स्वतंत्र और स्वायत्त संगठन 1990 के बाद बने। अखिल भारतीय स्तर पर बनने वाले संगठनों में 'नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन' तथा 'आल इंडिया दलित वीमेंस फोरम' (1994) उल्लेखनीय है। 'महाराष्ट्र दलित महिला संघठना' की स्थापना 1995 में की गई। इसी प्रदेश के चंद्रपुर में 1996 में 'विकास वंचित दलित महिला परिषद' का गठन हुआ। इस संगठन ने मांग की कि 25 दिसंबर को 'भारतीय स्त्री मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया जाए। 1927 में इसी तारीख को डॉ.अम्बेडकर ने मनुस्मृति दहन किया था। (9),

दलित स्त्रीवाद की वैचारिकी के निर्माण के संदर्भ में गोपाल गुरु के लेख 'दलित वीमेन टॉक डिफरेंटली' की चर्चा की जाती है। यह लेख 'इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' के अक्टूबर 14-21, 1995 अंक में प्रकाशित हुआ था। इस लेख की पृष्ठभूमि में दो तात्कालिक घटनाएं थीं- नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन (एन एफ डी डब्ल्यू) का निर्माण तथा बीजिंग सम्मेलन में दलित महिलाओं की भिन्न समूह के रूप में भागीदारी। दलित महिलाओं की 'बात की भिन्नता' को रेखांकित और स्थापित करना इस लेख में गोपाल गुरु का मकसद है। इसके लिए वे दो कारकों की चर्चा करते हैं- बाहरी कारक तथा भीतरी कारक। बाहरी कारकों में वे उन 'गैर दलित ताकतों' का हवाला देते हैं जो 'दलित स्त्री के मुद्दे का समरूपीकरण' कर रही हैं। भीतरी कारकों में 'दलितों के बीच पितृसत्तात्मक प्रभुत्व' का होना है। सत्य के अवबोधन में सामाजिक अवस्थिति को गोपाल गुरु निर्णायक मानते हैं। उनका कहना है कि इसी तर्क से गैर दलित स्त्रियों द्वारा दलित स्त्रियों के मुद्दों का प्रतिनिधित्व 'कम वैध और कम प्रामाणिक' ठहरता है। वे यह भी जोड़ते हैं कि दलित स्त्री कार्यकर्ताओं के इस दावे का अर्थ नारीवाद की प्रायोगिक बहुलता का उत्सव नहीं है। दलित स्त्रियों ने महाराष्ट्र में नए किसान आन्दोलन के शुरुआती दौर में नारीवादी रेडिकल राजनीति का समर्थन किया था। यह समर्थन जारी नहीं रह पाया क्योंकि किसान संगठनों की ऊंची आवाज़ में दलित आवाज़ दब गयी। दूसरे, किसान आन्दोलन समृद्ध किसानों के पक्ष में चला गया और दलित कृषि मजदूरों के हित भुला दिए गए।

गोपाल गुरु जोर देकर कहते हैं कि राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर स्त्री मात्र की एकता (सॉलिडरिटी) का दावा ऊँची जाति और दलित महिलाओं के बीच मौजूद अन्तर्विरोधों पर लीपापोती कर देता है। दलित स्त्रियों ने इसीलिए गैर दलित स्त्रियों के लेखन अथवा भाषण में अपने यदा-कदा उल्लेख (गेस्ट अपीरेंस) का विरोध किया और अपनी शर्तों पर खुद को संगठित किया। गैर दलित स्त्रियों द्वारा विकसित नारीवादी सिद्धांत उनकी समझ से अप्रामाणिक हैं क्योंकि वे दलित स्त्री के यथार्थ को नहीं समेटते। इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति एन एफ डी डब्ल्यू द्वारा स्वीकृत बारह सूत्री अजेंडे में तथा मई 1995 में पुणे में संपन्न महाराष्ट्र दलित वीमेंस कॉन्फरेंस में पढ़े गए तमाम पर्चों में देखी जा सकती है। गोपाल गुरु बताते हैं कि दलित स्त्रियों ने दलितपन की व्याख्या कड़ाई के साथ जाति के संदर्भ में की और गैर दलित स्त्रियों द्वारा खुद को दलित मान लिए जाने के दावे को नकार दिया।

आंतरिक कारणों का विश्लेषण करते हुए गोपाल गुरु का कहना है कि उत्तर अम्बेडकर काल में दलित नेताओं ने हमेशा दलित स्त्रियों की स्वतंत्र राजनीतिक अभिव्यक्तियों को गौण समझा है और कई बार उनका दमन किया है। कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी दलित पुरुषों का दबदबा कायम रहा है। साहित्य की दुनिया में दलित लेखकों के एकाधिकार की दलित लेखिकाओं ने आलोचना की है। गोपाल गुरु सूचित करते हैं कि दलित लेखक दलित स्त्री रचनाकारों की कृतियों को गंभीरता से नहीं लेते। उनकी प्रवृत्ति इन लेखिकाओं की उपलब्धियों को खारिज करने की होती है। अपने विश्लेषण को सूत्रबद्ध करते हुए गोपाल गुरु तीन निष्कर्ष देते हैं- क) जाति और वर्ग की पहचान के साथ लैंगिक पहचान भी किसी परिघटना में समान भूमिका अदा करती हैं; ख) दलित पुरुष उसी मेकनिज़्म का पुन उत्पादन कर रहे हैं जिसका इस्तेमाल सवर्णों ने उन्हें दबाने के लिए किया था; ग) दलित स्त्रियों का अनुभव बताता है दलित(दायरे) के भीतर का स्थानीय प्रतिरोध कम महत्वपूर्ण नहीं है। कुल मिलाकर, जो स्थिति बनती है उसमें यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि दलित स्त्रियों की भिन्न बात का दावा सही है। अपनी तरफ से यह साबित करने के बाद कि दलित स्त्री ही दलित स्त्री समुदाय का वैध और प्रामाणिक प्रतिनिधित्व कर सकती है गोपाल गुरु यह चेतावनी भी जोड़ते हैं कि भिन्नता दलित स्त्रियों में भी है। शिक्षा, नौकरी और संगठन में महाराष्ट्र की दलित स्त्रियां जितनी आगे हैं कर्नाटक की नहीं। तब प्रतिनिधित्व का पैच उलझ जाता है। लेखक ने समाधान के तौर पर इस सुझाव पर अपनी सहमति दी है कि दलित स्त्री आंदोलन को ग्रासरूट स्तर की दलित स्त्रियों से जुड़ना चाहिए। उन्होंने दलित स्त्रियों को इसके प्रति भी सावधान किया है कि उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं को स्पेस मुहैया कराने के क्रम में राज्य द्वारा उनका सहयोजन किया जा सकता है। इस आशंका के साथ ही उन्होंने दलित स्त्रियों की राजनीतिक समझ पर भरोसा भी किया है। सबूत के तौर पर उन्होंने भारत सरकार द्वारा निजीकरण और वैश्वीकरण वाली नयी आर्थिक नीति थोपे जाने की एन एफ डी डब्ल्यू द्वारा संघर्ष छेड़ने के संकल्प का उल्लेख किया है।(10),

गोपाल गुरु के उक्त लेख पर बहस चली। इस बहस में प्रमुख नाम शर्मिला रेगे का उभरा। रेगे ने मोटे तौर पर लेख की स्थापनाओं पर अपनी सहमति व्यक्त की, लेकिन, उन्होंने 'प्रामाणिकता' पर आत्यंतिक बल दिए जाने को उचित नहीं पाया। उनके अनुसार हाशिए के लोगों के आंदोलन में

आवाजाहीपर रोक नहीं लगनी चाहिए। अपने-अपने संघर्षों तक महदूद रहने के बजाए इन संघर्षों से अर्जित अनुभवों का, विचारों का साझा करना संघर्ष को आगे ले जाने में सहायक होता है। दलितेतर नारीवादी दलित स्त्रियों 'की तरह' या दलित स्त्रियों 'के लिए' भले ही न बोल सकती हों लेकिन वे दलित नारीवादी की तरह अपनी 'पुनर्खोज' तो कर ही सकती हैं। इस तरह की छूट प्रत्यक्ष अनुभवजन्य 'प्रामाणिकता' की संकरी गली से बचाती है तथा 'अस्मितावादी राजनीति' की संकीर्णता को भी परे ढकेलती है। (11), अस्मितावादी दृष्टि की आलोचना करते हुए महाराष्ट्र की ही चर्चित नारीवादी चिंतक छायादातार ने कहा कि 'भिन्नता' और 'आइडेंटिटी' पर केन्द्रित हो जाने से आर्थिक शोषण और बाजार की जकड़बंदी की उपेक्षा होती है। स्त्रियों को अधिकार वंचित करने वाली स्थितियों का जन्म यहीं होता है। छाया दातार ने यह भी कहा कि अगर नारीवादी आंदोलन के इतिहास का पुनरावलोकन किया जाए तो मालूम होगा कि पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष में कई मोड़ ऐसे भी आए हैं जब जाति प्रभुत्व के खिलाफ मोर्चा खुला है। 'मथुरा रेप केस' मामला इसका उदाहरण है। दलित पैंथर के साथ भी नारीवादियों ने सहयोग किया है।(12)

दलित आंदोलन में दलित स्त्रियों की भूमिका का पहले-पहल सशक्त रेखांकन मीनाक्षीमून और उर्मिला पवार ने किया। 1989 में प्रकाशित 'हमने भी इतिहास बनाया' में इन दोनों आंदोलनधर्मी लेखिकाओं ने डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक अभियानों में दलित स्त्रियों की भागीदारी का वृत्तांत लिखा है। दलितस्त्री कार्यकर्ताओं की पहली पीढ़ी इसी दौर में निर्मित हुई। परिवार, समाज और राजनीति में व्याप्त पुरुष वर्चस्व से लड़कर परिवर्तन के ऐतिहासिक दस्तावेज में अपना हस्ताक्षर करने वाली दलित स्त्रियों की पहली पीढ़ी का परवर्ती आंदोलन ने लाभ नहीं उठाया। किसी दलित स्त्री का नाम न तो पैंथर के, न ही रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के नेतृत्वकारियों की सूची में दिखाई पड़ता है। इसकी वजह जानने में बहुत मशक्कत करने की ज़रूरत नहीं। गोपाल गुरु ने पूर्वोद्धृत लेख में दलित नेताओं की पितृसत्तात्मक सोच का स्पष्ट जिक्र किया है।

बेबी कांबले मुख्यतः सामाजिक कार्यकर्ता रहीं। आन्दोलनों में शिरकत करते हुए उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। उनकी जुझारू शख्सियत की अभिव्यक्ति उनके आत्मकथन 'जिण आमुच (जीवन हमारा) में हुई है। यह आत्मकथन धारावाहिक रूप में सन् 1982 में छपा और पुस्तक रूप में 1086 में आया। भारत में किसी दलित लेखिका का यह संभवतः पहला आत्मकथन है। इसमें बेबी कांबले ने अपनी जिंदगी से ज्यादा दलित समुदाय में हो रही उथल-पुथल का चित्रण किया है। उत्तर अम्बेडकरकालीन दलित राजनीति में घुस आई निजी महत्वाकांक्षाओं को निशाने पर लेते हुए लेखिका ने नेताओं के स्वभाव पर तल्ख टिप्पणियाँ की हैं। इस आत्मकथा के अंग्रेजी अनुवाद में लिखे 'आफ्टरवर्ड' में गोपाल गुरु ने लिखा है- 'दलित स्त्रियों की आत्मकथाएं एक तरफ राज्य के शोषण का प्रतिरोध करती हैं तो दूसरी तरफ बाजार का। उनका लेखन 'दलित पब्लिक स्फीयर'- साहित्यिक सभाओं, अकादमिक संगोष्ठियों, प्रकाशन केन्द्रों और पहचान दिलाने वाले अन्य क्षेत्रों मसलन राजनीतिक पार्टियों से बाहर रखे जाने के खिलाफ बयान हैं। दलित लेखकों की आत्मकथाओं में उनका उल्लेख चलताऊ ढंग से किया जाता है। (13), सार्वजनिक गतिविधियों-रैलियों धरने-प्रदर्शनों में बेबी

कांबले की भागीदारी को ध्यान में रखकर गोपाल गुरु टिप्पणी करते हैं कि दलित स्त्रियाँ घरेलू से सार्वजनिक क्षेत्रों में निर्बाध आवाजाही करती हैं ('दे फलो फ्रीली फ्रॉम द डोमेस्टिक टू द पब्लिक स्फीयर्स') (14), यह बात जितनी आसानी से कह दी गई है वस्तुस्थिति वैसी है नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि बेबी कांबले ने आत्मकथा में अपनी पारिवारिक स्थिति-पति-पत्नी के रिश्तों पर कुछ खास नहीं लिखा है। गोपाल गुरु की उक्त धारणा के निर्माण में इसी खामोशी की भूमिका है। अंग्रेजी अनुवादिका को यह खामोशी खटकी होगी। तभी उन्होंने बेबी कांबले का इण्टरव्यू लेते हुए उनकी अंतरंग जिंदगी पर प्रश्न पूछे। यह इण्टरव्यू आत्मकथा के आखीर में अंग्रेजी अनुवाद में दे दिया गया। इसमें बेबी कांबले ने बताया है कि उनकी जिंदगी अन्य दलित औरतों की जिंदगी से बहुत भिन्न नहीं रही। "इन दिनों पत्नियों की पिटाई सामान्य बात थी। पत्नी की निष्ठा पर शक किया जाता था और मैं भी कोई अपवाद नहीं थी। एक बार हम (मैं और पति) एक बैठक में हिस्सा लेने मुंबई गए। हमने सामान्य डिब्बे में यात्रा की। डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। कुछ युवाओं ने मुझे देख क्या लिया कि मेरे पति ने तत्काल मुझ पर शक किया। उन्होंने मुझे इतने जोर से मारा कि मेरी नाक से खून का फौव्वारा फूट पड़ा। भला बताओं कोई किसी को घूरने से कैसे रोक सकता है। लेकिन, यह सब कहने का कोई फायदा नहीं था। हम प्रोग्राम में भी नहीं रुके। उसी शाम को लौट आए। उनका क्रोध ऐसा था कि लौटती बेर ट्रेन में पूरे रास्ते मुझे पीटते रहे।(15), इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए प्रश्नकर्ता ने जब अगला सवाल किया तो बेबी कांबले का जवाब था- 'वे (पति) मुझे बेहद मामूली कारणों पर पीटते थे। बड़े शक्की थे। अपने को निर्दोष साबित करना मेरे लिए बहुत कठिन था। मैं रोती थी, गिड़गिड़ाती थी, मनाती थी। कभी माहौल हफ्ते भर सामान्य रहा तो बहुत गनीमत थी। शक फिर से अपना सिर उठा लेता था। मुझे फिर यातना की उस चक्की से गुजरना पड़ता था। ज्यादातर औरतों की जिंदगी ऐसी ही थी। ...एक मर्द छोड़ दूसरी से शादी करना समस्या का हल नहीं था। हर मर्द में वहीं "पति" मिलता था। इसलिए मैंने तय किया कि दूसरा घर नहीं करूंगी। (16), 'आत्मकथा' में इन अनुभवों को क्यों नहीं लिखा? इस प्रश्न पर बेबी कांबले का कहना था कि 'मैंने व्यक्तिगत पीड़ा के बदले समुदाय की व्यथा को तरजीह दी। फिर अधिकांश औरतों पर जब ऐसी ही हिंसा की जाती थी तो मैं उनसे अलग कहाँ थी?'(17), प्रस्तुत प्रसंग को थोड़े विस्तार से उद्धृत करने की जरूरत इसलिए महसूस हुई कि गोपाल गुरु के कथन का समुचित संदर्भ सामने रहे। उस कथन का प्रत्याख्यान भी हो सके। आत्मकथा के हिन्दी या मराठी संस्करणों में चूंकि यह साक्षात्कार नहीं है, इसलिए संभव है कुछ लोग लेखिका की जिंदगी के इस पक्ष से वाकिफ न हों। इस आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद वैसे भी थोड़ा संदिग्ध लगता है। किसी समर्थ अनुवादिका/अनुवादक को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए।

बेबी कांबले ने खुद को अम्बेडकरी आन्दोलन का उत्पाद कहा है। ऐसी तमाम दलित स्त्रियों ने अनगिनत खतरे उठाकर इस आन्दोलन में भागीदारी की, उसे आगे बढ़ाया। यह बिडम्बना ही कही जाएगी कि आन्दोलन दलित स्त्रियों के प्रति पर्याप्त संवेदनशील नहीं हो पाया। आन्दोलन की कार्यसूची में दलित स्त्रियों के अपने मुद्दे उच्च प्राथमिकता पाने से वंचित रहे।

तमिलनाडु में सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता और लेखिका गैब्रियल डीट्रिख ने अपने एक लेख में दलित आन्दोलन और महिला आन्दोलन के अंतर्संबंध को समझाने के क्रम में कई घटनाओं का उल्लेख किया है। इसमें दो-एक का जिक्र यहाँ बानगी के तौर पर किया जा सकता है। पहली घटना दलित बहुल जिला उत्तरी आरकोट के अरक्कोणम की है। परैयार जाति के भूमिहीन कृषि मजदूरों के बीच काम करने वाले यहाँ तीन महत्वपूर्ण संगठन हैं-अम्बेडकर मंत्रम्, रूरल वीमेंस लिब्रेशन मूवमेंट (आर डब्ल्यू एल एम) और भूमिहीन श्रमिक आंदोलन (एल एल एम) मजदूरी, बिजली, पानी और ज़मीन जैसे मुद्दे आर डब्ल्यूएल एम और एल एल एम उठाते हैं और अक्सर मिलकर काम करते हैं। लेकिन कुछ स्थानीय मुद्दों तथा अम्बेडकर जयंती जैसे समारोहों को वे अम्बेडकर मंत्रम् से जुड़कर मनाते हैं। 20 अप्रैल 1990 को यहाँ कला नामक पचीस वर्षीया युवती ने ट्रेन के आगे कूदकर अपनी जान दे दी। कला तीन बच्चों की माँ थी। सूचना मिलने पर आर डब्ल्यू एल एम के कार्यकर्ता कला के माता-पिता से मिले। बेटे की लाश दिखाने के लिए उन्हें अस्पताल भी ले गए। प्रारंभिक खोजबीन से उन्हें पता चला कि कला के पति के विवाहेतर संबंध थे और वह अपनी पत्नी को लगातार उत्पीड़ित कर रहा था। कला के माँ-बाप इस घटना की गवाही देने को तैयार थे। चूंकि परिवार दलित (परैयार) था इसलिए अम्बेडकर मंत्रम् के कार्यकर्ता भी अस्पताल पहुँचे। ग्राम प्रधान पेशे से वकील और अम्बेडकर मंत्रम् का कानूनी सलाहकार था। उसने कला के माँ-पिता पर दबाव डाला कि वे बयान दें कि कला बहरी थी और मानसिक रोगी तथा उसकी मृत्यु के लिए कोई अन्य जिम्मेदार नहीं है। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट बेनतीजा रहीं। आर डब्ल्यू एल एम चाहता था कि आत्महत्या के लिए उकसाने वाला केस दर्ज हो। अम्बेडकर मंत्रम् पति के पक्ष में था। प्रधान पर दबाव डालकर पंचायत बुलायी गयी। पंचायत ने कला के पति को सभी आरोपों से बरी कर दिया। अम्बेडकर मंत्रम् के सहयोग से लाश का अंतिम संस्कार कर दिया गया। आर डब्ल्यू एल एम ने इसकी सार्वजनिक भर्त्सना की। अम्बेडकर मंत्रम् तथा ग्राम प्रधान ने आर डब्ल्यू एल एम के घेराव के विरोध में मार्च निकाला और दबाव बनाया कि आर डब्ल्यू एल एम इस केस से हट जाए। आर डब्ल्यू एल एम का तर्क था कि दलित उत्पीड़न पर सक्रिय होने वाला अम्बेडकर मंत्रम् एक दलित स्त्री को पति द्वारा आत्महत्या पर मजबूर किए जाने के सिर्फ अनदेखा ही नहीं कर रहा है, वह आरोपी की हर तरह से सहायता भी कर रहा है। आखिरकार कला की आत्महत्या का मुकद्दमा चल नहीं पाया।

दूसरी घटना भी इसी जिले की है। श्रीलंका से आए एक परिवार की तीन साल की बच्ची के साथ बलात्कार हुआ। बलात्कारी पड़ोसी दलित युवक था। घटना 7 जुलाई 1990 की है। बच्ची के परिवार के पास बलात्कार के ठोस साक्ष्य थे, फिर भी पीड़िता का मेडिकल परीक्षण नहीं हो सका। अम्बेडकर मंत्रम् ने आनन-फानन में पंचायत बुलायी और आरोपी पर ढाई सौ रुपये का जुर्माना लगाकर मामला रफा-दफा करना चाहा। आर डब्ल्यू एल एम ने जब आरोपी को तलब किया तो अम्बेडकर मंत्रम् के कार्यकर्ताओं ने बलात्कारी का साथ देते हुए आर डब्ल्यू एल एम को यह केस अपने हाथ में लेने से रोका। बड़ी कहा-सुनी के बाद उन्होंने आर डब्ल्यू एल एम की महिला कार्यकर्ताओं को थाने में खबर करने की मोहलत दी। 14 जुलाई को पीड़िता को न्याय दिलाने के लिए सभा बुलायी गयी। डीट्रिख

बताती हैं कि अम्बेडकर मंत्रम् से अलग हुए एक गुट ने न्याय मांगने वालों को समर्थन दिया। (20), अम्बेडकर मंत्रम् पुरुष-बहुल संगठन है।

ऐसे तमाम प्रसंग हैं जिनके आधार पर यह बेहिचक कहा जा सकता है कि न्याय और अस्मितावाद के बीच द्वन्द्व की स्थिति पैदा होने पर दलित स्त्रियों तथा उनके संगठनों ने न्याय का पक्ष लिया है। पहचान की राजनीति बराबरी, आजादी और इंसाफ को परममूल्य मानकर नहीं की जा सकती। अपना दायरा बढ़ाने के लिए इन शब्दों को अलंकरण की तरह इस्तेमाल अवश्य किया जाता है। लेकिन, निर्णायक अवसरों पर इन मूल्यों को स्थगित किए जाते हुए देखा जा सकता है। दलित स्त्रियों का संघर्ष मानवाधिकारों के लिए है। मानवाधिकारों की लड़ाई बुनियादपरस्त नहीं लड़ सकते। मानवाधिकारों की सच्ची चिंता अस्मितावादियों के अर्जेंडे में नहीं आ सकती। अतीत के स्वर्णिम बोझ से दबा मूलनिवासी आंदोलन भी मानवाधिकारों का पैरोकार नहीं हो सकता। दलित स्त्रियां इसी अर्थ में इन सबसे भिन्न हैं। तमिल की प्रख्यात दलित लेखिका एस. तेनमोषी अपने एक निबंध में इसीलिए बड़ी व्यथा से कहती हैं- 'इस युद्धभूमि में दलित स्त्रियां बिल्कुल तनहा हैं, एकदम मित्ररहित। उन्हें इस संघर्ष को इसीलिए सावधानी, आत्म-चेतनता तथा उत्कटता से लेना है।' (21), तेनमोषी का मानना है कि 'अगर वे (दलित स्त्रियां) इस स्थिति को इतिहास के अभिशाप के रूप में नहीं अपितु सुअवसर के रूप में लेंगी तो स्थिति-परिवर्तन नामुमकिन नहीं हैं। (22), इसी निबंध में लेखिका ने यह भी कहा है कि तीव्र जातिगत (रेशियल) उत्पीड़न के समय हम (दलित पुरुषों से) अपने विचार वैभिन्य को पीछे रख देती हैं कुछ वैसे ही पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष में हमारा गैरदलित स्त्रियों के साथ एका बन सकती है। (23),

पारंपरिक वर्चस्ववादियों और दलित अस्मितावादियों में अपने-अपने ढंग से प्रयास किया कि दलित स्त्रीवाद का नारीवादी आन्दोलन से दूरी ही न बनी रहे बल्कि उनके बीच अविश्वास भी बढ़े। जाति में गुंथी पितृसत्ता की उपेक्षा करके, उसके खिलाफ मुकम्मल लड़ाई न छोड़कर स्वयं नारीवादी आन्दोलन ने इस दूरी को बरकरार रखने में जाने-अनजाने सहयोग किया। लेकिन, जल्दी ही दोनों आन्दोलनों को यह बात समझ में आ गयी कि अवसर-विशेष में उनके बीच पनपी पारस्परिकता और समर्थन सार्थक नतीजों का ओर ले जा सकते हैं। नारीवादी संगठनों ने दलित स्त्रीवाद के सामान्य नारीवाद में विलय की कोई मांग न उठाकर आपसी भरोसे की नींव ही मजबूत की। दलित लेखिकाओं की रचनाएं इस बात की गवाही देती हैं कि उन्होंने सीखने-सिखाने और संवाद के दरवाजे कभी बंद नहीं किए। दलित स्त्री आन्दोलन का आकलन करते हुए विमल थोरात ने लिखा है- 'वह स्त्री पुरुष संबंधों की समतावादी व्याख्या करने के साथ ही, दलित स्त्री के तिहरे शोषण की त्रासदी की अभिव्यक्ति द्वारा दलित स्त्री के प्रति नारीमुक्ति आन्दोलन के संकीर्ण मध्यवर्गीय नजरिए को भी कुछ हद तक बदलने में कामयाब हो रही है। व्यक्ति पहचान के संघर्ष में स्त्री अस्मिता का प्रश्न लेकर साझे समतावादी आन्दोलन में भी वह शामिल हुई है।' (24), कुछ ऐसा ही रजनी तिलक का भी मानना है। वे दलित और स्त्रीआन्दोलन में दलित स्त्रियों की भागीदारी को रेखांकित करते हुए यह भी जोड़ती हैं दलित आन्दोलन में 'पितृसत्ता का विद्रूप चेहरा' तथा स्त्री आन्दोलन में 'जाति व्यवस्था का विकृत रूप'

पाकर दलित स्त्रियों ने अपने को अलग से संगठित किया। (25), तेलुगु दलित लेखिका नामबूरि परिपूर्णा की कहानी 'प्रेरणा' परिवार के ढांचे में 'पति' संस्था की क्रूरता दर्शाते हुए सवर्ण और दलित स्त्री के दुख की समानता का बयान करती है। मस्तनम्मा विमला के यहाँ नौकरानी है। विमला और उसका पति प्रसाद जिला परिषद में नौकरी करते हैं। मस्तनम्मा का पति कोटी रिक्शा चलाता है। प्रसाद और कोटी दोनों ही घर की जिम्मेदारियों के प्रति बेपरवाह। अपनी सारी कमाई पीने-पिलाने पर उड़ाने वाले। पत्नी के प्रति हिंसक भी। मस्तनम्मा रोज-रोज की पिटाई से तंग आकर एक दिन अपने पति पर हाथ उठाती है। इधर घरेलू हिंसा से त्रस्त विमला भी मस्तनम्मा से प्रेरणा लेकर कानूनी सलाह केन्द्र का रुख करती है। (26), बानगी के तौर पर उद्धृत की गई यह कहानी प्रायः सभी भाषाओं में मिल सकती है। ध्यान देने की बात है कि इस ढर्रे की कहानियों में प्रेरणा स्रोत दलित स्त्रियां हैं। उनकी संघर्ष क्षमता और विकट प्रतिकूलताओं में जिन्दा रहने की कूवत ही उन्हें प्रेरणा केन्द्र बनाती है।

दलित स्त्रीवादी आन्दोलन का जन्म भले ही अस्मितावाद की जमीन पर हुआ मगर जल्दी ही इस आन्दोलन ने अपने को अस्मितावाद की अनुदार चौहद्दी से मुक्त कर लिया। अस्मितावाद उत्तर आधुनिकता की कोख से पैदा हुआ माना जाता है। उत्तर आधुनिकता की जो धारा आधुनिकता के प्रबल विरोध में फूटी है उसी की सिचाई से अस्मितावाद की फसल पली-बढ़ी है। अस्मितावादी बहस को 'विमर्श' कहा जाता है। इस विमर्श की परिभाषा है- एकल पहचान की बहिर्गामी, एकोन्मुखी और उदग्र पैरोकारी। अन्य पहचानों के प्रति गहरा शक इसके मूल में है। यह विमर्श अपारदर्शी होता है। 'ऐतिहासिक अनुभव' इसे खुलेपन की ओर, पारदर्शिता की तरफ जाने से रोकते हैं। 'पीड़ा' पर बोलने का अधिकार पीड़ित को है। पीड़ा के खिलाफ संघर्ष चलाने का अधिकार भी उसी को है। अस्मितावाद के एक समर्थ प्रवक्ता गोपाल गुरु हैं। पीछे हमने चर्चा की कि दलित स्त्रियों पर गैरदलित स्त्रियों के लेखन को वे 'कम वैध और कम प्रामाणिक' मानते हैं। इस कथन के अर्थ बोध की प्रक्रिया में 'कम' विशेषण का विलोपन लेखक का अभीष्ट है। विमर्श के अध्येताओं को यह बताने की ज़रूरत नहीं। अन्यत्र गोपाल गुरु ने यह प्रतिपादित किया कि दलितों के अनुभवों पर सिद्धांत निर्माण का अधिकार मात्र भुक्तभोगियों को है। इतनी छूट उन्होंने अवश्य दी कि गैरदलितदलित-अनुभवों को मात्र पढ़ने-सुनने के हकदार हैं। (27), लेकिन, यह कैसे हो सकता है कि पढ़ने की छूट मिले और राय बनाने पर प्रतिबंध हो। इस सिद्धांत को स्वीकार लिए जाने पर कई बिडम्बनाएं पैदा होंगी। दर्शनशास्त्री सुंदर सरूक्काइ ने इनका वाजिब संज्ञान लिया है। अब यह महत्वपूर्ण बहस पुस्तक रूप में उपलब्ध है। (28), शायद इस सिद्धांत में निष्ठा के चलते ही 'अवमानना' (ह्युमिलिएशन) पर संपादित अपनी मूल्यवान पुस्तक में गोपाल गुरु ने दलित स्त्री की स्थिति को विचार के बाहर रखा है। यह कहने की ज़रूरत नहीं की जाती और पितृसत्ता के दो पाटों में पिसती दलित स्त्री अवमानना के स्थूल व सूक्ष्म अध्ययन का अपरिहार्य संदर्भ बनती है।(29)

दलित स्त्रीवाद उत्तर अस्मितावादी विचार व आन्दोलन है। आधुनिकता की ओर पीठ किए हुए नहीं, उससे संवाद करता हुआ, मानव-मुक्ति के उसके विश्वास में साझा करता हुआ। देखा जा सकता है कि

अस्मितावाद जहाँ वैश्वीकरण, बाजारीकरण और सार्वजनिक क्षेत्रों के कारपोरेटीकरण का समर्थन करता है या उसे चिंता का विषय मानने से इंकार करता है वहीं दलित स्त्रीवाद शुरू से ही उसका विरोध करता रहा है। नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेंस ने निजीकरण और वैश्वीकरण के खिलाफ संघर्ष करने का जो संकल्प लिया उसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। दलित स्त्रीवाद की प्रमुख हस्ताक्षर उर्मिला पवार ने अपने आत्मकथन की भूमिका में लिखा है: 'हम देखते हैं कि वैश्वीकरण, निजीकरण तथा धार्मिक सत्ता के ध्रुवीकरण से जो होड़ का वातावरण निर्माण हो गया है, उसके कारण अगली और उससे अगली पीढ़ियों का भविष्य संकट में पड़ गया है।' (30), बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मकड़जाल का पर्दाफाश अनिता भारती ने अपनी कहानी 'बीजबैंक' में किया है। (31), अपनी आलोचना-पुस्तक में वे लिखती हैं: 'भूमंडलीकरण, बाजारीकरण के चलते उसके (दलित स्त्री के) श्रम की कीमत दिन पर दिन कम होती जा रही है, जिसके कारण उसके परिवार पर व उसके ऊपर सीधा असर पड़ रहा है। आर्थिक चुनौतियां सुलझाने की जगह और उलझ रही हैं।' (32),

एक अर्थ में अस्मितावाद अतीतोन्मुखी है। इधर के अस्मितावादियों में कोई नागवंश का गुणगान करता हुआ उसकी पुनर्स्थापना के सपने देखता है, कोई मौर्य युग की पुनर्प्राप्ति के लिए तड़पता है। इन दिनों मूल निवासी 'आन्दोलन' ज्यादा जोर पकड़े हुए है। इस 'आन्दोलन' का मानना है कि इस देश में रहने का हक सिर्फ मूल निवासियों को है। हमलावरों और घुसपैठियों को बाहर किया जाना चाहिए। यहाँ यह याद कर लेना ठीक रहेगा कि डॉ. अम्बेडकर आर्य आक्रमण के इस सिद्धांत को नहीं स्वीकारते थे। ब्राह्मणों को सर्व शक्तिमान मानने से भी उन्हें गुरेज था। भारतीय समाज पर जाति व्यवस्था थोपने का 'श्रेय' भी वे ब्राह्मणों को नहीं देते थे। हाँ, उनकी सहयोगी भूमिका से उन्हें इंकार न था। (33), अस्मितावाद ने ब्राह्मणों को (ज्यादातर प्रसंगों में ब्राह्मणवाद का प्रयोग नहीं किया जाता) इतिहास की नियामक शक्ति मानते हुए उनका लगातार 'शक्ति संवर्धन' किया है। अस्मितावादी व्यक्ति की 'उत्पीड़ित' की छवि इसीलिए रूढ़ हो चली है। दलित स्त्री के नजरिए से देखे तो मूल निवासी आन्दोलन एकदम अस्वीकार्य ठहरता है। मूल निवासी व्यवस्था जिस रोमानीकृत रूप में पेश की जाती है उसमें सारी भीतरी दिक्कतें विलुप्त हो जाती हैं। इन दिक्कतों की चर्चा करना भी मूल निवासी सिद्धांतकारों को नागवार गुजरता है। फिर जिस संस्कृति की रूपरेखा पेश की जाती है उसमें स्त्रियाँ दायित्व के बोझ से दबी हुई, संदेह की शूली पर चढ़ाई हुई और सर्वथा अधिकार वंचित नजर आती हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की स्वर्णिम अतीत की कल्पना और उसकी परिणतियों पर बेहतर अध्ययन उपलब्ध हैं। सांस्कृतिक अस्मितावादियों से उनकी समानता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संदर्भ में उन अध्ययनों से सहायता ली जा सकती है।

उत्तर अस्मितावाद ने प्रयत्न करके 'उत्पीड़ित' की छवि से दूरी बनायी है। दलित स्त्रीवाद की विकासयात्रा पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि पीड़ित स्त्री से क्रमशः शक्ति सम्पन्न दलित स्त्री की अवधारणा निर्मित हो रही है। अस्मितावादी वैचारिकी के तहत लिखी गई आत्मकथाओं के शीर्षक देखें और उसकी दलित स्त्रीवादी दृष्टि से सृजित आत्मकथाओं के शीर्षकों की तुलना करें तो यह बात समझने में आसानी होगी। पहली धारा में 'अक्करमाशी', 'जूठन', 'तिरस्कृत', 'घाव', 'छांग्या रूक्ख'

आदि हैं तो दूसरी में 'जीवन हमारा', 'करक्कु', 'आयदान' हैं। (34), दलित स्त्री की शुरुआती आत्मछवि तमिल की कवि तरेसम्मा के शब्दों में यों मिलती है-

हम गरीब
इसलिए करते हैं मजदूरी
लेकिन वही सिल्की बिस्तर उपहास करता है हमारा
जब हमारा दिन-दहाड़े बलात्कार होता है।
अशुभ-अभागी हैं हमारी जन्मकुंडलियाँ।
हमारे लड़खड़ाते पति भी
खटिया के एक कोने में पड़े हुए
फुफकारते और बदला लेने को चीखते हैं
अगर हम उनकी पकड़ न झेल सकें। (35)

संक्रमण के दौर से गुजरती, क्रमशः आत्मविश्वास अर्जित करती दलित स्त्री तेलुगु दलित रचनाकार जलदि विजयकुमारी की एक कविता में इस तरह आकार पाती है:

अनखिला फूल
विफल ध्यान
... ..
में एक शापित
पुरुष जाति की दासी
जिसने रूग्ण अक्षरों को बना डाला है सजावटी
और
हैवानियत से सत्ता का इस्तेमाल करते हुए
अपनी लंपट वासनाओं का बंदी
विवाह के नाम पर धोखा
पुरुष-असुरों की मृत्यु धुन पर नाचती लाश
दहेज के कब्रिस्तान में
गूँज रही लय विरोधी विचारधारा की
लेकिन, अगर तुम्हारे हाथ में शहनाई जरा भी अचेत हुई
में व्यथित होने वाली नहीं
भीषण बदला
प्रतिरोधी बना
इसीलिए ओ मां
हताशा और विफलता से पीड़ित

यह हमारा युग है।
 आगे बढ़ो हिम्मती बहनों
 मैं दूंगी तुम्हारा साथ
 मैं अबला नहीं
 मैं हूँ, शक्ति
 जिसने रचे ढांचे
 लुढ़काने को पंक
 “मैं एक मां”
 जिसने जिंदगी बखशी स्वयं इस जन्म को। 36

पीड़ित से शक्तिसंपन्न व्यक्तित्व में अंतरण प्रायः सभी भाषाओं की दलित स्त्री रचनाकारों में देखा जा सकता है। नयी दलित स्त्री खुदमुखतार है। अपनी जिम्मेदारियों से वाकिफ़ और अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। उसका संघर्ष और संकल्प बेहतर वर्तमान के साथ काम्य भविष्य के निर्माण के लिए है। नयी दलित स्त्री की कुछ अभिव्यक्तियां देखिए:

1. 'एक दिन आऊंगी मैं/दबावों के चलते नहीं/न किसी की दासी बनकर/तनी हुई रीढ़ के साथ/किसी के सामने झुकती हुई नहीं/बगैर किसी चूक के/किसी को बातचीत की अनुमति दिए बिना/सोचने का समय दिए बिना/आलोचना की परवाह न करके/प्रतिक्रियाओं के लिए अवकाश दिए बगैर/तब मेरा साथी होगा सत्य/कर्म मेरी ताकत.' (के.के. निर्मला, मलयालम)37,

2. 'बहुत दिनों से देख रही थी/कुछ झंडे पड़े हुए थे/धूप-छांह, वर्षा-पानी से भी/कुछ फ़र्क नहीं पड़ा था इन पे/पास से गुजर रही जनता की आँखें भी/नहीं पड़ रही थीं इन पे/अयोग्य है यह पकड़ने के लिए/कंधे पर उठाकर ज्यों चलना शुरू किया। जनता के ये सवाल तभी से/आप में से किसी ने उठाया नहीं इसे/इसलिए मैंने उठा लिया/इसके बाद देख रहीं हूँ/एक-एक करके सभी उस स्तूप से/झंडा उठाकर चलना शुरू कर दिए/कौन किस तरह जाएगा, यह समझे बिना/कुछ लोग तितर-बितर हुए/कुछ लोग इधर-उधर चल दिए/अंत में देखती हूँ/सभी का गंतव्य/उस एक ही दिशा की तरफ हैं'38,(कल्याणी ठाकुर, बागला)

3. 'मैं हूँ शक्ति/मैं हूँ आशा/मैं हूँ तो कैसी निराशा?/मैं तेरे खेतों में बहती।शीत-जल प्रवाहिनी हूँ।/बांध जब मुझ पर बने/ तो दामिनी हूँ/जो करोगे प्रेम/ तो मैं रागिनी हूँ/झूठी मर्यादाओं में/न मैं बधूंगी/परम्परा और संस्कृति के नाम पर न/मैं दबूंगी' (39),(पूनम तुषामड़, हिन्दी)

4. 'बेआवाज़ लहरों वाला सागर/किलकारियां भरता चंद्रमा/बेसुर रात में झींगुरों के प्रेम पर/सोचती-जागती/काली चमड़ी के भीतर सुनने की

—हामी/भरतीहुई/वार्तालाप/आक्रोश/अट्टाहास/कराहै/लड़कियां/आदि मचल रहे हैं/एक सिनेमाघर!' (40),

² Ra

³ E./ (धन्या ए.डी. मलयालम)

5. अनिता भारती, हिन्दी 'आँखों में भर लूँ/आसमान/दौड़ जाऊँ इठलाकर/बादलों पर/सारी दुनिया मेरी है/मन की कलियां/सतरंगी सपने बुन रही हैं/सूरज की गमक आँखों में/भर रही हैं (41),(अनिता भारती, हिन्दी)

जैसे पारम्परिक वर्चस्ववादियों को शिकायतों का पिटारा लिए बैठा दलित सह्य लगता है वैसे ही अस्मितावादियों को व्यथा में डूबी दलित स्त्री की आवाज़ स्वीकार्य लगती है। लेकिन, यह स्त्री जब स्वयं कदम उठाती है, बाहरी और भीतरी हिंसा के खिलाफ संघर्ष में उतरती है, न्याय का माँग करती है, अपनी शर्तों पर जिन्दगी जीने के ख्वाब बुनती है तो अस्मितावादियों और पारम्परिक वर्चस्ववादियों-दोनों को खटकने लगती है। वर्चस्ववादियों का खटकना तो तुरन्त समझ में आ जाता है लेकिन अस्मितावादियों का बिडम्बनापूर्ण लगता है। इस असुविधाजनक स्थिति से निपटने के लिए आम तौर पर अस्मितावादियों के तीन खेमे बनते देखे जा सकते हैं। पहले वर्ग में वे लोग होते हैं जो स्त्री मात्र के प्रति घृणा से भरे रहते हैं। दलित स्त्रियाँ भी उनकी कोप दृष्टि से बाहर नहीं रहतीं। दूसरी श्रेणी सांस्कृतिक अस्मितावादियों की होती है। भीतर की कमजोरी बाहर न प्रकट हो इस तर्क से, तथाकथित दलित संस्कृति/ मूलनिवासी संस्कृति/ नाग संस्कृति... की पुनर्चना, पुनर्प्राप्ति के तर्क से, यह लड़ाई हम लड़ ही रहे हैं, के तर्क से दलित स्त्रियों को चुप कराने या अपने अजेंडे की अनुगामिनी बनाने पर उनका जोर रहता है। तीसरे वर्ग में ऐसे विचारक होते हैं जो दलित स्त्रियों का विरोध नहीं करते। यही नहीं, वे दलित स्त्रियों की बदनामी करने वाले पहले वर्गकी खुलकर आलोचना भी करते हैं। लेकिन, इस वर्ग के लिए जाति का प्रश्न सर्वोपरि होता है। पितृसत्ता को जाति जैसी प्राथमिकता देना उन्हें विचलन लगता है। वे इसीलिए ऐसी लेखिकाओं और जाति तथा पितृसत्ता को समान महत्व देने वाली रचनाओं की चर्चा करने से यथासंभव बचते हैं। दलित स्त्री जीवन को सामान्य दलित जीवन में अन्तर्भुक्त मानकर वे दलित स्त्रीवाद की अलग से चर्चा करना जरूरी नहीं समझते। (42),

दलित स्त्रीवाद में सौंदर्यशास्त्र को लेकर उत्सुकता का प्रायः अभाव दिखता है। दलित अस्मितावाद में 'अपना' सौंदर्यशास्त्र गढ़ने की जैसी व्यग्रता पनपी और बनी हुई है वैसे मांग दलित स्त्रीवादियों की तरफ से नहीं की गई है। इसके कारणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। पहली वजह यह लगती है कि जो समुदाय मानवधिकारों की लड़ाई लड़ रहा हो उसके लिए राजनीतिक चेतना का महत्व है, सौंदर्यशास्त्र का नहीं। दूसरी यह कि सौंदर्यशास्त्र की प्रकृति में स्त्री के वस्तुकरण की आशंका अंतर्गृथित है। तीसरी, विश्व बाजार की घुसपैठ ने वस्तुकरण की आशंका को मजबूती दी है। विचारणीय है कि दलित सौंदर्यशास्त्र के दोनों अधिकारी विद्वान वैश्वीकरण तथा बाजारवाद के समर्थक भी हैं।(43) चौथी वजह यह है कि यह दौर नयी दलित स्त्री के निर्माण का है। इस दौर की प्राथमिक चिंता सशक्तीकरण के संसाधन जुटाने और अनुकूल माहौल बनाने की है। सौंदर्यशास्त्र इस संदर्भ में दलित स्त्रीवादियों को शायद कोई सहायता नहीं देता। पांचवी और फिलहाल आखिरी वजह दलित सौंदर्यशास्त्र के ऊपर छपे ग्रंथों की विषयवस्तु है। शरण कुमार लिंबाले द्वारा लिखित 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' देशी-विदेशी साहित्य की चर्चा करने से बावजूद दलित स्त्री लेखन

की नोटिस तक नहीं लेता। 'दलित वीमेंस राइटिंग, की संपादक के. सुनीता रानी ने प्रस्तुत पुस्तक के बारे में यह कहते हुए अपनी आपत्ति दर्ज कि पश्चिमी साहित्य, भारतीय साहित्य और दलित साहित्य की चर्चा करने वाले लेखक ने दलित स्त्री साहित्य का उल्लेख तक क्यों नहीं किया। यह तब जबकि मराठी दलित साहित्य में दलित स्त्रियों की सशक्त आवाज़ मौजूद थी। (44), अपनी इस पुस्तक के नए (दूसरे) संस्करण में लिंबाले ने इन पंक्तियों के लेखकों द्वारा लिया गया इंटरव्यू शामिल किया है। दलित स्त्री पर केन्द्रित मेरे प्रश्न के जवाब में उन्होंने यह अवश्य माना कि 'उसका दोहरा शोषण होता है', लेकिन, दलित स्त्रियों की आलोचना के केन्द्र डॉ. धर्मवीर का संदर्भ आने पर उन्होंने धर्मवीर का पक्ष लिया। (45), दलित सौन्दर्यशास्त्र के विशेषज्ञ से यह उम्मीद गैरवाजिब नहीं कि वह दूसरों के मुकाबले ज्यादा संवेदनशील होगा। लिंबाले की संवेदनशीलता का पता चला दलित स्त्रीवादी उर्मिला पवार की आत्मकथा 'आयदान' के प्रकाशन पर। उर्मिला पवार पर हमला करने वालों में शरणकुमार लिंबाले दूसरों से आगे रहे। उर्मिला पवार की आलोचना के मुख्य बिन्दु ये थे-

- उनकी (उर्मिला की) सोच फेमिनिस्ट है। (फेमिनिज़्म- आरोप, विपथन के रूप में)
- अंतरंग बातों को सार्वजनिक करना अम्बेडकरवाद के दायरे में नहीं आता। पति से उनके संबंध कैसे थे- यह बताने में अम्बेडकरवादी दर्शन कहाँ है?
- क्योंकि उर्मिला नारीवादियों के सम्पर्क में हैं इसलिए ऐसा (गैर अम्बेडकरवादी लेखन) कर रही हैं।
- जब वे अपने पति हरिश्चन्द्र का शराब पीना नहीं छुड़वा सकीं तो सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में विफल रहेंगी ही।
- मरणासन्न पति की किडनी एक ज़रूरतमंद युवती को दान करने के उर्मिला के विचार पर स्तब्ध लिंबाले ने कहा कि यह सोच नारीवादी विचारधारा की देन है। 'एक विवाहिता भला अपने पति के बारे में ऐसा सोच भी कैसे सकती है?' (46),

दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर दूसरी किताब ओम प्रकाश वाल्मीकि की है। किताब में एक दर्जन से अधिक अध्याय हैं लेकिन दलित स्त्री की पीड़ा या उसका साहित्य किसी भी अध्याय का विषय नहीं बन सके हैं। (47), वाल्मीकि (सौन्दर्यशास्त्री होने के साथ) कवि, कथाकार, आलोचक भी हैं। नहीं याद पड़ता कि किसी कविता या कहानी में उन्होंने नयी दलित स्त्री की शिनाख्त की हो, उसका चरित्र रचा हो। उसे समर्थन देने की बात तो इसके बाद ही आती है। उन्होंने किसी आलोचना ग्रंथ में दलित स्त्री आन्दोलन की चर्चा तक नहीं की है। हाँ, उनकी कई कहानियों में 'पारम्परिक' दलित स्त्रियों के चरित्र हैं। इनमें कुछ-एक की संघर्ष-क्षमता प्रेरणास्पद लग सकती है। लेकिन नैतिकता/यौन मर्यादा के प्रश्न पर लेखक ने परम्परा का ही समर्थन किया है। (48),

दलित सौन्दर्यशास्त्र और उसके प्रस्तावकों की इन भूमिकाओं से दलित स्त्रीवादियों का शंकित होना स्वाभाविक ही है। सौन्दर्यशास्त्र से उनके विकर्षण में इस परिस्थितिजन्य अनुभव की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता।

दलित स्त्रीवादी आन्दोलन ने अपने विकास का दूसरा पड़ाव कठिनाइयों से गुजरते हुए सफलतापूर्वक पार कर लिया है। अब उसकी सामर्थ्य और स्वतंत्र-स्वायत्त स्थिति पर बहस करने की जरूरत नहीं रह गयी। अस्मितावाद अपनी ऐतिहासिक भूमिका लगभग निभा चुका है। जैसे अर्सा पहले जातिवादी संस्कृति का मानव विरोधी रूप पहचाना जा चुका है वैसे दलित धर्म और संस्कृति के किसिम-किसिम के संस्करण भी मानवाधिकारों की राह में अवरोधक के रूप में चिन्हित होने लगे हैं। दलितवाद को छोड़कर अम्बेडकरवाद की तरफ जाना इसीलिए श्रेयस्कर माना जा रहा है। अम्बेडकरी आन्दोलन की विरासत से निकला स्त्रीवाद अपने दम पर अग्रसर है। अम्बेडकरी आन्दोलनों से निकली, जन अभियानों के बीच निर्मित हो रही युवाओं की नयी पीढ़ी इन स्त्रीवादियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती देखी जा सकती है। यह पारस्परिक सहयोग भरोसा पैदा करता है। रूप के स्तर पर 'जेंडर से 'सेंसिटिव' नयी पीढ़ी को अंतर्वस्तु के स्तर पर भी समृद्ध करना इस आन्दोलन की बड़ी जिम्मेदारी है।(49),

अपने संघर्षों, सरोकारों को यह आन्दोलन जितना भविष्योन्मुखी, जनोन्मुखी तथा संवेदनक्षम बनाता जाएगा उतना ही पीड़ित मानवता के काम का साबित होगा। इस क्षेत्र के अध्येताओं तथा सिद्धांतकारों को अस्मितावाद से बाहर आकर उत्तर अस्मितावाद की चर्चा की शुरुआत करनी है। उत्तर अस्मितावाद का स्वरूप अभी बन ही रहा है। स्वरूप निर्माण की दिशा दलित स्त्री आन्दोलन को तय करना है। दलित स्त्री विमर्श रूप के स्तर पर नयी दलित स्त्री को गढ़ सकता है, लेकिन आवश्यकता अन्तर्वस्तु से संपन्न नयी दलित स्त्री के निर्माण की है। यह तभी संभव हो सकता है जब दलित स्त्री आन्दोलन जीवन के आधारभूत मुद्दों पर संघर्ष छोड़े। इन मुद्दों पर संघर्षशील संगठनों, समूहों के साथ सहयोग करे तथा ईमानदार प्रयासों को साझे मंच पर लाने में अपनी भूमिका निभाए। अभी भी सबसे कम साक्षरता दलित स्त्रियों में है। पारिवारिक सम्पत्ति में उनका हिस्सा प्रायः नहीं होता। उन पर हुए जुल्म को प्रशासन हर संभव नज़रअंदाज करने की कोशिश करता है। पुरुषों के मुकाबले उनकी मजदूरी अक्सर कम होती है। काम के घण्टे, अवकाश, उचित परिवेश और हिंसामुक्त परिवार चिंता का विषय बने हुए हैं। इन सबसे टकराए बिना न मानवाधिकारों की रक्षा की बात सोची जा सकती है और न नयी दलित स्त्री के निर्माण को पूरी तरह साकार किया जा सकता है।

दलित स्त्री की सक्रियता, संघर्ष क्षमता और समानधर्माओं के प्रति संवादोन्मुख रवैये से उनके पक्ष को मजबूती मिल रही है।

संदर्भ

1. 'Dalit Feminism: Where Life- Worlds and Histories Meet',
v.Geetha in 'Women Contesting Culture: Changing
Frames of Gender Politics in India' (2012), Edited by Kavita Panjabi and
ParomitaChakravarti, STREE, Kolkata, P.244.
2. वहीं. पृ. 245
3. 'Untouchability and Dalit Women's Oppression', Bela Malik in 'Gender and Caste'
(2003 Reprint 2006) Edited by AnupamaRao. Kali for Women, New Delhi,Pp.102-
107
4. वहीं. पृ.103.
5. वहीं पृ.103
6. 'A Dalit Feminist Standpoint', SharmilaRege in 'Gender and Caste', Pp.90-101.
This paper was originally published in Seminar 471, Nov.1998, pp.47-52.
7. वहीं पृ.93.
8. वहीं पृ.93.
9. वहीं पृ.95.
10. 'Dalit Women Talk Differently', Gopal Guru, Economic and Political Weekly,
Oct.14-21,1995, pp. 2548-50. This essay is reproduced in 'Gender and Caste', pp.
80-85.
11. शार्मिला रेगे, पूर्वोक्त, पृ.99.
12. अनुपमा राव द्वारा 'जेंडर एंड कास्ट' की भूमिका में उद्धृत, पृ.4.
13. 'The Prisons We Broke' (2008), Baby Kamble, Trans. MayaPandit, Orient
Longman, Afterword-Gopel Guru, p.160
14. वहीं पृ.161.
15. वहीं पृ.154-55
16. वहीं पृ.155.

17. वहीं पृ.156-57.
18. 'Dalit Movements and Women's Movements', Gabriele Dietrich in 'Gender and Caste', pp.65-66.
19. वहीं पृ.66.
20. वहीं पृ.66.
21. 'Power That Transcends', S, Thenmozhi in 'The Oxford India Anthology of Tamil Dalit Writing' (2012) edited by Ravikumar and R.Azhagarasan, Oxford University Press P.305
22. वहीं पृ.305
23. वहीं पृ.305.
24. 'दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर'(2008), विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ10.
25. 'समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन'(2011), सम्पादक रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.12.
26. 'Flowering from the soil: Dalit Women's Writing form Telugu'(2012) Translated and Compiled by K.SuneethaRani,Prestige Books International New Delhi.pp. 38-44
27. 'The Cracked Mirror: An Indian Debate on Experience and Theory'(2012) Gopal Guru, Sunder Sarukkai, Oxford University Press.
28. कुल नौ अध्यायों की उक्त पुस्तक गोपाल गुरु और सुन्दर सरुक्काइ के बीच संवाद के रूप में है।
29. 'Humiliation: Claims and Context'(2009) edited by Gopel Guru, Oxford University press.
30. 'आयदान'(2010) उर्मिला पवार, अनु.माधवी प्र.देशपाण्डे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 'आत्मभान'(भूमिका) से उद्धृत।
31. 'बीजबैंक' अनिता भारती, 'कथादेश' नवम्बर 2011 अंक में प्रकाशित। यह कहानी लेखिका के संग्रह 'एक थी कोटेवाली' में भी संग्रहीत है।लोकमित्र प्रकाशन 2012
32. 'समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध' (2013) अनिता भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.295.

33. Gabriele Dietrich in 'Gender and Caste', pp.74-75.

34. 'अक्करमाशी'- (दोगला)- मराठी-शरण कुमार लिंबाले, 'जूठन',-हिन्दी- ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'तिरस्कृत'- हिन्दी- सूरजपाल चौहान 'घाव'- तमिल- के.ए. गुणशेखरम, 'छांग्या रूक्ख'- (कटा छंटा पेड़)- पंजाबी- बलबीर माधोपुरी।

'जीवन हमारा'-मराठी- बेबी कांबले, 'करक्कु'-(एक विशेष पेड़ की धारदार पत्ती) –तमिल- बामा, 'आयदान'(डलिए की बुनाई)- मराठी- उर्मिला पवार। हिन्दी में सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' प्रकाशित है। यह कृति दलित स्त्री लेखन को समझने में सहायता कर सकती है परन्तु लेखिका को दलित स्त्रीवादी कहने में संकोच है।

35. गैब्रिएल डीट्रिख द्वारा उद्धृत 'जेंडर एंड कास्ट', पृ.70. इस भावधारा की दलित स्त्री कविताओं का एक अध्ययन मैंने 'हमारे हिस्से का सच: तेलुगु दलित स्त्री लेखन' 'कथादेश' मार्च 2006 में प्रकाशित करवाया था।

36. 'Flowring from the soil', pp.300-301.

37. 'कथादेश' फरवरी 2010, दिल्ली, पृ.66.

38. 'कथादेश' सितम्बर 2009, पृ.72-73. अनुवाद-निशांत। जिन कविताओं के अनुवाद/अनुवादिका का नाम नहीं दिया गया है उनका अनुवाद इन पंक्तियों के लेखक ने किया है।

39. 'मां मुझे मत दो' (2010), पूनम तुषामड़, सफाई कर्मचारी आन्दोलन, नई दिल्ली, पृ. 51.

40. कथादेश, जून 2012, मलायलम दलित स्त्री कविता पर विशेष आयोजन, अनुवाद- प्रमीला के.पी., पृ.80.

41. 'एक कदम मेरा भी' (2013), अनिता भारती, बुक्स इंडिया, दिल्ली, पृ.152.

42. 'हिन्दी दलित साहित्य' (2011) मोहनदास नैमिशराय, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली। कुल चौदह अध्यायों वाले इन ग्रंथ में एक भी अध्याय दलित स्त्री लेखन पर नहीं है।

'दलित अस्मिता' जनवरी-मार्च 2011 अंक में डॉ.रामचंद्र का लेख 'दलित काव्य में दलित चेतना' प्रकाशित है। इसमें लेखक ने दलित काव्य/साहित्य की प्राथमिकताएं गिनाई हैं। अपेक्षित विस्तार के साथ परिगणित पंद्रह प्रवृत्तियों में

राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य का महत्व

डॉ. फिल्मेका मारबानियांग

प्रत्येक देश तथा जाति-जनजाति का अपना लोक साहित्य होता है। लोक साहित्य मानव की सहज अभिव्यक्ति है। यह मौखिक परम्परा में पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है। यह लोक की वाणी है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात होता है। लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं- “सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख, आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे लोक साहित्य कहते हैं।”¹

डॉ. उपाध्याय ने लोक साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है- 1. लोक-गीत(Folk-lyrics), 2. लोक-गाथा(Folk-ballads), 3. लोक-कथा(Folk-tales), 4. लोक-नाट्य(Folk-drama), 5. लोक-सुभाषित(Folk-sayings)²

राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य का विशेष महत्व है। इसके माध्यम से किसी देश का धर्म, समाज, साहित्य, दर्शन तथा नैतिकता संबंधी ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में स्थानांतरित होते हैं। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य का ऐतिहासिक, भौगोलिक और भाषा शास्त्रीय महत्व भी है।

विविध विषयों के लिए लोक साहित्य का महत्व

ऐतिहासिक महत्व -लोक साहित्य में इतिहास के प्रचुर सामग्री विद्यमान है। लोक साहित्य के सम्यक अध्ययन से किसी भी देश या समाज का इतिहास स्पष्ट रूप से हमारे सामने आ जाता है। इसका कारण यह है कि लोकमानस इतना सजग रहता है कि समाज में जो भी घटित होता है वह लोककथा, लोकगाथा अथवा लोकगीत के रूप में जन साधारण के बीच में प्रचलित हो जाता है। राजा-महाराजाओं का शासन व्यवस्था, युद्ध-वर्णन, देश की तत्कालीन सामाजिक स्थिति आदि का जितना स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन लोक साहित्य में मिलता है उतना इतिहास में नहीं मिलता। लोक साहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. शंकर लाल यादव ने लिखा है-“लोक मस्तिष्क ने अपने इतिहास की लड़िया अपने गीतों में, अपनी कथाओं में जोड़ी हैं। लोक गाथाएँ तो एक रूप से इतिहास की प्रचुर सामग्री से सम्पन्न हैं। उनमें अतिरंजना भले ही हो किन्तु इतिहास के विद्यार्थी को कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जो प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की दृष्टि से छूट गये हैं।”³ लोकगीतों को देखें तो इनमें अकाल, दैवीय आपत्तियों, महामारियों आदि को विषय बनाया गया है। इसके अतिरिक्त 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से लेकर गाँधी जी की मृत्यु तक के लोकगीत लोक में प्रचलित हैं। भोजपुरी में मुगलों के शासन काल के समय देश में फैले अशान्ति एवं दुर्व्यवस्था का चित्रण मिलता है। इस भाषा में कुसुमा देवी की कथा पर आधारित लोकगीत प्रचलित है। एक बार मिर्जा नामक एक तुर्क सरदार की कुदृष्टि कुसुमा देवी पर पड़ी। उसने जवर्दस्ती कुसुमा को उठवा लिया और उसके पिता को कैद कर लिया। पालकी में जाते समय कुसुमा ने रास्ते में पड़ने वाले अपने ही पिता के तालाब में पानी पीने की इच्छा जतायी। तालाब के पास जाकर उसने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार उसने अपने सतीत्व की रक्षा की। यह लोकगीत आज भी जनमानस में लोकप्रिय है। गीत के कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

“तनियक डोलिया थमाओ मिरजवा,
 बाबा के सगरवा मुँहवा धोइत हो ना ।
 बाबा के सगरवा सुन्दर बढइल पनियाँ,
 हमरे सगरवा पनियाँ पीयो हो ना । ।
 तोहरा सगरवा मिरजा नित उठि होई हैं,
 बाबा कै सगरवा दुरलभ होइहैं हो ना । ।
 एक घूँट पियली दूसरा घूँट पियली,
 तिसरे में गई है तराई हो ना । ।
 रोई रोई जालावा डलावै राजा मिरजा,
 फँसि आवै घोंघिया सेवरिया हो ना ।
 मुँहवा पटुका देके रोवे राजा मिरजा,
 मोरे मुँह करिखा लगवलू हो ना । ।
 सिर पै पगड़िया बाँधि हँसे भैया बाबा,
 दूनों कुल राखेउ बहिनी कुसुमा हो ना । ।”⁴

उत्तरी भारत में वीर-कथात्मक गाथाएँ मिलते हैं जिनमें इतिहास के पुट मिलते हैं। जैसे ‘आल्हा’ नामक लोकगाथा में आल्हा-उदल के पराक्रम और वीरता का वर्णन मिलता है। ‘लोरिकायन’ में लोरिकी की वीरता तथा ‘विजयमल’ में विजयमल की वीरता का चित्रण किया गया है।

खासी लोकसाहित्य में भी इतिहास के अंश मिलते हैं। खासी साहित्यकार उ एच. एलियास नामक विद्वान ने लोककथाओं पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि लोककथाओं पर ही किसी सम्राज्य या देश का इतिहास आधारित है।⁵ खासी लोककथा ‘उ स्पम मादुर-मास्कुट’ में यद्यपि अलौकिकता के पुट मिलते हैं तथापि इस कथा से मादुर-मास्कुट सम्राज्य की शक्ति का पता चलता है। इस कथा से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार छल कपट के साथ अर्थात् एक सुन्दरी के प्रेमजाल में फंसा कर सुटडा के राजा नेमादुर-मास्कुट के राजा नियाड का अंत कर उसने अपना सम्राज्य विस्तार किया। ‘उ मनकाथियांग बाड की स्पम मुक्सियार’ नामक कथा में उ मनकाथियांग नामक पुरुष की वीरता का वर्णन किया गया है जिसने अपनी वीरता और साहस से शत्रु राजा के अत्याचार का मुँहतोड़ जवाब दिया और अपने समुदाय की रक्षा की। ‘उ साजार नाडली’ की कथा में यह पता चलता है कि राजा के मंत्रियों के बीच ईर्ष्या का भाव प्रबल होता है। जिसके कारण राजा को उसके प्रिय मंत्री के खिलाफ भड़काया जाता है। लेकिन व्यवहार कुशलता के कारण उ साजार नाडली प्रजा में लोकप्रिय होता है। उसके कहने पर सभी लोगों ने बिना कुदाली और फावड़े के मात्र अपने-अपने धनुष से एक बड़ा तालाब खोद डाला। आज भी यह तालाब ‘का थाडलास्केन लेक’ के नाम से जाना जाता है। यह जाइनतिया पहाड़ों के सुन्दरतम पर्यटक स्थलों में से एक है।

सामाजिक महत्व

लोक साहित्य में किसी भी समाज के खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, व्यवहार, प्रथा, विश्वास एवं परम्परा तथा पारीवारिक संबंध आदि का ज्ञान होता है। लोकसाहित्य और समाज के संबंध पर आधारित डॉ. सत्येन्द्र का कथन है- “लोकसाहित्य और समाज का संबंध इसलिए निर्विवाद है कि लोक और समाज परम्परावलम्बी हैं। किसी भी युग में लोक बिना समाज के और समाज बिना लोक के नहीं हो

सकता।”⁶लोकसाहित्य में परिवारिक संबंधों का चित्रण मिलता है। हिन्दी लोकगीतों में पुत्री की विदाई पर माता-पिता तथा भाई की गहरी ममता का वर्णन मिलता है। नन्द और भावज का शाश्वतिक विरोध इन गीतों में मिलता है। बहू पर अत्याचार करने वाली सास को ‘दरूनिया’ कहकर संबोधित किया जाता है। स्थानीय रीति-रिवाज और प्रथाओं का वर्णन भी लोकगीतों में देखा जाता है जैसे भोजपुरी समाज में पुत्र के जन्म के अवसर पर थाली बजाने की प्रथा है। विवाह के अवसर पर अपनाये जाने वाले द्वारपूजा, गुरहथी,सुमंगली आदि प्रथाओं का वर्णन वर्तमान समय में वैदिक विवाह पद्धति को समझने में सहायक हो सकते हैं।

खासी समाज में प्रचलित लोककथाओं से स्पष्ट होता है कि इस जनजाति में जातिगत उच्च-नीच की भावना नहीं पायी जाती है। खासी में ‘क्रुद किंसग’ लोकगीत प्रचलित है। यह गीत हल जोतते समय गाया जाता है। डॉ. डेस्मण्ड खारमावफ्लांड के अनुसार “इनकी विषयवस्तु के दायरे में विवाहार्थ प्रार्थना से लेकर व्यंग्य प्रहार एवं हास्यपूर्ण चुटकुले तक होते हैं। ये गीत अत्यधिक श्रृंगारिक भी होते हैं।”

गीत में बेटा माँ से कहता है कि जब तुम ओखल में चावल पूरा पीस लोगी तो मैं तोई की बहन को लाने जाऊँगा। अर्थात् तुम्हारी बहु को लाऊँगा। इस गीत में खासी लोगों की स्वच्छता-प्रिय स्वभाव का भी वर्णन किया गया है। बेटा माँ से कहता है -

“जल्दी-जल्दी बुहार लो ओह माँ
सामने के हाते को साफ कर लो।”⁷

खासी समाज में क्वाइ-टम्पव अथवा सुपारी पान खाने का रिवाज है। अतिथि सत्कार के लिए भी इस खाद्य पदार्थ का विशेष महत्व है। ‘क्रुद किंसग’ गीत में यहाँ के लोगों में पान चबाते रहने की आदत का भी वर्णन किया गया है। गीतकार कहता है-

“पर बहरी बुड्डी औरत चबा रही है
पान के पत्ते को, तब तक
जब तक कि उसका मन उकता न जाए।”⁸

सांस्कृतिक महत्व

लोकसाहित्य के अध्ययन से किसी देश या जाति की सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त होता है। लोकसाहित्य में किसी संस्कृति विशेष के उत्थान पतन का जितना जीवन्त चित्रण मिलता है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। लोक में प्रचलित पर्वोत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, अनेक व्रत, उपवास, मेले आदि में संस्कृति के अमिट छाप मिलते हैं। ब्रज लोकगाथा ‘महादेव कौ ब्याहलौ’ में ब्रज लोकजीवन एवं लोक संस्कृति के स्पष्ट एवं सजीव चित्रण मिलते हैं। इस लोकगाथा से लोक संस्कारों की अभिव्यक्ति होती है। पार्वती के विवाह में ब्रज लोकजीवन में प्रचलित विवाह पद्धति को ही अपनाया गया है। जब ब्रज में कन्या या पुत्र की उत्पत्ति होती है तो पुरोहितों को बुलाकर दान दिया जाता है। लोकगाथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

“सिवतेरसि जन्मी कन्या।
घर के ब्राह्मण बोलि लये।।

छान्दन की चौकी डारि दई।
ऊपर गिलम विछाय दई।।
जथ जोरि बोल्यौ राजा।
बैठि जाथौ विरमा ग्यानी।।
पांच मुहर पच्चीस असरफी।।
जो विरमा दक्षिना दीनी।”⁹

खासी जनपद में वसंत ऋतु में मनाया जाने वाला ‘का शाड सौक मन्सेम’ उत्सव में लोग नृत्य के द्वारा ईश्वर को धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिसने सम्पूर्ण जनसमुदाय पर अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखी। इसके साथ ही वे अगामी वर्षों में मानव जाति की सुख और समृद्धि के लिए भी प्रार्थना करते हैं। इस नृत्य में युवतियाँ मैदान के बीच में धीरे-धीरे पैर हिलाती हुई नृत्य करती हैं जबकि युवक दाये हाथ में तलवार तथा बाये हाथ में सफेद रंग का चवर लेकर युवतियों को घेरते हुए उनके चारों ओर नृत्य करते हैं। इस नृत्य में तलवार वीर योद्धा का और सफेद चवर समाज में पुरुष के कुल संरक्षक के रूप को दर्शाता है। नृत्य के माध्यम से यह दर्शाया जाता है कि स्त्री परिवार की देवी है वह कुल-संपत्ति की संरक्षिका है और पुरुष घर का मुखिया है और वह अपने परिवार तथा संपूर्ण कुल का रक्षक है। यह नृत्य खासी जनजाति के मातृवंशीय समाज को अभिव्यक्त करती है। जाइनतिया पहाड़ों में मनाया जाने वाला ‘का बेह डेडख्लाम’ नामक उत्सव में ईश्वर से लोगों की अच्छी सेहत, अच्छी फसल तथा सुख-समृद्धि की कामना करते हैं। इस उत्सव में लोग ‘उ डेन ख्लाम’ नामक लाठी से लोगों के घर के छत पर मारते हैं। ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से ये घर वर्षा ऋतु में फैलने वाले कई महामारी से मुक्त हो जाते हैं। इस नृत्य से जनपद में निहित लोकमंगल की भावना का पता चलता है।

धार्मिक महत्व

लोक का जीवन उसके धार्मिक विश्वास से संचालित होता है। हिन्दी लोकगीतों में गंगा और तुलसी के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। शीतला माता चेचक की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती है। यह माना जाता है कि इनका आवाहन करने से चेचक पीड़ित बालक नीरोग हो जाता है। लोककथाओं में व्रत, तीर्थ, पूजा पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। बहुरा, भइया दूज, जीउतिया (जीवित पुत्रिका) आदि व्रत संबंधी कथाओं में धर्म के अनेक गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं।

खासी लोकमानसमें मुर्गे की बलि संबंधी कथा प्रचलित है। मुर्गा ईश्वर तथा मनुष्य के बीच मध्यस्थ का काम करता है। यह माना जाता है कि पाप वृत्ति के कारण मनुष्य ईश्वर के समक्ष जाने में असमर्थ है इसलिए वह मुर्गे की बलि देता है और उसके शरीर के अंगों के माध्यम से वह ईश्वर की इच्छा का पता लगाता है।

भौगोलिक महत्व

लोकसाहित्य में भूगोल संबंधी ज्ञान भी प्राप्त होता है। भोजपुरी लोकगीतों में यमुना, सरयू और सोन आदि नदियों के नाम आते हैं। शहरों में काशी, प्रयाग, अयोध्या, जनकपुर, मिर्जापुर और पटना का नाम मिलता है। ‘आल्हाखण्ड’ में कुछ ऐसे छोटे-छोटे गांवों के भी नाम मिलते हैं जो अब लुप्त हो गये हैं।

खासी लोककथाओं में भी यहां के पर्वतों जैसे शिलांग पर्वत, उ सम्पैर तथा उ कल्लाड पर्वत। नदियों में का औमयाम का औमडौत का औमशित आदि से संबंधित कथाएं प्रचलित हैं।

आर्थिक महत्व

लोकसाहित्य में जनजीवन के आर्थिक पक्ष का वास्तविक चित्रण होता है। भोजपुरी के झूमर के गीतों में सोने की थाली में भोजन परोसने का वर्णन हुआ है। सोने और चांदी की लंबी सूची लोकगीतों में मिलती है। इनके अतिरिक्त लोकगीतों और कथाओं में जो छप्पन भोग, चन्दन का पालना, नौ लखा हार जहां समृद्धि का प्रतीक है वहां 'टूटी मडइया' तथा 'उजड़ल बंगलवा' से देश की निर्धनता का भी पता चलता है।

खासी कथा 'उ क्वाइ-टम्पव' में घर में अन्न का एक दाना न होने पर गरीब मित्र इस बात से दुखी हो जाता है कि वह अपने मित्र का अतिथि सत्कार नहीं कर पाया और इसलिए आत्महत्या कर लेता है। इसके पश्चात गरीब की पत्नी, अमीर मित्र और यहाँ तक कि घर में घुस आया चोर भी हत्यारे के दाग लगने के डर से अपनी जान ले लेता है है। गरीबी के कारण चार लोगों की मृत्यु आर्थिक अभाव का सजीव चित्रण है।

नैतिक महत्व

लोकसाहित्य का नैतिक दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व है। लोकसाहित्य के अध्ययन से ही समाज के नैतिक स्तर का ज्ञान प्राप्त होता है। नारी के आदर्श का जैसा परिचय इस साहित्य में मिलता है वैसा कहीं नहीं मिलेगा। राजपूताने में प्रचलित पदिमनी का जौहर करना तथा कुसुमा देवी का तालाब में डूब मरना अपनी सतीत्व की रक्षा का ज्वलंत उदाहरण है।

खासी लोककथाओं में भी सतीत्व की रक्षा करती नारियों का वर्णन मिलता है। का स्म जितलाग्राई नामक रानी बहुत सुन्दर थी। मैदानी भाग का एक राजा उसके अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर अवाक रह गया। उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर राजा ने उसे जबरन प्राप्त करने की कोशिश की। रानी को यह मंजूर नहीं था। अतः राजा व उसके सैनिकों ने जब उसे जबरदस्ती उठाना चाहा तो रानी ने मदद के लिए ईश्वर को पुकारा। फिर कुछ समय में ही वह आत्मा में परिवर्तित हो गयी और उसका घर पत्थर का बन गया। उसी प्रकार का साया नौडऔम एक गरीब लड़की की कथा है। एक राजकुमार उससे बेहद प्रेम करता था। दोनों में सच्चा प्रेम था। का साया ने सास के द्वारा उ स्म महादैम के हाथों बेची जाने के बाद उससे विनती की, कि वह उसे स्पर्श न करें। उसे अपने प्रेम पर पूर्ण विश्वास था कि वह उसे छुड़ाने अवश्य आयेगा चाहे इसके लिए उसे अपने प्राणों से हाथ ही क्यों न धोना पड़े। राजकुमार भी अपनी प्रिय पत्नी को छुड़ाने के लिए अपनी जान लगाकर महादैम के राजा से युद्ध करता है और मृत्यु को प्राप्त करता है। अपने पति को मृत देखकर का साया ने भी वहीं अपने प्राण त्याग दिये। नैतिक शिक्षा के संदर्भ में देखें तो दोनों भाषाओं में पशु-पक्षी संबंधी कथाओं में नैतिक शिक्षाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

भाषाशास्त्रीय महत्व

भाषाशास्त्र की दृष्टि से लोकसाहित्य का विशेष महत्व है। सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने कहा था- जो लोग लोक साहित्य का संग्रह कर रहे हैं वे भावी भाषाशास्त्रियों के लिए अमूल्य सामग्री उपस्थित कर रहे हैं। लोकगीतों, गाथाओं और कथाओं में व्यवहृत शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषाशास्त्र संबंधी अनेक गुत्थियां सुलझायी जा सकती हैं। इनमें प्रचलित शब्दों द्वारा हिन्दी के अनेक शब्दों की विकास परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वेद में पाये जाते हैं जो संस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी में नहीं हैं परन्तु उनका सामानार्थी शब्द भोजपुरी में उपलब्ध हैं।¹⁰ लोकसाहित्य के अध्ययन से शब्दों की ऐतिहासिक परम्परा को स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। विद्वानों का मानना है कि भिन्न-भिन्न जाति के लोग किसान, लोहार, सुनार, कुम्हार आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार करते हैं। ऐसे बहुत से भाव हैं जिनके अर्थ का द्योतक कोई शब्द हिन्दी में प्राप्त नहीं है परन्तु ब्रज, अवधी या भोजपुरी में ये शब्द उपलब्ध हैं। जैसे 'गर्भ-घातिनी' गाय को 'वेहद' और वाँझ (वन्ध्या) गाय को 'वशा' कहते हैं। भोजपुरी में इनके लिए क्रम से 'लड़ाइल' और 'बहिला' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक 'वशा' शब्द से विकसित हुआ है। हिन्दी में इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है।¹¹ हिन्दी में 'डाहना' शब्द का अर्थ जलाना या दुख देना है परन्तु भोजपुरी में 'डाहना' का भाव इन दोनों शब्दों से कहीं व्यापक और गम्भीर है। जलाने में केवल शुष्कता है परन्तु 'डाहना' शब्द में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहना का भाव भी सम्मिलित है।¹² इन शब्दों के विषय में पूर्ण ज्ञान हमें लोकसाहित्य के अध्ययन से ही होता है। लोकसाहित्य में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। जैसे भोजपुरी में एक लोकोक्ति है- 'अगिया लगाइ छउड़ी वर तर ठाढ़' अर्थात् दो आदमियों में झगड़ा लगाकर स्वयं तटस्थ हो जाना। इसी प्रकार खासी में लोकोक्ति प्रचलित है 'उ कौह स्याड पन्शाड थ्मा' अर्थात् लड़ाई करवाने वाला लोमड़ी। यह लोकोक्ति एक लोककथा पर आधारित है। लोमड़ी बाघ और जंगली सुअर से दोस्ती करना चाहता था। दोनों में से कोई भी उसे भाव नहीं देता था। अपने अपमान का बदला लेने के लिए ही उसने दोनोंको एक दूसरे के प्रति भड़काया। दोनों के बीच में युद्ध हुआ। इससे जंगली सुअर की जीत होती है। लोमड़ी बाघ के मांस का आनन्द उठाता है।

राष्ट्रीय महत्व

आज भारत वर्ष के विभिन्न भाषाओं के लोकसाहित्य का संग्रह-संकलन एवं शोधपरक अध्ययन किया जा चुका है और किया जा रहा है। इन अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि लोकसाहित्य चाहे जिस किसी क्षेत्र या भाषा का हो सभी लोकसाहित्य का मूल स्वर एक ही है। एक ही लोक संस्कृति सभी भाषाओं के लोकसाहित्य में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार लोकसाहित्य भावात्मक एकता के कारण राष्ट्रीय एकता प्रकट करता है। अतः हम कह सकते हैं कि लोकसाहित्य राष्ट्रीय एकता का सन्देश देता है। किसी भी देश के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक विकास, तथा नैतिक और भाषा शास्त्रीय ज्ञान के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन अति महत्वपूर्ण है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी और खासी दोनों भाषाओं के लोक साहित्य का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक, आर्थिक, नैतिक, भाषाशास्त्री तथा राष्ट्रीय महत्व है।

संदर्भ:

1. लोक साहित्य की भूमिका: डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 22
2. वही पृ. 53
- 3.हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य: डॉ. शंकर लाल यादव, पृ. 44
- 4.भोजपुरी लोकगीत भाग 1: डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 51
- 5.की खानाटाड उवा रिम: एच. एलियास, पृ. 5
6. लोकसाहित्य विज्ञान: डॉ सत्येन्द्र, पृ. 500
7. खासी फोक संस एण्ड टेल्लस: डेसमण्ड खारमावफ्लाड, पृ.37
8. वही पृ.43
9. लोकसाहित्य: सिद्धान्त और प्रयोग: डॉ श्रीराम शर्मा, पृ. 224
- 10.लोकसाहित्य की भूमिका : डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 269
- 11.वही
- 12.वही पृ. 270

सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग
सेंट एनथोनीज़ कॉलेज, शिलांग
मेघालय ।

KEYNOTE ADDRESS

~ Prof H.S.Nongbri

Khasi Seminar held on the 24th November 2018 in Babu Mani Singh Gurung Auditorium, on the topic "Im ka ktien Im ka Jaitbynriew".

"As Long As The Language Is Alive, The Society, Community, Race Will Survive"

Honourable Chief Guest Shri D.B. Gurung, Guest of Honour Shri B.B. Chettri, Learned Chairpersons, the Resourceful Resource Persons, distinguished invitees, my fellow teachers, the teachers from other Colleges and especially my dear students. First of all I am indebted to you all for responding to our call to be with us today in this Seminar. I am standing here today on behalf of the college, the Literary Committee of the College and the Khasi Department of the College which has organised this seminar on the above theme as a part of the Silver Jubilee Celebration of the College.

The College came into being on the 23rd August 1993. As far as I can remember in the year 1993, three new colleges came into being, the B.B.S. College, the Greater Mawlai College and the Umshyrpi College. At that time, I was approached by Prof. Rudy Rynjah to help in the Khasi Department of the college but sadly I could not do so due to many engagements. When I retired in the year 2000, I was again requested through Prof. Rudy Rynjah to help in building up the Khasi Department as there was no regular teacher up to that time, so here I am standing now before you as a limb of the College.

Today, is the Red Letter Day for the College especially the Khasi Department as we are going to have a seminar in Khasi. The theme of the seminar is IM KA KTIEN IM KA JAIT BYNRIEW which if put in English, means "As long as the language is alive, the society or community or the race will survive". This seminar is organised with the initiative of the Principal, Shri. Sanjay Rana, with the encouragement of Prof. Dr. Streamlet Dkhar.

Perhaps you are all aware that at present the burning issue for the Khasi Community is to convince the Government of India to recognise the Khasi language as one of the major languages to be enshrined in the 8th schedule of the constitution of India. Different NGOs of the state had organised many meetings, awareness programmes in different areas of Khasi and Jaintia Hills to enlighten and motivate the people to support the movement. The Khasi Authors Society as a literary organisation had taken this issue as a serious responsibility to fulfil the ambition of the people.

Since 1842, Rev. Thomas Jones had introduced the Khasi Alphabets and used the dialect of the people of Sohra region as a spoken and written language of the Khasi people. It has grown up from primary level up to university and PhD levels. It has been accepted and recognised as the official language of the state. It is high time that it should be enshrined in the 8th schedule of the constitution of India.

To lend a helping hand and to support the cause, with the blessings of the college authorities, the department of Khasi with the support of the Literary Committee of the College took the responsibility of organising this one day seminar on the above theme. For the last two or three years back, a news item has appeared in a local newspaper that the Khasi language is dying and going to disappear from the earth. Perhaps it was only the findings of

pessimistic scholars. In such kind of news I am telling you all to turn a deaf ear because you will find that it is not so. As I have pointed earlier, the language is growing day by day from a humble beginning up to the present stature. Let this one day seminar today be a small contribution to the aspiration of the Khasi people. Let it be like a dew drop that sustain the giant sequoia.

Please bear with us, I will also address in Khasi.

Ki lok baroh, ki nonghikai, khamtam ma phi ki samla pule, phi ba long ka jingkyrmen jong ka lawei nga ieng hangne kum u nongkyrshan ia ka jingkwah ka jait bynriew ban pynrung ia ka ktien khasi ha ka khyrnit baphra jong ka Riti Synshar ka ri India. Ban poi sha ka thong ngi la buh ia ka sain pyrkhath, IM KA KTIEN, IM KA JAIT BYNRIEW. Ki Akhia ba ngi la khot kyrpad ban ai jingkreng – jingpynshai halor kiphang bapher bapher ba ki la pynkreh. Khlem da bun nia ne ai daw ei – ei ruh em, ki la pdiang ia ka jingkyrpad jong ngi; kumta khublei shibun ia phi shi khoh dung.

Ha kane ka snem mynta, khamtam ha kine ki khyndiat bnai la don ka jingthrang ha ka jaitbynriew jong ngi ba ka ktien Khasi kan rioh rung noh ha ka khyrnit ba phra jong ka Riti Synshar ka Ri India. La don ka jingiatyrko kaba jur halor kane ka phang bat ka la nang jur, nang rhem katba nang iaid ka por. Kumba ar ne lai snem ba la lah, la don ki jingthoh ba pynmih ha ki kot khubor ba ka ktien Khasi ka la jan duh jan dam na sla pyrthei. To ngin ym pynshah wat tang ka kor kynriang ruh ia ki. To ngin ia dem minot thop ha ka jingialeh ia tur jong ngi ban poi sha ka thong. Ai ba ine I seminar barit jong ngi in long kum I symbol umjer ban kyrshan pynim ia u diengbah – diengsan.

My dear audience, before i conclude my address, I would like to say, a doctor in order to know whether the person is dead or alive, he feels the pulse of the person. I also would like to feel your pulse.

Lok baroh bat ki nongiashim bynta nga kwah ban twad ia ki pulse jong phi kumba leh u doctor ban tip la u briew u dangim ne u la iap. Sngap khyndiat ia kine ki kyntien jong nga.

La ngi shong hangno – hangno,
Ngi sum ktieh, ne shong shuki
La ngi kren kumno – kumno
Lok ngi dei ki khun Khasi
Hoi – kiw, Hoi – kiw, Hoi – kiw

There my dear audience you know the pulse of all of us here today. Kumba ong mano-re-mano “Kata kein lok, la lap ia u ksai ka dieng bathain, ka dieng kan sa pait hi lada phi tangon eh”. Da ki kyntien ki Riewstad nga pynkut noh;

*“Shaphrang ba phi la kiew pyni,
Khein kor ka ktien thylliej, riti”.*

“Sngap ia ka sur ka wah”.

Thank you, Khublei, Dhanebad!

Ka Jingtbit-Kren Kum Ka Atiar Ban Synshar Ia Ka Jingmut Jingpyrkhat Ki Nongsngap

~ Prof. D.R.L.Nonglait

Shuwa ban tai ia ki khuin kiba iadei bad ka jingtbit kren lane rhetoric ha ka English, donkam ban sngewthuh nyngkong eh ia ka jingmut jong ka kyntien *rhetoric*. Ka kyntien *rhetoric* ha ka jingmut tynrai jong ka ka iasnoh bad ka jingkren padiah khlem da don eh ka jingmut bashisha ia kaei kaba u nongkren u kren (*empty flowery talk*). U Plato u ong, “*Rhetoric is the art of ruling the minds of men*”.¹ Ka dei ka buit ban bat lane synshar ia ka jingmut jingpyrkhat ki nongsngap. Ha ki juk barim, la ñiew ia ka rhetoric tang kum ka jingkren pnah ka bym da don eh ia ka jingsngew khia ia kaei ba u nongkren u kren, hynrei naduh ka por jong u Aristotle, la ñiew ia ka rhetoric kum kawei na ki tnat pule ba donkam katta katta. Ki riewstad ha ki por ba hadien kim lah ban kdat ia ka jingmut ba u Plato u batai. Ha ka *The Encyclopaedia of Language and Linguistics*, la batai, “*Rhetoric refers to the art of effective argumentation with the view of influence opinion*”.² Shuh shuh, “*Rhetoric implies the use or manipulation of words. And indeed a look at the etymology of the word ‘rhetoric’ shows that the term is solidly rooted in the motion of words or speech*”.³

Ha ki spah snem kiba khyndai, la ñiew ba ka *rhetoric* ka iadei beit tang bad ka buit kren pnah, hynrei ha ki spah snem ba hadien, la pyndonkam bha ia ka ha kaba thoh shithi bad ruh ha ka jingiakren ki tyngshop ki puron ha ki tnat litereshor bapher bapher. U Prof. Kalyanath Dutta u thoh, “*Rhetoric is an art intended for swaying the feeling or emotions of a hearer or a reader. It is the whole art of elegant and effective composition whether spoken or written*”.⁴ Hadien ka jingbatai lyngkot ia ka jingmut jong ka kyntien *rhetoric*, ha kane ka jingkren, yn ia phai sha ki san tylli ki khuiñ kiba u nongkren uba tbit u hap ban leh bha:

- I. **INVENTION:** Ka kyntien *invention* hangne ka thew ia ki jingpynshisha (proofs) kiba dei ban pynshong nia nyngkongeh. U nongthoh, u nonghikai ne u nongkren u hap ban wad nyngkong eh ia ki nongrim bashing nia ban pynkhlain ia ka jingbatai jong u halor ka phang ba dei ban kren, khnang ban pyngeit ia ki nongpule ne ki nongsngap. Kham bunsien, ki don arjait ki buit ba la ju pyndonkam ban pynkhlain ia ka jingiatatai nia, ia kiba la khot – (1) *Non-artistic ne non-technical* bad (2) *Artistic*.

Ki jingpynshisha ba la khot *non-artistic* kim da dei eh kiba u nongthoh ne u nongkren u pyndonkam ia ka jingpnah jong u, hynrei ki long ka sakhi da kiba u lah ban pynshong nongrim. Kine ki long-(1) Ki ain ki kanun (2) Ki sakhi satar (3) Ki jingiateh soskular (4) Ki jingshah pynshitom ne shah shoh shah kren beiñ bad (5) Ki jingsmai. U nongthoh ne nongkren u dei ban tip bha, hangno u lah ban ioh ia kine ki jingpynshisha. Um lah ban pyntam ne pynduna ia ki, hynrei u lah da kine ban pynkhlain ia ka jingiasaid nia jong u.

Ki jingpynshisha ba la khot *artistic* pat ki thew ia ki jingkyrpad ne jingkyntu (appeal) kiba mih hi na u nongkren ne nongthoh, da kiba u lah ban shon jur ha ka jingmut ki nongsngap bad ki nongpule, ha kata ka rukom kaba lah ban ktah ia ka jingsngew bad ka jingpyrkhat jong ki. Hangne te u nongkren u hap ban pyndonkam shisha ia ka jingtbit jong u. Ki don lai jait ki buit pynshisha kiba ju pyndonkam da ki nongkren bad ki nongthoh kiba tbit, ia kiba la khot- (1) *Rational* (2) *Emotional* bad (3) *Ethical*.

Rational Appeal- U briew hi u dei u jingthaw uba don ia ka bor pynshong nia . U lah ban sngewthuh, ban pyrkhath bad ban rai. Hangne u nongkren u ktik ia ka bor jingpyrkhat ki nongsngap. Haba u leh kumta u pyndonkam ia ar tylli ki buit, ba la khot *deductive* bad *inductive* ban pynlong ia ki nongsngap ban pdiang ia ka jingkren ne ka jingiasaid jong u.

Deductive ka mut ba u nongkren u shim nuksa na ka jinglong ba salonsar sha kawei kaei kaei kaba kyrpang; katba *inductive* pat ka mut ba u nongkren u shim nuksa na kawei ka nuksa bad u pynkut nia ia ka jinglong ba salonsar. Ka jingpyndonkam ia ki nuksa ka don ka bor bad ka dor ban pynngeit ia ki nongsngap bad ki nongpule.

Emotional Appeal- U Blei u la ai ha u briew ia ka mon ba laitluid. Ia kane ka mon u briew u lah ban pynkhih shane bad shawei da kaba ktik ia ka jingsngew ne jingsngew mynsiem balung jong u. Don ki briew kiba pdiang bad rai ia kiei kiei tang na ka jingpynsngew, kim da donkam eh ban ioh ia ki sabut kiba shai. Kumta u nongthoh u dei ban nang ban ktik ia ka jingsngew ki nongpule halor ka phang ba u thoh ne u kren: u dei ruh ban sngewthuh ia ka jinglong jong ki bad kumno lah ban ktah ia ka jingsngew jong ki.

Ethical Appeal- Ka *Ethical appeal* ka mih na ka jinglong jingim jong u nongkren ne u nongthoh hi. Ha ka jingkren, u nongkren u pyni ia ka jinglong jong u, ia ka jingsngew jong u halor ka phang ba u kren, u pyni ruh ia ka jingleh jong u. Kane ka pynioh ia ka jingshaniah jong ki nongsngap lada ki iohi ba kaba u nongkren u pynpaw ka long kaba shisha. **Ka jingpynshisha ia ka jingkren da ka jinglong jingim bad ki kam ka long ka bor pynngeit bakhlain tam.**

II. **DISPOSITION:** Ka kyntien *disposition* hangne ka mut ia ka “jingbuh ryntih” ne “jingpynbeit ryntih” ia ki bynta jong ka jingthoh ne jingkren. Shisien ba la ioh ia ki mat jong ka phang ba la jied ban kren, u nongkren u dei ban buh ryntih ia ki ha kata ka rukom ba ka jingkren baroh kawei ka lah ban bat bad ban ktah ia ki nongsngap. Na ka bynta ki jingthoh bapher bapher, u Aristotle u kdew bha ia ka jingdon jong kaba sdang, ka pdeng bad kaba kut: hynrei na ka bynta ka jingkren paidbah, kaba donkam eh ka long-(1) Ka jingbatai ne jingiathuh ia ka kam ne ka phang bad (2) Ka jingpynshisha ia kata ka phang ba la batai. Nalor kine ar, lah ban wanrah ia ka maitphang bad ka jingpynkut nia. Hateng hateng, donkam ruh ban don ka jingpyniap nia (refutation) ia ki jingbatai ba lamler bad bym don nongrim.

III. **ELOCUTION:** Ha ka jylli jong ka *rhetoric*, ka jingmut jong ka kyntien *elocution* ka iaryngkat bad ka jingmut jong ka kyntien *style*. Teng teng ngi pyrkhath ba ngi sngewthuh kaei ka *style*; hynrei kam dei kaba suk ban batai ia ka jingmut jong kane ka kyntien. Ki don ki jingong, kum, “*style is the man*” (Buffon); Nangta, “*Style is proper words in proper places*” (Jonathan Swift); “*Style is a thinking out into language*” (Cardinal Newman); “*Style is the peculiar manner in which a man expresses his conceptions*” (Blair). Hynrei ka jingbatai jong u E.J.P. Corbett, nga shem ba ka ai ia ka jingmut kaba kham shai, haba u ong:

*Style does provide a vehicle for thought, and style can be ornamental; but style is something more than that. It is another of the available means of persuasion, another of the means arousing the appropriate emotional response in the audience and another of the means of establishing the proper ethical image.*⁵

Hangne, lah ban iöhi ba u Corbett u don ia ka thong ban pyniasnoh lang mlon ha ka *style* ia ka mut ka pyrkhath (thought) bad ka jinghren (speech), kine ar kim dei ban iaid la la ka jong. Nangta ha ka jingpynkhreh ia ka jinghren, u nonghren ne u nongthoh u dei ban puson jylliew ia ka phang, ia ka jait jingialang, ia ka jingthmu jong kata ka jingialang, ia ka kyrdan bad ka jinglong jong u hi bad jong ki nongsngap. Ka style ka mut ruh ia ka jingpynwandur ba sani ia ki kyntien kiba shai kiba don ia ka nongrim bad ka thong kaba bha. Haba la pynshong nia bha ia kine baroh, u nonghren ne u nongthoh u sa rai ban jied da kano ka *style*.

Ki riewstad halor kane ka phang (*rhetoricians*) ki ia mynjur ba don lai tylli ki jingthew ia ka style-(1) *the plain style* (2) *the middle style* bad (3) *the high style*. Ka *plain style* ka iadei eh na ka bynta ka jinghikai; ka *middle style* na ka bynta ban ktik jingmut (moving); bad ka high style na ka bynta ka jingpyniapbieit (charming).

Ia ka style ym lah ban shu hikai kumba hikai ia ka grammar, hynrei lah ban ioh da kaba pule minot ia ki jingthoh bad da kaba sngap bha ia ka jinghren jong ki nongthoh bad ki nonghren kiba tbit. Da kaba pynmlen bad da kaba bud nuksa na ki nongthoh bad ki nonghren kiba tbit.

IV. MEMORIZING: Ka jingpyrshang ban kynmaw ka dei sa kawei pat na ki khuiñ ba donkam ban long u nonghren uba tbit. Na ka bynta ka jingthoh ne jingpule, ka jingkynmaw kam da long kaba donkam eh. U nonghren um dei ban shim sting ia ka bynta jong ka bor kynmaw, namar ka jingkynmaw ia ki mat bad ki pung jong ka phang ba dei ban kren, ka wanrah ia ka jingsngew skhem ban kren khlem da pynbunkam ia lade ban peit na ka jingthoh. Ka jingthoh bunsien ka pyniakhlad noh ia u nonghren na ki nongsngap. Lada ka long kumta, ka jingthoh ka lah ban khate noh ia ka jingtbit u nonghren. Ia ka jingkynmaw, ym lah ban hikai, hynrei tang da ka jingpyrshang bad ka jingpynmlen.

V. DELIVERY: Ka *delivery* ka thew ia ka jinglah ban kren shai ia ki mat kiba dei ban kren. Naduh hyndai hi ki riewstad halor kane ka phang ki shim khia bha ia kane ka bynta. Ki iöhi ba ka jinglah ban kren shai shait ia ki mat kiba iadei ka lah ban ioh ia ka jingshah shkor bha ia ki nongsngap bad ba pynlong ia ki ban pdiang ia ka jinghren. Shisien haba la kylli ia u Demosthenes, ia uba la ju khot “*The golden mouth of Greece*” - “Kaei ka bynta ba donkam eh ia ka *rhetoric*, u la jubab, “*Delivery, delivery, delivery*”.⁶

Kawei pat ka bynta kaba iasnoh bad ka *delivery* bad kaba u nonghren um dei ban klet ka long ia ka rukom khih met khih phad. U dei ban kynmaw ba ka rukom khih met khih phad kan iahap bad ka jinghren. Ka jingpynstet ne jingpynsuki ne jingsangeh ha ka jinghren ka dei ban biang katkum ki khep ba donkam ban leh kumta. U Llyod George u thoh,” *A gesture should come before the point it is emphasizing; in this way it stimulates the attention of the audience*”.⁷ Haba leh kumta, ki nongsngap kin phai beit sha u nonghren. Ngan pynkut noh ia kane ka jingbatai jong nga da ki nia u Corbett, haba u thoh:

Many speeches and sermons, however well prepared and elegantly written have fallen on deaf ears because of inept delivery. The writer lacks the advantage the speaker enjoys because of his face to face contact with an audience and because of his vocal delivery: the only way in which the writer can make up for his advantage is by the brilliance of his style”.⁸

References:

- 1 Kahn, J.E., & Kerr-Jarrett, A. (ed) (1991), How to write and speak better, Reader Digest Association Ltd., London, P.495
- 2 Asher, R.E., & Simpson, J.M.Y. (1994) The Encyclopaedia of Language and Linguistics. Volume-7 P. 35-68
- 3 Corbett, E.J.P. (1971), Classical Rhetoric for Modern Student, Oxford University, New York, P.31
- 4 Dutta, K. (1988), Rhetoric and Prosody, Calcutta, P.3
- 5 Op.cit., Corbett (1971), P.415.
- 6 Ibid., Corbett (1971), P.38-39.
- 7 Op.cit., Kahn, J.E., & Kerr-Jarrett, A. (ed) (1991) P. 503.
- 8 Op.cit., Corbett (1971), P.39.

KI KTIEN TNAT HA KA THOH KA TAR (ABSTRACT)

~ *Mrs. I.M. Nongbet*

HOD Khasi Department

St. Mary's College

Ka Jaitbynriew u Hynñiew Trep Hynñiew Skum ka kdup ha ka shibun byllaiki ktien tnat. Ha kylleng ki raid bad ki shnong,ki don la ka ktien ba ki kren bad kaba ki ia sngewthuh lang. I Kong Badaplin War I thoh "...ka don ka jingiasngewthuh, markylliang (mutual intelligibility) hapdeng ki nongkren jong ki ktien tnat kiba pher. Kane ka jingiasngewthuh markylliang ka kham trei kam bha hapdeng ki ktien ba marjan bad katba nang kham pajih, ka jingsngewthuh markylliang ka lah ban kham shitom."{"Ka jingiaid lynti ka Ktien Pdeng jong ka ktien (Standard Khasi)"} (20)

Hynrei haba phai sawdong ki jaka khamtam ki khap Sor yn shem ba bun ki ktien tnat ki la ia khleh lang bad ka ktien pdeng.Kane ka jingiapher ka lah ban long na ka jingleit poi ki nongshong shnong na ki thain Sor ne na ka jingpule ha ki skul, ne na ki paralok ba ki ia kynduh bad kumta ter ter.

Napdeng ki ktien tnat jong ka ktien Khasi (Hynñiew Trep Hynñiew Skum) dei ka ktien Sohra kaba la ioh ia ka jaka kum ka ktien Pdeng kata ka ktien kaba pyndonkam ha ka thoh ka pule, ha ki jaka trei bad kumta ter ter. Ha kaba ia dei bad ka jingrung jong ka ktien Sohra kum ka ktien Pdeng I Kong Badaplin War ha katei kajah ka kot I thoh:

“ Haba phai sha ka ktien Khasi, ngi shem ba ka daw ba u Thomas Jones u la shim ia ka ktien Sohra kum ka ktien pule, kumta ka jingied ka long kaba shu jia long hi kumto (natural process of selection)” (22)

Haba phai sha ki ktien tnat bad ka thoh ka tar Khasi la shem ba ki don ki ktien tnat jong ki thain bapher ka Ri u Hynñiew Trep u Hynñiew Skum la ka long na ki thain Sepngi, Mihngi,Bhoi,War ne Jaintia ba ki la rung ha ka thoh ka pule. Don na ki kiba la rung ha ki nobel, ki sawangka, ki poim, ki prose, ki ktien kynnoh bad ha ki jaka jong ki kyntien kiba shu shim kylliang na kiwei pat ki ktien (external borrowing). Kane ka la nang pynriewspah bad pyniphuh iphieng ia ka ktien Khasi hi baroh kawei.

Ha kane ka kynti ngin ia peit tiak tang ia kine harum, namar ban kren bniah ia kane ka dawa ia ka por kaba jlan bha. Te tang tiak tang kum ban ktik jingmut halor kane ka phang.

U W.Tiewsoh u dei uwei na ki nongthoh Khasi uba la pynrung ia ka ktien tnat ha ka nobel jong u bad kata ka ktien ka dei ka ktien Shella. Ia kane u la pynrung ha ka kot Kam Kalbut. Kine harum ki dei ki ktien tnat kiba u la pynrung ha kane ka kot. U nongthoh u da ai ruh bad ki jingbatai ia kine ki kyntien. Katto katne na kita ki kyntien ki long:

Pyrdit-ka sharak rit, ‘er mawlakhiat- u kyllang ne ka ‘eriong, dang ti –shwa ia ka por ne ka samoi, ban rom- trei lang 2,3 ngut ne kham bun briew da kaba kylliang sngi ne bainong, khwui- ka jingkyntaw ki kynthei, shrat bad shrei – ot pynryntih ia kit duh, shonglai-sakma bad bym tista, khiar-peit husiar bha, jota-u niuhtrong, koni- puriskam khanatang, Japri-ka jaka kaba jakhlia ha kaba ki ba

duk ki shong khapngiah ha ki sem, kato- kad lieng, dushon- ka iing ki kruin, kuro- ki briew ne ki kur ki briew kiba ia hap jingmut lang ia kajuh ka kam ne kiba don kajuh ka jingthmu ne ki para ba ia ieit iathoin ne para ryta, kalbut- u ne ka briew ba duna buit, theia- buaid bad ym neh shuh ban iengbeit, bsin- u siej wah jain, biet- dang shu lah jia shen bad dang sngewbieit ban leh eiei, disher- ki siej kiba pynieng ha lyniar ha kiba ki pynskhem ia ka jingker ka lyniar. Ki ju sop da uwei pat u siej ia ki tduh kiba halor bad ki thad jain hangta, lyniar- ka rynsan kaba hakmat eh jong ka iing ha kaba ki kiew nyngkong ha lyniar sa ha baranda hadien nangta ha rynsan bad hapoh iing, khohlad- ka jaka ba la seng ban pynkhuid bha ha bri ha kaba ki buh ia ki tiar, ki jain ki nep, ki bam ki dih bad ki shet ki tiev, khroin- ka jingpynnoh ba hakmat eh jong ka boh khaila, u biria- u nongpynrkhie briew ha ka jingialeh kai, khlun- kren ne iathuh khana ia kajuh shi kajuh, khurab- ki briew kiba sniew.

U D.T.Laloo ruh u la pynrung ia ki ktien tnat ha ki babun ki jingthoh jong u. Ha ka sawangka “Ka Jingstad u Basan Nongkseh” u la pynrung ia ka ktien Nongkseh. Katba ha ki lynnong jong ka kot Ka Ksaw Ka Kpong U Hynniew Trep ka “Ka Tynrai ka Ksaw ka Kpong”, “Ka rukom pynieng ia ki Khad-ar bor” bad “Ka pynieng beh mrad” u la pynrung ia ki ktien tnat Raliang, Shiliang um (Krang, Diengiei, Mawlaingut) thain Bhoi. Kine harum ki dei katto katne ki ktien tnat bad ki jingbatai ba la ai da u nongthoh ha kane ka kot:

Am-um, khon-khun i- ngi, lang byrniuh lang byrwai- u phlang u kynbat ba long jain long nep ia ki 30 mrad, Langniuh langbyrwai- u phlang u kynbat ba long jain ia ki mrad, sinei sinah- ka bih, kam bhah- dawa la ka bynta, rynku- u ryngkew u lyndoh, tharew- tor, u kynding u khyrwait- u kyndang u khyrwait, trai kani trai ka thima- ksew beh longbru-longbriew, ku-kiew, khon ka skiah- u syiar- u rang yiar- khad, kyrkaw patar- ka kyrkaw beh mrad, kari- lyngkut-sier, ka mali ka shyndar- ka rukom khot ia kaba poh- ka ksew, Langhei- ka rukom phawar haba ioh mrad heh, Ynniaw wa heh- ki hynniew ngut ki longsan mansan jong ka raid Raliang.

U D.T.Laloo u la pynrung ruh ia ki ktien tnat jong ka Raid Nonglyngdoh ri Bhoi ha ka kot Ka Sajer. U Hollando Lyngdoh ha ka jingthoh jong u “Ka Sajer (Raid Nonglyngdoh)” ha ka kot Ka Sajer u thoh kumne:

“Kawei pat kaba siat ia ka jingmut ka long ka jingpynriewspah ia ka ktien Khasi da kaba wanrah hangne hangtai ia ka rukom kren ki briew ha kito ki thain. ” Kumba u la leh ha Ka Ksaw Ka Kpong hangne ruh u la leh kumjuh ha kaba u la wanrah ruh ia ka jingbatai ia ki kyntien ba u thoh haba kut ka kot. U D.D.Lapang u thoh kumne:

U Bah Donbok u la leh ka kam kaba khraw da kaba u la ai ia ka jingbatai ktien (Glossary) ia ki kyntien kiba u Lyngdoh Sla bad u Lyngdoh Sad bad kiwei kiwei ki nongleh niam bapher bapher jong ki (Ka Jinglamphrang).

Katto katne kita ki kyntien ryngkat bad ki jingbatai kiba don ha kane ka kot ki dei:

Ad- ka pang ka niun,arodo- ba la aiti lut ia ka ban sa wan ne kaba dang sahdien, Arphalak- arliang wak, bakai- ba iaid, ba rkai- ba leit ba wan, kap- iaid lyngba na shiliang sha shiliang, klan, khawthar- u khaw dung shira, khomlong- ka jainispong, kynram- ka baranda, kyrbong kyrbai- u dkhot u dkhai, kyrdem u kyrsah- ka dak ha ka knia ka khriam kaba la pynbiang da u blang, jha u arja- u Kni rangbah ne u ba shim ia ka bynta u Lyngdoh Sad ki khot u arja. Ha ka dustur niam ka raid Nonglyngdoh dei ban don barabor arngut ki Nongknia, kata u jha bad u arja ne u Lyngdoh Sad bad u Lyngdoh Sla, langkoh langkar- u blang uba dei ban knia. U langknia, longdoh kut- ka kut u Blei.

Ka jaka kaba kyntang tam kaba ki ju pynlong jingknia, kane ka don ha Nongbah. Kine ki long tang ki katto katne na kita ki ktien tnat.

U I.M Simon ha “U synniang ki tien tnat sha ka ktien bad ka thoh ka tar khasi” ha ka kot Ka Thiar ki Nongthoh Thup-8, u thoh ba “Ki kot I bah D.T.Laloo ngi shem shibun ki kyntien na Ri Bhoi kum na Raid Thaiang”.

U I.M.Simon u dei sa uwei na ki nongthoh uba la pynrung ka ktien Langrin ha ka khana “U Hati Suitan” (Shikti Na Thwei Mutdur).kata iawbaw-ha ka jaka hati.

Haba phai pat sha ki kyntien kynnoh,yn shem ba don katto katne ki ktien tnat kiba la rung ha ki kyntien kynnoh kum

Ka shnong ka thaw

Ieit thoiñ

Badon ba em

Ktah shei

Bha miat

Bam sa

Bsien u mait

Knieh knan

Da ka jingpynrung ia kine ki ktien tnat ka pyniar shuh shuh ia ka ktien Pdeng hynrei ha kajuha ka por ka don pat la ki jingeh. U W.R.Laitflang u thoh ha ka “SHI-KYNTIEN AR-KYNTIEN” jong ka Ksaw Ka Kpong U Hynniew-Trep u thoh kumne:

“...Bunsien eh ha ka Ri Khad-ar-daloi bad Laiphew-syiem jong ngi,ki jingmut jong kiba bun kiei kiei khamtam ha ka liang ka ktien,ka iapher na kawei ka ilaka bad kawei pat,teng-teng wat na shiliang-lum ha shiliang lum ne na shiliang-wah ha shiliang-wah,...bad nalar nangta ki don pat ruh ki ktien kiba ka jingmut jong ki,ka kylla na ka por sha ka por.”(xiv)

Wat la ki don kitei ki jngeh ,kawei ka jingshisha ka paw shai kdar bad ka kah dum ia kitei ki jingeh baroh. Kata ka long ba ka jngpynrung ia ki kyntien tnat ha ka thoh ka tar ka nang pynriew spah shuh shuh ia ka ktien . U.I.Simon u thoh kumne:

“Ka jingpyrkhat ban nang pynrung shuh shuh ia ki kyntien na ki “Tien-tnat, ban pynriewspah ia ka ktien Khasi ka long kaba don jingmut shibun, namar haba don ia ki kyntien kiba ia mut kumjuh bad ki ktien nongwei, kan kham bha lada ki nongthoh kin ia pyndonkam da kine ha ka jaka ki ktien nongwei”.(24)

Ki Par Jingtip:

Kharkongor, Rev.D.R.Larinton: U Khasi bad ka Mariang (Part II).Lem bad ki Kyntien kynnoh,Shillong :Darkos Nongkhlaw, 2008.

Laloo, D.T:Ka Ksaw Ka Kpong U Hynniew –Trep,Shillong: S.S. Kharsamai,1984, Print

-----*Shihar ki Drama*, Shillong :S.S.Kharsamai,1985, Print .

-----*Ka Sajer* (Raid Nonglyngdoh), Shillong :S.S.Kharsamai,1982, Print.

Simon,I.M.: “U Synñiang ki ktien tnat sha ka ktien bad ka thoh ka tar khasi ,”Ka Thiar ki Nongthoh Thup-8, Khasi authors Khasi Society, 2011.

Tiewsoh, W.Kam Kalbut. Shillong : Ri Khasi Book Agency , 2009 Print.

War,Badaplin:Ki Sawa Bad Ki Dur Ki Kyntien Jong Ka Ktien Khasi, Shillong: Ri- ïa- dor, 2017, Print

----- “Ka jingiaid lynti ka ktien Pdeng jong ka ktien (Standard Khasi)”,People’s Linguistic Survey of India, Meghalaya, Volume Nineteen ,Part I, Chief Ed Devy G.N., Ri Khasi Book Agency Bhasha Reasearch And Publication Center , 2014. Print

Ka Ktien Khasi Ka Bor Batehsong Ìa Ka Jaitbynriew U Hynñiew Trep

- Dr. Sukjai Swer

KAEI KA KTIEN BAD KA THYMMEI JONG KA ?

“Nyngkong eh, to ngin khyllie shuwa tang tiak shaphang ka ktien bad ka thymmei jong ka. Ka ktien ka mut ka ktien ba pyndonkam ha ka kren ka khana hapdeng kano kano ka jaitbynriew ban ìa sngewthuh ìa ki jingmut jingpyrkhat. Ka ktien kren kam kynthup ìa ki jingsawa ne sur ba mih kum ka jingjyrhoh, jingsaham thait, jingsaham thiah, siaw samla, syngkhor, sohkdiah, synriah, ne kino kino ki jingpynkhih kti pynkhih kjat, ne khapbrip khmat, ne kino kino ki dak ne jingaidak. Ìa ka jingbatai ba paka shaphang ka ktien la ai da kine ki riewstadktien, B.Bloch & G.L.Trager, kumne:

“A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operates”. Ka ktien kren, namarkata, ka long ka nongrim jong ka ktien thoh.

“Ka long kaba shitom ban tip thikna ìa ka thymmei jong ka ktien. Ki riewstad ki la pyni la ki nia ki nia. Ki Hebrew ki ngeit ba ka ktien ka dei ka jingai bastad jong U Blei, bad kumta ruh la ngeit da ki nong China, Egypt, India bad kiwei kiwei ki jaitbynriew. Lah ban kynthoh lyngkot ba ka ktien ka long ka atiar bakongsan tam kaba tehsong ìa kano kano ka jaitbynriew. Dei lyngba ka ktien ba ngi lah ban tip; shemphang bad peiphang ìa ka history bad culture jong ka jaitbynriew, ìa ka pyrkhat pyrdaiñ jong ka ha ka niam ka rukom, ne ki riti ki dustur, ne ha ka imlang ka sahlang, bad kumta ter-ter. Ka Ktien hi ka long kum u shabi uba plie war ìa ka khyrdop longbriew manbriew jong kano kano ka jaitbynriew. Ngì ki Khasi ruh ngi ngeit ba ka ktien ka dei ka jingai bakordor na U Trai Nongbuh Nongthaw.

“I Prof. R.S.Lyngdoh i ong kumne: *“Naduh ba dang kynthong ka pyrthei bad ba dang kyndeng ka bneng, kata naduh ki sngi barim jong u Hynñiew Trep Hynñiew Skum, u khun Khasi Khara u la don la ka jong ka ktien. Ka jaitbynriew Khasi ka ngeit ba dei U Blei Trai Kynrad Uba la pynkhamti ìa kane ka jait ktien bakyrpang ha ki khun ki Hynñiew Trep. Dei na kata ka daw ba u khun Khasi u ngeit ba ka ktien kaba u la ìoh nongkynti, kam dei tang na ka bynta ban padiah u thylliej, hynrei ka dei ka jaid ktien kaba don ka bor ba maian. Sngap kumno ki tymmen ki ong: **“Wat kren pathar ìa la ka ktien – wat padiah jyndeì than ìa la u thylliej. Ka ktien Khasi ka dei ka ktien don hukum don kular, ka ktien shong sbai bad ka ktien shong-blei.”** Dei na kata ka daw ba u khun Khasi u ong ba ka ktien ka dei ka Jubanlak”*

Ka jingëid ìa la ka ri ka sdang na ka jingëid ìa la ka ktien bad dei kane ka jingïohi ba i Parad Soso Tham i la sneng ìa ngi ban: *“Ëit ìa la ka Ktien bad la ka Ri.”* bad ba u Sohblei Rev.Fr.H.Elias, SDB, u iai pynkynmaw ia ngi ba: *“Ka Ktien ka tei ia ka jaitbynriew bad ka jaitbynriew kaba pule kan ym iap!”*

KAEI KA KTIEN KHASI ?

“Ka ktien Khasi ka mut hangne ïa ka ktien kmie ne ktien Sohra, wat la shisha ngi don bun tylli ki jait tnat ktien Khasi (dialects) ha ki thaiñ bapher bapher jong ka ri Khasi-Jaiñtia. Ka ktien Sohra ka kylla long ka **ktien kmie** ne **ktien pdeng** jong ka ri na ki katto katne ki daw. Haba ki sahep mishoneri ki la wan poi sha kine ki lum bajyrngam jong ngi ha ki snem 1830, ki la seng ïa ka headquarter jong ki ha Sohra namar ka Sohra, ha kita ki por, ka la long lypa ka jaka khaiï pateng kaba thnem. Hangne ki sahep ki la lap ïa ka par bariewspah jong ka ktein Sohra bad ki shem ba ka long ka ktien kaba kham suk ban kren bad sngewthuh, bad ba ha ka don ka jingshngiam bad jingthiang kiba pynbang bad pynshoh jingmut ha ka kren ka khana. Kumta, ki la pyndonkam da ka ktien Sohra ban prat lynti ïa ki jingtrei jong ki lyngba ka thoh ka pule, hynrei ki jingpyrshang jong ki, ki la pulom naba ki pyndonkam da ki dak Bengali.

“Dei ka jingwanpoi u sahep Thomas Jones ha Sohra, ha ka 22 tarik u Jylliew jong ka snem 1841, ba ka la sdang ki jingkylla ha ka jingsaiñ dur thymmai ïa ka thoh ka tar Khasi. Tang ha ki khyndiat bnai, une u sahep u la lah ban sngewthuh bad nang ban kren Khasi, ryngkat bad ki jingïarap jong u Duwan Rai, u Jungkha bad u Laithat. Ki ong ba ki Khasi ki da lyngngoh hi ngaiñ ïa ka jingsngewthuh bad jingkem kloï u sahep Thomas Jones ïa ka ktien Khasi, uba lah, tang ha ki khyndiat bnai, ban kren Khasi la kum u nong Sohra hi keiñ! Nalor ba u long u briew uba proh jabieng, une u sahep u long ruh u briew uba don ka mynsiem shakri, uba sbun, u bym tyngkai la bor met bor jabieng na ka bynta ki para-briew. Da ka jingieid dik-dik ïa ka ri Khasi bad ïa ki briew jong ka, u Thomas Jones u la trei shitom tynggeh ban saiñ dur ïa ka thoh ka tar Khasi da ki dak Roman, kiba ki Khasi ki suk shibun ban sngewthuh, bad kaba la long ka nongrim jong ka thoh ka tar Khasi haduh mynta mynne.

“Ki stad wad jingtip ki ïathuh ba ka ktien Khasi ka long kawei na ki jait tnat ktien Mon Khmer bad ka long tang ma ka kaba dang don ba kren bad pyndonkam ha ri India...”

KUMNO KA KTIEN KHASI KA LONG KA BOR KABA TEHSONG ïA KA JAITBYNRIEW U HYNÑIEW TREP ?

1. Nyngkong to ngin ia shim shuwa ha ka liang ka **pule puthi**: Lada ngi peit ia ki kyrdan pule naduh ki primary level haduh ki high school, college bad university level, ia ka subject Khasi la hikai da ka ktien Khasi ne ka ktien kmie, ia kaba nga la batai ha shuwa. Baroh shi ri Khasi-Jaiñtia ngi san bad kiew irat haduh u pud ba la lah mynta ban thoh da ka ktien Khasi wat ha ki thesis Ph.D ruh, bad ba ka Sorkar Jylla ruh ka la ithuh ia ka ktien Khasi kum ka Associate Official Language jong ka Jylla. Kine ki dei kiwei na ki jyrmi kiba tehsong ia ka jaitbynriew, bad baroh ka long namar ba la pdiang naduh ki por jong ka jingwan ki sahep mishoneri ha ki snem 1830, ba ka ktien kmie ne ktien Sohra ka long ka ktien pdeng jong ka jaitbynriew jong ngi, kaba la saiñdur ia ka jingiatylli bad jinglong-tehsong jong ngi kawei. Ka jingtuid ki paidbah na sawdong kylleng ka ri Khasi-Jaiñtia

ryngkat bad ki ksing ki dhah bad ka phawar ka risa, sha ka rally ba la pynlong da ka Khasi Authors' Society ha ka 22 tarik u Nailur, 2018, ha madan Malki, ban dawa ia ka jingpynrung ia ka ktien Khasi ha ka Kyrnit kaba Phra jong ka Riti Synshar ka Ri India, ka long ka sakhi kaba im bad paw tyngkrein ba **ka ktien ka dei shisha ka atiar kaba tehsong bad pyniatylli ia ka jaitbynriew**. Kane ka la long ka Sngi Dak Saw kaba sah jingkynmaw junom ha ka history jong ka jaitbynriew jong ngi

2. Nangta, to ngin ia shim sa ha ka liang ka **jingngeit bad jinglehniam**: Ngim lah ban len ba ka ktien Khasi ne ktien kmie ka long ruh ka atiar kaba tehsong shisha ia ka jaitbynriew Hynniew Trep jong ngi, la ka long ha ka jingngeit ia ka niam tynrai ne ha ka jingngeit ia ka niam Khristan. Ha ki jinglehniam lehrukom kiba kynthup ha salonsar ka ri jong ngi, la ju pyndep ha ka ktien Khasi. Ha ki iingmane Khristan, ka Bible, ki jingrwai bad ki jingialap baroh ki long ha ka ktien Khasi. Kumta ruh, ka long ha ki jinglehniam jong ka niam tynrai, namar ka ktien Khasi ne ktien kmie ka long ka ktien kaba lah ban iasngewthuh lang da baroh shityllup ka ri Khasi-Jaintia, bad kane ka tehsong shisha ia ka jaitbynriew jong ngi. Mutdur ma phi, aiu kan jia lada ia kita ki jinglehniam lehrukom la pyndep ha kano kano ka jait tnat ktien Khasi, kum ha ka ktien Bhoi, ktien Lyngngam, ktien Pnar, ktien Maram bad kumta ter-ter...kiba bun kiba lang kim nym sngewthuh bad peiphang eiei.
3. Ha ka **Shongkha Shongman**: Kumjuh ruh ka long ha ki kam kiba iadei bad ka shongkha shongman. Lada jia ba ki ar liang samla kiba iaieid iathoin, ki wan na ki thain ba iapher bak-ly-bak ha ka ktien ka thylliej jong ka ri Khasi-Jaintia, kan wanrah shibun ki jingthut bad jingdkoh ha ki kam kiba iadei bad ka jingkyntiew kurim ia ki, ne ka tip kur tip kha, lada ym don ka ktien pdeng kaba ki lah ban iasngewthuh lang. Kumta, ka ktien Khasi ka pyniasnoh lang bad astor pynskhem ha kum kine ki khap, namar ka dei ka ktien kaba ngi iasngewthuh lang.
4. Ha ka **Kharii ka Pateng**: Ha ka kharii ka pateng ruh donkam ban don ka ktien pdeng. Ka lewduh ka long ka iew kaba heh duh ha ri Khasi-Jaintia, bad ha kane ka iew, ki nongkharii bad ki nongrep na kylleng sawdong ka ri Khasi-Jaintia ki wan ban die, ban thied, ia ki mar ki mata. Kumta hangne ruh, donkam ka ktien Khasi pdeng kaba baroh ki lah ban iasngewthuh bad peiphang, khnang ba ka kharii ka pateng kan iaied jlih bad ryntih, khlem kino kino ki jingbym-iapeiphang. Niuma, ha ki hat ne iew Hima, bun ki iapyndonkam da ki ktien Hima lajong, hynrei hangne ruh, ym lah da lei-lei ban kiar ia ka ktien Khasi ne ktien pdeng, namar don bun ki nongkharii bad nongthied nongpet kiba wan na shabar ka Hima. Kumta, ha kane ka liang ruh, ka ktien Khasi ka long ka atiar kaba tehsong ia ka jaitbynriew jong ngi.
5. Ha ka liang ka **sports** ruh, donkam ban sngewthuh ia ka ktien Khasi pdeng, khnang ban lah ban peiphang lang ia ki buit ki kabu kiba plie, kum ha ki jingialehkai phutbol, hockey, bad kiwei kiwei.

Ka ktien hi ka dei ka bor kaba tehsong ia kano kano ka jaitbynriew. Ka khana shaphang u Mot Babel ha ka Bible, ka pyni kumno ba ka jaitbynriew ka pra bad sakma hadien ba U Blei U la pynkulmar ia ka ktien kaba ki kren.

Ki Kyntien Pynkut

Ka long ka kamram jong uwei-pa-uwei u Khasi ne kawei-pa-kawei ka Khasi ban kheiñkor bad ñiewkor ia la ka jong ka ktien. Ñiuma, kum ka jingbsiat ksai, lah ban ong ba ka jingñiewkor ia la ka jong ka ktien ka dei ban sdang shuwa na la ki rympei iing. Ngi dei ban pyndonkam da ka ktien Khasi ha ki jingñakren ha iing ha sem. Nangta, baroh ki khynnah bad samla Khasi ki dei ban pule ia ka Khasi kum kawei na ki subject jong ki ha ki skul bad college.

Nga kwah ban kynthoh ba ngi don pahuh ia ki ktien bad kyntien ha ki liang bapher bapher. Kumta, ngi dei ban sngewsarong ban pyndonkam ia ki; wat ha ka jingpynkup kyrteng ia ki khun ruh, to ngin ia pyrshang ban jer da ki rngiew kyrteng Khasi. Hoodid, ha bym don la ki ktien lajong te yn ialeh kumno...hap hi keiñ ban shim kylliang da ki ktien bad kyntien nongwei, hynrei ngi dei ban kiar haba lah ban kiar, bad ban sngewsarong la ka jong.

Nga kyntu jur ruh ia kane ka pateng bad ia ki longdien ban ieid ban pule ia ki kot Khasi, namar kane ruh ka long kawei ka dak jong ka jingñiewkor jong ngi ia la ka jong ka ktien. Kine ki long tang katto katne ki jingñakdew paralok kumno ba ngin ñiewkor ia la ka jong ka ktien.

Ki Thymmei Jingtip

1. *Katto katne na ki paragraphs ba la tyrsat ha kane ka jingthoh, la sot na ka jingthoh jong i Bah Wan Kharkrang ha ka souvenir **Laitumkhrah 2000***
2. *R.S.Lyngdoh. **Ka History ka Thoh Ka Tar***
3. *U Soso Tham. **Ka Duitars Ksiar***
4. ***Ka Syrwet 50 Snem Ka Jingkhlad Noh U Ph. Hopewell Elias Khariong, SDB 1966-2016***
5. *Na ka jingthoh jong i Dr. Sukjai Swer, kaba la mih ha ka makasin U **Mawdong** jong u bnai January, 2012.*

1. Centre For Continuing Education, North Eastern Hill University; **Ka Jingpynroi Bad Jingpynriewspah Iä Ka Jinghikai Iä Ka Khasi** (1976)
 2. U Soso Tham, **Ka Duitara Ksiar** (1979)
 3. H.Warjri, U Soso Tham **Bad Ki Jingtrei Jong U** (1980)
 4. **The Shillong Times**, dated March 9, 2009
 5. Souvenir **Laitumkhrah 2000**
-

(Īa kane ka article la sot na ka jingthoh jong i Dr. Sukjai Swer, kaba la mih ha ka makasin U Mawdong jong u bnai January, 2012. Ī Dr.Sukjai Swer i long mynta i Head jong ka Khasi Department, Sankardev College, Shillong)



पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकास - दृष्टि र दिशा (बीज-भाषण)

-मोहन पी० दाहाल

राजनैतिक, प्रशासनिक र क्षेत्रीय विकासका दृष्टिले पूर्वोत्तर अथवा उत्तरपूर्वी भारतको अवधारणा ब्रिटिश भारतको भाग गर र राज गर नीतिको उपज हो। स्वतन्त्र भारतको शासन व्यवस्थाले पनि उही नीति ग्रहण गरी पूर्वोत्तर भारतमा पर्ने 'ग्रेटर असमलाई-लाई विभाजन गरेको छ। पुरातन कामरूप वा प्रागज्योतिषपुरको पर्याय वृहत्तर असमको विभाजन क्षेत्रीय, गोष्ठीय र जातिय आकाङ्क्षा मात्र होइन कतिहदसम्म राजनैतिक, प्रशासनिक तथा भारतको एकीकरणका दृष्टिले समेत अपरिहार्य रहेको कुरो सर्वविदित छ। साम्प्रतिक कालमा पुरानो स्वतन्त्र र सार्वभौम राष्ट्र सुखिम(सिक्किम)-लाई समेत भारतमा विलय गरी उत्तर-पुर्वी राज्यको समूहमा अन्तर्भुक्त गरिएको छ। यो भागबण्डा राजनैतिक र प्रशासनिक उद्देश्यद्वारा प्रेरित छ।

भाषा-साहित्यका क्षेत्रमा भने यस किसिमको भागबण्डा अथवा विभाजन अध्ययन अध्यापनका सुविधाका दृष्टिले; क्षेत्रीय आकाङ्क्षा र प्रतिद्वन्द्विताका दृष्टिले एवं भाषा-साहित्यको ख्यातिआर्जनका दृष्टिले पनि अपेक्षित छ। वस्तुतः वर्तमानकालमा भाषा-साहित्यको विकास क्षेत्रीय, खण्डीय र राष्ट्रिय तहबाट उक्लेर अन्तर्राष्ट्रिय तहमा पुगिसकेको छ। अतः आजको यस सङ्गोष्ठीमा उत्प्रेणा, उत्थान र उपलब्धिका दृष्टिले पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकासबारे चर्चा-परिचर्चा अपेक्षित छ।

कुनै पनि समाजमा साहित्य रचना र विकासका निमित्त अपरिहार्य आवश्यकता, स्थिति, परिवेश, अर्थव्यवस्था, प्रेरणा, प्रहार, विरह-व्यथा, ज्ञान-विज्ञान, दमन-शोषण, उल्लास-उमङ्ग-उद्यम-उपदेश जस्ता अनेकन भौतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, दार्शनिक चेत तथा कल्पना, यथार्थ, अतियथार्थ अथवा राग-विराग जस्ता रन्थरूमलो अपरिहार्य छ कि स्वतः उद्रेक हुने मानवीय अनुभूति सहज, सरल र तरल अभिव्यक्ति नै पर्याप्त छ- जाँच्ने अनेक दृष्टि छन्।

भाषा-साहित्यको विकास पशु-पक्षीले गर्दैनन् तापनि तिनीहरूले क्रिया-प्रतिक्रिया, ध्वनि, सुर-ताल तथा हर्ष-अमर्ष, क्रोध, पीर आदिको प्राकृतिक अभिव्यक्तिमा साहित्य शिखा नपाइने होइनन्। नेपाली साहित्यका माध्यमिककालीन स्रष्टाहरूले चरिको सवाई, तोता-मैनाको कथा, पीकदूत जस्ता अनेकन रचना गरेको कुरो सर्वविदित छ। त्यसरी नै माध्यमिककालीन नेपाली साहित्यमा रोग-भोग र शोक अथवा युद्ध, धर्म, प्राकृतिक प्रकोप, कर्मकाण्ड, ज्योतिष, औषधिमूलो, नीति र राजनीति, दार्शनिक चिन्तन, जीवनी, दैनिकी, यात्रा एवं सवाई-लहरी जस्ता लेखनको लहड र होड चलेको थियो।

कुनै पनि जातिको भाषा-साहित्य-संस्कृतिको उत्थान, विकास र पतन अवश्यम्भावी रहेको कुरो इतिहासले प्रमाण गरिसकेको छ। विश्वमा अनेकन सभ्यताको उत्थान र पतन भएको इतिहास पाइन्छ। प्राचीन ग्रीसेली सभ्यता, आर्य सभ्यता, महेनजोदाडो र हरप्पाको सभ्यता, माया सभ्यता आदिको उत्थान र पतन सम्बन्धी प्रशस्त आलेख, प्रलेख र प्रतिवेदन पाइन्छन्। विश्वका अनेकन जाति-उपजाति, गोष्ठी आदिको इतिहास लेखिएको छ।

पूर्वोत्तर भारतका नेपाली जातिको गढ र जड यस क्षेत्रमा बगाइएको रगत र पसिना यसै क्षेत्रमा गाडिएका पुर्खाहरूको सालनाल, चिहान-चौतारा, लेखा-पानी, कोइलाखानी, छपडी र झोपडी खेतका गरा-गरामा रोपेका सपना-जपना, अटब्बे वन जङ्गलमा गाइएका मया-प्रीतिका मधुर कल्पना, प्राकृतिक प्रकोप र युद्धाभिमानको भयानक यातना आदि यस क्षेत्रको साहित्य लेखनका सामग्री हुन्। वस्तुतः असम पूर्वाञ्चलको नेपाली साहित्य श्रमजीविहरूको साहित्य हो।

महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाले शाकुन्तल महाकाव्यको प्रारम्भमा नै लेखेका छन्-

मिठो लाग्छ मलाई त प्रिय कथा प्राचीन संसारको।

हाम्रो भारतवर्षको उदयको हैमप्रभासारको।।

प्राचीनकालीन जम्बुद्वीप अथवा भारतखण्ड(भारत) वर्तमानकालीन राजनैतिक भारत होइन। त्यो सांस्कृतिक भारत थियो। भारतमा आर्यहरूको आगमन; आर्य-अनार्यमाज द्वन्द्व, जनजातीय गोष्ठीहरूसँग प्रथमतः युद्ध, त्यसपछि क्रमशः सम्झौता, मित्रता हुँदै वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित भएको थियो। आर्य र अनार्यहरूमाझ युद्ध र विध्वंसक काण्डहरू इतिहासका सामग्री भएका छन्। महेन्जोदारो र हरप्पाको प्राचीन सभ्यताका ध्वंशशेषहरू इतिहासका प्रामाणिक तथ्यहरू हुन्। शक्तिशाली आर्यहरूले अनार्यहरूलाई उत्तर भारतबाट लखेटेर दक्षिण भारतमा पुर्याए तथा परवर्तिकालमा मुगलहरूद्वारा धर्मभ्रष्ट पारिने आशङ्काले ब्राह्मण र क्षत्रीयहरू भारतको उत्तर र पश्चिमोत्तर दिशातिर पलायन हुनथाले। त्यहाँका आदिवासी जनजातिहरूसँग प्रथमतः युद्ध, त्यसपछि सम्झौता र अन्तमा रक्तसममिश्रणद्वारा भाषा र सांस्कृतिक मिश्रणद्वारा गोर्खा वा नेपाली जातिको जन्म भएको मानिन्छ। जातिसँगै भाषामा पनि यो प्रक्रिया द्रष्टव्य छ। वर्तमान नेपालको कर्णाली क्षेत्र नेपाली भाषाको प्राचीनस्वरूप सिञ्जालि भाषाको जन्मथलो मानिन्छ।

नेपाली जातिका पूर्वदिशाको विशेष रहेको पाइन्छ। पश्चिम(कर्णाली क्षेत्र) बाट पूर्वतिरको गमन अथवा पलायन अथवा महाअभियान प्रक्रिया धेरै पुरानो हो। त्यही प्रक्रियाको एउटा भँगालोद्वारा असम-पूर्वाञ्चलका लगभग दुई शताब्दी अघिदेखि नेपालीहरूको गमन र गौँडा निर्माण भएको बुझिन्छ।

असम पूर्वाञ्चलको सामाजिक, धार्मिक, भाषिक एवम् साहित्यिक क्षेत्रमा नेपालीहरूले पुराएको योगदान सर्वदिदिताँ छ।

वृहत्तर असमसँग पौराणिककालदेखि नै नेपाल र नेपालीहरूको सम्बन्ध, सम्पर्क र वैवाहिक सम्बन्ध रहेका अनेक कथा-उपकथा प्रचलित छन्। प्रागैतिहासिककालीन गोरखनाथ, नरकासुर, बलीराज आदिसँग सांस्कृतिक सूत्रबन्ध, वृहत्तर कामरूप, कोचबिहार र त्रिपुराका राजपरिवारसँग नेपालका राजपरिवारको वैवाहिक बन्धनद्वारा स्थापित सम्बन्ध र त्यसको परवर्तिकालीन परिणति उल्लेखनीय छ।

भारत उपमहादेश(भारतखण्ड, जम्बुद्वीप) अन्तर्गत पर्ने प्राचीनकालीन त्रिपुराको नाम 'किरात' रहेको छ; नेपाल नरेश जयदेवले कामरूपकी राजकुमारी तथा कोचवंशी नरेश तिलकविश्व सिंहले नेपालकी राजकुमारी रत्नावलीलाई विवाह गरेका थिए भने कोच राजकन्या रूपमति नेपाल नरेश प्रताप मल्लकी पत्नी थिइन्।

पौराणिक ग्रन्थका आधारमा राजा नरकासुरको जन्म नेपालको वराह क्षेत्रमा भएको थियो। नरकासुर राजा जनकका पोष्यपुत्र थिए। तिनले कामरूपका राजा घटकासुरलाई पराजित गरी आफु राजा भए। असमको विश्वप्रसिद्ध पीठ कामाख्याको निर्माण तथा त्यस पीठका निमित्त नेपालबाट ब्राह्मणहरू ल्याउनमा पनि नरकासुरको महत्वपूर्ण भूमिका रहेको मानिन्छ। यस्ता अनेकन पौराणिक अथवा कपोलकल्पित कथा र घटनाहरूले कतिहदसम्म नेपाल र प्राचीन कामरूपको पौराणिक एवम् कतिहदसम्म ऐतिहासिक सम्बन्धबारे प्रकाश पार्छन्।

असम पूर्वाञ्चलका रैथाने नेपालीहरू यस क्षेत्रका भूमिपुत्र हुन्। तेलखानी, कोइलाखानी, खेतीपाती, पशुपालन र दूधको बेपारमा अब्बल ठहरिएका नेपालीहरूले यस भूभागको विकासमा पुराएको योगदान अतुलनीय छ। परवर्तिकालमा यस क्षेत्रको सुरक्षा र संवर्धन कार्यका निमित्त वचनबद्ध र कर्तव्यपालनका दृष्टिले नेपाली जातिको अवदान उल्लेखनीय र प्रशंसनीय छ।

तुलचन आले रचित *मणिपुरको सवाई(१८९३)*, धनवीर भँडारीको *अब्बर पहाडको सवाई(१८९४)* र *भँचालाको सवाई(१८९७)*हरूले प्रारम्भ गरेको असम पूर्वाञ्चलको नेपाली साहित्यको विकास साथै शिक्षा-संस्कृति-समाजलाई टेवा दिने मणिसिंह गुरुङ, हरिप्रसाद गोर्खा राई, विष्णुलाल उपाध्याय, हरिभक्त कटुवाल, दिलबहादुर नेवार, गोपीनारायण

प्रधान, श्यामराज जैसी, शिशिर कुमार गुरुड, अनुराग प्रधान जस्ता अनेकन दिवङ्गत विभूतिहरूले बिंडो थाम्ने एउटा सबल शक्ति सक्रिय छ।

मेरा विचारमा हाम्रा स्नातक र स्नातकोत्तर तहका विद्यार्थी एवम् शोधकर्ताहरूले असम पूर्वाञ्चलको नेपाली जातिको भाषा-साहित्य-इतिहास, संस्कृति तथा कर्म-धर्म र मर्म अध्ययन गर्नका निम्ति निम्नोल्लेखित पुस्तकहरू अध्ययन गर्न आवश्यक छ-

१. आसामे नेपालीहरू (दो.सं.१९७२) - विष्णुलाल उपाध्याय।
२. असममा नेपालीहरूको ऐतिहासिक पृष्ठभूमि(१९९०) - श्यामराज जैशी।
३. आसाम गोर्खा सम्मेलन(१९९२) - विगत पच्चीस वर्ष(स्मृति ग्रन्थ)।
४. असममा नेपाली साहित्यिक संस्थाहरू(२००४) - जमदग्नि उपाध्याय।
५. तुराका नेपालीहरू(१९९३) - पदम क्षत्री।
६. विष्णुलाल उपाध्याय:व्यक्तित्व र कृतित्व(२००४) - खेमराज नेपाल।
७. History and Culture of Assamese Nepali(2009)- Ed. Jamadagni Upadhaya
८. सृष्टि र प्रवचन(२०१७) - युद्धवीर राणा
९. आँखी झ्यालभिन्न मणिपुर(२०१७) - भवानी अधिकारी
१०. नेपाली भाषा आन्दोलनमा असम - शिशिर कुमार गुरुड।

असम पूर्वाञ्चलमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकास, संरक्षण र संवर्धनका निम्ति तथा संवैधानिक एवम् नागरिक अधिकार प्राप्त गर्नका निम्ति निम्नलिखित बुँदाहरू विचारणीय छन्-

१. असम-पूर्वाञ्चलका सचेत नेपाली साहित्यकार, गवेषक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, शिक्षक, प्राध्यापक, समाजसेवक र विद्यार्थीहरूले असम पूर्वाञ्चलका सबै राज्यहरूमा भारतीय नागरिक नेपालीहरूको प्रामाणिक जनसङ्ख्या टुङ्गो लगाउनु। जनसङ्ख्या कै आधारमा नागरिक समाजले सरकार र प्रशासन समक्ष शिक्षा तथा अन्यान्य सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक अधिकार प्राप्त गर्ने प्रयास।
२. असम-पूर्वाञ्चलमा नेपाली जनसङ्ख्या बहुल कुनकुन थानाक्षेत्र, पञ्चायत लगायतक्षेत्र, महकुमा वा जिल्ला छन्? सो प्रामाणिक रूपमा पत्तो लगाउनु तथा त्यसका आधारमा स्वायत्तता, संवैधानिक अधिकार प्राप्त गर्न सकिन्छ। यो नितान्त गम्भीर विषय हो र यसतर्फ गहिरिएर विचार गर्नुपर्छ।
३. असम पूर्वाञ्चलका राजधानी एवम् शहर बजारहरूमा नेपालि पुस्तक,पत्रपत्रिका विक्री-वितरण एवम् पुस्तक पसल तथा सारवजनिक पुस्तकालय, वाचानालयहरू स्तापना गर्न आवश्यक छ।
४. असम-पूर्वाञ्चलका नेपाली साहित्यिक र साहित्यइतर कृतिहरू एवम् पत्रपत्रिकाहरू दार्जिलिङ, सिक्किम, डुवर्स, बनारस, देहरादुनतिर उपलब्ध गराउने र उपर्युक्त स्थानहरूका पुस्तक पत्रपत्रिकाहरू असम-पूर्वाञ्चलमा उपलब्ध गराउने व्यवस्ता निर्माण गर्न आवश्यक छ।
६. बुनियादी तहदेखि उच्च र उच्चतर तहसम्म नेपाली भाषा-साहित्यको पठन-पाठन,अध्ययन अध्यापन तता तत् सम्बन्धी शोधकार्यको दिशामा सक्रिय हुन आवश्यक छ।
७. असम-पूर्वाञ्चल क्षेत्रमा अवस्थित दुईवटा केन्द्रीय विश्वविद्यालय(गौहाटी र नेहु)-हरूमा नेपाली भाषा-साहित्यको उच्चतर र उच्चतम तहको अध्ययन अध्यापन एवम् गवेषणा कार्य प्रारम्भ भयो भने अथवा त्यसो गर्न बाध्य गराउन सके मात्र असम पूर्वाञ्चलमा नेपाली भाषिक-साहित्यिक-अकादमिक समस्या र आवश्यकता समाधान हुने दैलो खोलिन्छ।

पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषिक समाजको विस्तार एवम् विकास

सञ्जय बान्तवा

सारांश

नेपाली भाषा एक अन्तर्राष्ट्रिय भाषा हो । यसको लामो ऐतिहासिक परम्परा छ । यसको लेख्य स्वरूपको नमूना आठौँ शताब्दीको उत्तरार्द्धमा पाइएको छ । समृद्ध साहित्य भएको जिउँदो नेपाली भाषाको विकास एउटा सार्वभौम राष्ट्रनिर्माणसँगै उँभो उक्लिएको छ । यस भाषाको बल पाएर नै एउटा सिङ्गो जातित्वको घरेटी पनि बसेको छ ।

नेपालजस्तो स्वतन्त्र र सार्वभौम राष्ट्रवाट विश्वमा फैलिएको नेपाली भाषा समान भूपरिवेश एउटै धर्मसंस्कृति विश्वास र भूराजनैतिक परिस्थितिले युक्त भारतको उत्तरी हिमाली क्षेत्र र भित्री मधेस क्षेत्रमा समेत मौलाएको छ । अठारौँ शताब्दी पूर्वदेखि भारतीय परिवेश र समाजमा प्रयुक्त नेपाली भाषाको उपयोग यसको मूल थलोमा पनि एघारौँ शताब्दीभन्दा अघिदेखि हुँदैआएको छ । यस भाषामा पठनपाठन तथा लेखनको विकासको परम्परासँगै विभिन्न स्थानमा मौलिकतासहित एक भाषिक समाजको गठन पनि भएको छ । नेपाली भाषा वटवृक्षजस्तो तर आआफ्नो स्वरूप पनि बनाउँदै फैलिएको छ ।

विशेष भारतको पूर्वी र पश्चिमी क्षेत्र सन् १८१६ अघिसम्म नेपालको अधिनमा थियो । सन् १८१६ को सुगौली सन्धिपछि एकप्रकारले अङ्ग्रेज-भारतको अधिकारक्षेत्र बन्नपुगेको पूर्वी र पश्चिमी क्षेत्रमध्ये पूर्वी भागमा नेपाली भाषाको सर्वाङ्गीण विकास भयो । सन् १९४७ मा भारत स्वाधीन भएपछि पनि पश्चिमी क्षेत्रको पञ्जाव उत्तरप्रदेश हिमाचलप्रदेशतिर नेपाली भाषाको सामाजिक प्रशासनिक विकास गतिशील बन्न सकेन ।

स्वतन्त्रतापूर्वनै दार्जिलिङमा केन्द्रित नेपालीभाषी समाजले नेपाली मातृभाषाको रूपमा पढ्न पाउने र मातृभाषाकै माध्यमबाट शिक्षा लिने उपलब्धि प्राप्त गरिसकेको देखिन्छ । पूर्वाञ्चल क्षेत्रको असम तथा अन्य राज्यहरूमा पनि नेपाली भाषा त्यहाँको समाजको निम्ति एक केन्द्रिय तत्वको रूपमा सक्रिय रहेको पाइन्छ । पूर्वाञ्चल क्षेत्रका नेपालीभाषीहरूले भाषाको सम्बर्द्धन र विकासको निम्ति चौतर्फी प्रयास गरे ।

सन् १९७५ मा भारतमा सिक्किमको विलय भएपछि त्यहाँका संख्याधिक नेपाली भाषीको योगले भारतीय परिवेशमा नेपाली भाषाको उपस्थिति अझै दृढिलो बन्यो । सन् १९९२ मा सिक्किमकै तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री नरबहादुर भण्डारी सांसद दिलकुमारी भण्डारीका सक्रिय राजनैतिक नेतृत्वको कारण नेपाली भाषाले भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा अन्तर्भुक्ति तथा मान्यता प्राप्त गर्न सको ।

यस कार्यपत्रमा नेपाली भाषाको विकासपरम्पराको साङ्गोपाङ्ग इतिहास नबखानेर नेपाली भाषाको अवस्थिति र भविष्यप्रति दृष्टि राख्ने प्रयास मात्र भएको छ ।

विषय-प्रवेश

नेपाली भाषा एक अन्तर्राष्ट्रिय भाषा हो । दक्षिण एशियाका प्रमुख दुइ देश नेपाल र भारतमा राष्ट्रिय भाषाको रूपमा स्वीकृत एवं स-साना प्रदेश लगायत राज्यहरूमा माध्यम-भाषाको स्तरमा संगठित नेपाली भाषा एक जीवन्त भाषा हो । नेपाली भाषा **खस, पर्वते, सिंजाली** तथा **गोरखा भाषा** नामले पनि चिनिँदै आएको छ । भाषाको प्रकृति अनुरूप कुनै पनि भाषाले विकास गर्दा जटिलतादेखि सरलता र स्थूलताबाट सूक्ष्मतातिर उन्मुख हुने प्रक्रिया ग्रहण गर्दछ । भाषाले सुष्ठता प्राप्त गर्दा आफ्नो साँस्कृतिक संचारण र अभिव्यक्ति संस्कारलाई जरैबाट समातेर राख्दछ । यसैले नेपाली भाषालाई पनि एक विशाल वटवृक्ष भन्दा अत्युक्ति नहोला । नेपाली भाषाले विकासको क्रमसँगै आफ्नो विस्तार पनि गरेको छ । साँस्कृतिक र संस्कारगत चरित्रको आधारमा नेपाली भाषाले विविधतालाई स्वीकार गरेको छ । नेपालदेखि फैलिएको यो

भाषा पूर्वमा वर्मा, पश्चिममा पंजाबसम्म, उत्तरमा पूरा हिमवत्खण्डदेखि लिएर दक्षिण एशियाको गांगेय समभूमि तथा अन्य भाषा-परिवार क्षेत्रतिर पनि यसले विस्तार पाएको छ । आजको स्थितिमा नेपाली भाषा पश्चिमी राष्ट्रहरूमा समेत साँस्कृतिक संचारणको मूल आधार बनिसकेको छ ।

सन् १७९५ भन्दा अघिवाट नेपालको अधिन रहेको भारतको पूर्वी र पश्चिमी क्षेत्रमा नेपाली भाषाको पनि विस्तार भइसकेको थियो । भारतमा बसेका मगर गुरुङ नेवार राई लिम्बु लेप्चा र भोटे भाषाभाषीहरूले पनि आफ्नो भाषा छोडेर नेपाली भाषालाई मातृभाषाका रूपमा ग्रहण गरेका छन् (बन्धु : १९९० : ३) । सन् १८१६ को सुगौली सन्धि र सन् १८१७ को तितौलिया सन्धिपछि नेपालले पूर्व र पश्चिमको भू-भाग छोड्न परे तापनि अङ्ग्रेज-भारतको त्यो क्षणिक विजय मात्र थियो । आफ्ना प्रजा र नेपाली भाषाको बीज साम्राज्यवादी इस्ट इन्डिया कम्पनीको क्षेत्रभित्र हुलिराखेर नेपालले आफ्नो साँस्कृतिक-भाषिक उपस्थिति छाडिराखेको थियो । सन् १८१७ मा जयन्त खत्रीले गोर्खालीविजित क्षेत्र छोडेपछि पूर्वको भूभाग सिक्किम बनेको भए तापनि सन् १८३५ सम्म (दार्जिलिङको भूभाग अङ्ग्रेजले लिँदासम्म) त्यस क्षेत्रको भाषिक परिवेश नेपाली भाषाले ढाकिसकेको थियो । सिक्किमका आदिवासीहरूले पनि नेपाली भाषालाई मातृभाषाका रूपमा स्वीकारेका छन् (बन्धु: १९९०:३) । नेपालले छोडेको पश्चिमी भूभागमा पनि नेपाली भाषा र यस भाषालाई मातृभाषाको रूपमा स्वीकार गर्ने जनजीवनको संख्या सर्वाधिक रहेको तथ्य उपलब्ध छ । पश्चिमी पहाडी कुमाउनी गढवाली भाषा र नेपाली भाषा एउटै भाषा परिवारका भाषा भएको हुनाले नेपाली भाषाको विकास त्यस क्षेत्रमा सहज र व्यापक बनेको छ ।

भूपरिवेश, संस्कृति एवम् भूराजनैतिक सम्बन्धका कारण नेपाली भाषाको विस्तार भारतमा सहज बनेको छ । यो भारतीय भाषाहरूमध्ये अत्यन्त सजीव र समृद्ध भाषा हो । यस सत्यलाई भाषाविद् सुनीति कुमार चटर्जीले पनि यसरी उल्लेख गरेका छन् –“भारतमा साँच्चै महत्त्वपूर्ण भाषाको संख्या घटाउन सकिन्छ ; भारतमा केवल १५ वटा जति मात्र साहित्यिक भाषाहरू छन् । ती हुन् असमी, बङ्गाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, नेपाली, उडिया, पंजाबी, सिन्धी, तमिल, तेलुगु र उर्दू ; साथै दुइवटा अभै अङ्ग्रेजी र संस्कृत, जसको आफ्नै विशेष स्थान छ (चटर्जी: १९६०:७,४६)।”

कुनै भाषाक्षेत्रमा शिक्षाको माध्यम मातृभाषा भएमा निश्चित भाषाको विकास सम्भव हुँदछ । शिक्षा व्यवस्थामा माध्यमको रूपमा मात्र नभई त्यो भाषा स्वयम् अध्ययनको विषय बन्नपर्दछ । इतिहाससँगै संघर्षरत नेपाली भाषा समुदायले पनि नेपाली भाषालाई शिक्षाको क्षेत्रबाट, साहित्यको माध्यमबाट विकसित गराएर ल्याएको सन्दर्भलाई यस लेखमा उल्लेख गरिने प्रयास भएको छ । भाषिक अध्ययनको दृष्टिबाट पनि भारोपीय भाषा परिवारअन्तर्गत पर्ने नव्यआर्य भाषाको रूपमा नेपाली भाषा सारा भारतमा फैलिएको छ । नेपाली भाषाको विशद् सन्दर्भमा ‘भारतीय शब्दले अचेलको राजनैतिक भारतवर्ष मात्र नवुभाएर भारत र यसका वरपर रहेका म्याँमार, बङ्गलादेश, श्रीलङ्का, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, मालद्वीप आदि समस्त क्षेत्रलाई वुभाउँदछ’ (नेपाल: २००९: ९४) । नेपाली भाषाको विस्तार अब यूरोप अमेरिका मध्यएशियाका विभिन्न राष्ट्रतिर पनि भइरहेको छ । नेपाली भाषाको विस्तार र विकासले एक नेपाली जातित्वको पुनर्निर्माण भइरहेको परिप्रेक्ष्यमा समेत स्वतन्त्र अध्ययन र स्पष्ट लेखाजोखा हुनपर्ने एक नयाँ दिशा खुलेको छ ।

नेपाली भाषाको विस्तार

कुनै पनि भाषाको निम्ति भौगोलिक सीमा र राजनैतिक घेराबन्दी त्यति महत्त्वपूर्ण कुरो होइन । भाषा मानवीय सम्पति हो र मानव मात्रकै अभिव्यक्तिको सन्दर्भमा यो एक सार्वजनीन रिक्थ हो ।

मानव-सभ्यताको मेरुदण्ड भाषा नै हो । यद्यपि भाषाको अध्ययन सुविधाको निम्ति यसका महाद्वीपिय, परिवारगत भेद तथा भाषाका मूल स्रोत एवं विकासका गोहो पैल्याएर हेर्नेगर्दा सीमा र क्षेत्रका कुरा निश्चय आउँछन् तर ती भौतिक विशेषता मात्र हुन् । नेपाली भाषाकै सन्दर्भमा पनि यसका पूर्वनाम एवं स्रोत हेर्दा नेपालमै पनि बाहिरबाट, नेपाल राष्ट्रको निर्माणभन्दा अघि भित्रिएको थाहा पाइन्छ । नेपालीलाई नव्य आर्य भाषाको रूपमा चिनिन्छ । नेपाली भाषाको जन्म पनि संस्कृतबाटै भएको छ । भारतमा लेखिने बोलिने अन्य नव्य आर्य भाषाहरू(हिन्दी, बंगला, असमी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी) झैं नेपालीको पनि जन्म तर सोझै संस्कृतबाट भएको होइन । संस्कृतपछि प्राकृत हुँदै अपभ्रंश भाषाहरू भए । प्राकृत र अपभ्रंश (मध्यभारतीय आर्यभाषा) भाषा हुँदै नव्य आर्य भाषाको जन्म भएको छ । नेपाली भाषाको उत्पत्तिबारे विद्वानहरूमा दुइ मत छ । जर्ज ग्रियसन, सुनीति कुमार च्याटर्जी र महानन्द सापकोटा नेपाली भाषाको उत्पत्ति खस प्राकृतबाट भएको ठान्छन् । सूर्यविक्रम ज्ञवाली र बालकृष्ण पोखरेल चाहिँ नेपाली भाषाको उत्पत्ति शौरसेनीबाट भएको हो भन्ने मान्छन् । खसहरूले बोल्ने भाषा भएकोले नेपाली भाषालाई अघि **खस कुरा** भनिन्थ्यो । पाल्पा, गुल्मी, बाग्लुङ आदि पर्वत क्षेत्रतिर बोलिने भएकोले यसलाई **पर्वते कुरा** पनि भनिन्थ्यो । पश्चिम नेपालको पर्वत जिल्लामा बस्ने मानिसहरूको भाषा भएकोले पनि यसलाई **पर्वते कुरा** भनियो । द्रव्य शाहले गोरखा जितेपछि (सन् 1559) र खस भाषालाई राजकाजको (राई: 2006: ग-घ) भाषा चलाएपछि यो **गोर्खा भाषा** वा **गोर्खाली भाषा** कहलाउन थाल्यो । यसको प्रयोग गोरखामा मात्र सीमित थिएन । पृथ्वीनारायण शाहले नेपाल विजय गर्नुभन्दा 98 वर्ष अघि नेवार राजा जयप्रताप मल्लको रानीपोखरी-शिलालेख (सन् 1670) नेपाली भाषामा लेखिएको पाइन्छ । पृथ्वीनारायण शाहको नेपाल विजयपछि यस भाषाले सर्वगृहीत नेपाली भाषाको रूप पाएको हो । नेपाल राष्ट्रको निर्माण भएपछि नै अधिको **गोरखा भाषाले नेपाली भाषा** नाम पाएको हो । नेपालको राष्ट्रीय भाषाको दर्जा पनि यही **गोरखा भाषाले** पाएको छ । यसर्थ कुनै पनि भाषिक समाजले आर्जन गरेको अनुभव र अभिव्यक्तिले गर्दा नै भाषाले विस्तार पाउँदछ । नेपाली नामको भाषाले पनि वहिकेन्द्रिक चरित्रको भन्दा अन्तरकेन्द्रिक ध्रुवीय विशेषता अनुरूप विस्तार पाएको छ । भाषिक समाजले संरचना पाएर सहजात परिवेश अन्तर्गत भाषाले विकास गरेको छ । यिनै विशेषताले गर्दा नेपाली भाषा विश्वमा अत्यन्त सरल, सरस एवं मानवसभ्यता-सहजातको रूपमा प्रचलित छ । प्रसिद्ध पनि छ ।

नेपाली भाषाको क्षेत्र

नेपालभित्र र बाहिरका विभिन्न जाति-जातगोष्ठीका मानिसहरूले बोल्ने — नेपाली भाषा अब सबैको मातृभाषा बनिसकेको छ । नेपालभित्र मगर, गुरुङ, नेवार, लिम्बू, सुनुवार, थामी, चेपाङ्ग, राजी, व्यासी, भोटे, दैरे आदि जातिहरूले नेपाली भाषालाई ग्रहण गरेका छन् (बन्धु: सन् 1990: 2-3) । भारतमा बसेका मगर, गुरुङ, नेवार, राई लिम्बू, लेप्चा र भोटे भाषाभाषीहरूले पनि आफ्नो भाषा छोडेर नेपाली भाषालाई मातृभाषाका रूपमा ग्रहण गरेका छन् । सिक्किमका आदिवासीहरूले पनि नेपाली भाषालाई मातृभाषाका रूपमा स्वीकारेका छन् (बन्धु: 1990: 3) । सन् 1815 पछि अंग्रेज-भारतले गठन गरेको गोर्खा फौज पछि सन् 1947 मा भारत स्वाधीन भएपछि भाग लागेर आधा गोर्खा फौज (4 रेजिमेन्ट) मलाया र सिंगापुर पुग्दा त्यहाँ पनि नेपाली भाषाभाषीको समाज बन्यो ।

नेपालबाहिर नेपाली भाषा

भारोपीय भाषापरिवार अन्तर्गत सतम् वर्गमा पर्ने नेपाली भाषा एक नव्य-आर्य भाषा हो । नेपाल राष्ट्रभन्दा बाहिर, विशेष भारतमा यो भाषा सहजतासित फैलिनसक्नुको कारणमध्ये यसको भाषिक साम्यता, स्रोत-साम्यता आदि प्रमुख देखिन्छ । नेपाली भाषाको समाज भारतभित्र संगठित हुँदैजानु यसको अर्को विशेष कारण हो ।

विभिन्न कारणहरूले गर्दा नेपालबाहिर नेपाली भाषाले एउटा समाज, समुदाय निर्माण गरेको छ । विभिन्न जाति, गोष्ठीका मानिसहरूले आफ्नो भाषालाई छोडेर नेपाल राष्ट्रमा फस्टाउँदै गरेको खस भाषालाई माध्यम-भाषाको रूपमा अपनाए । यस्तो अवस्था नेपालभित्र पनि थियो । भारतमा पनि विशेष दार्जिलिङलाई केन्द्र गरेर नेपाली भाषा संगठित हुन अघि भुटानमा, भारतको पूर्वांचल असम, मणिपुरमा, वर्मामा यो भाषाले विकासिने अवसर पाइसकेको थियो । सत्रौं शताब्दीमा भुटानले नेपालको प्रजालाई आफ्नो प्रजा बनाएर लगी भुटानको रस्ती-बस्ती बसाउँदा नै नेपाली भाषा त्यहाँ पसिसकेको हो भन्ने तथ्य स्वीकार्य होला नै । ऐतिहासिक तथ्यको आधारमा तत्कालीन भुटानका राजा साबडुङ नवांग नामग्यालले सन् 1620 मा आफ्नो पिताको स्मृतिमा चाँदीको स्तूप निर्माण गर्न काठमाडौँबाट नेवारी कारीगरहरू झिकाएका थिए (विकिपिडिया: हिस्ट्री अफ भुटान)। यसले केवल एकजना कारीगर मात्र नगएर तदनन्तर अरु मजदूर, कलाकार, आजीविकोपार्जन-उत्सुक शिक्षितहरूको पनि निर्गमन भएको संकेत गर्दछ । इमानसिंह चेमजोङको किरात इतिहासमा लिम्बुवान बनाएर लिम्बुहरूले आफ्नो संविधान बनाउँदा लिम्बुवान क्षेत्रमा बसोबास गर्ने बाहुन क्षत्रीयहरूलाई समेत लिम्बु बन्नु पर्ने नियम राखिएको उल्लेख पाइन्छ । यस्ता सामाजिक उतार-चढाउ आदिमा परेर पनि अधिकांश जनसंख्याले सिक्किम, भुटान, दार्जिलिङको भूमितिर पलायन गरेको हुनसक्छ । यसरी नेपाली भाषाको समाज अनेकौं सामाजिक संक्रमणले प्रभावित भई गाँस-बास-कपासको निम्ति एउटै भौगोलिक परिस्थिति भएका, जनघनत्व कम भएका स्थानतिर पुगी भाषा फैलाएको अनुमान सहजै लगाउन सकिन्छ । यद्यपि लिखित-विकास र प्रचार-प्रसारको चेतमा भारतकै दार्जिलिङ मात्र भन्दा पनि मणिपुर (तुलाचन आले : मणिपुरको लडाइँको सवाई, सन् 1893) अघि रहेको पाइन्छ । ईश्वर बरालको भनाई अनुसार तुलाचन आलेको मणिपुरको लडाइँको सवाई (सन् 1893) र धनवीर भँडारीको अब्बर पहाडको लडाइँको सवाई (सन् 1894) पूर्वोत्तर भारतकै मात्रै नभएर सम्पूर्ण भारतकै पहिलो लिपिवद्ध नेपाली साहित्यका नमूना हुन् । अधिक क्रियाशीलता र जनगणको घनत्वले पछि दार्जिलिङले भाषाको केन्द्रीय-प्रतिफलक बन्नसकेको हो ।

दार्जिलिङ क्षेत्रमा नेपाली भाषा-साहित्यको विस्तार

इतिहास अनुसार दार्जिलिङ अघि सन् 1779 सम्म सिक्किमको भूभाग थियो (ओ'माले: 1999: 20)। सन् 1780 मा नेपालले सिक्किममाथि आक्रमण गरेर विस्तारै सिक्किमको पश्चिमी भू-भाग आफ्नो अधीनमा पार्यो। नेपालले सन् 1788-89 सम्ममा टिस्टा नदीसम्म आफ्नो अधिकार विस्तार गर्‍यो । अंग्रेज-नेपाल युद्धको परिणामले सन् 1816 को सुगौली-सन्धि अनुरूप नेपालले सिक्किमको कब्जा-भूमि छोड्नुपर्‍यो । गोरखाली सेनाले सन् 1817 सम्म पनि सन्धि-अनुसार दार्जिलिङ क्षेत्रको नयाँ गढी छोडेको थिएन (प्रधान: 1991:134-141)। सन् 1817 मा भएको तितौलिया-सन्धि अनुसार नेपालले छोडेको भूभाग अंग्रेजले सिक्किमलाई फर्काइदियो । फेरि दश वर्षपछि सन् 1828 मा नेपाल-सिक्किमको सीमा-विवाद शुरू भयो । त्यो विवाद सुल्झाउन अंग्रेज-भारतको प्रतिनिधि भई जनरल लॉयड र जे. डब्लू. ग्रान्ट दार्जिलिङको भूभाग हेर्न आइपुगेको भन्ने इतिहास छ (ओ'माले: 1999: 20) । उनीहरूले जनरल लर्ड विलियम वेन्टिकलाई फरवरी 1829 मा *स्वास्थ्य-लाभको निम्ति हीतकर स्थान अनि शत्रुलाई ठीक पार्न सकिने अवसर भएको* भन्ने प्रतिवेदन पठाए । लर्ड विलियम वेन्टिकले पनि त्यस प्रतिवेदनमा तुरन्तै ध्यान दिँदै कार्यवाही अनुरूप कप्तान हर्बर्टलाई जे. डब्लू. ग्रान्टसँग भूसर्वेक्षण गर्न दार्जिलिङ पठाए । भूसर्वेक्षण पछिको प्रतिवेदनलाई ध्यानमा राख्दै लर्ड वेन्टिकले कुनै पनि मूल्यमा दार्जिलिङको भूमि अधिग्रहण गर्ने दिशापट्टि कदम बढाए । सिक्किम महाराजालाई भेटेर भूमि अधिग्रहण सम्बन्धी प्रस्ताव राख्न जनरल लॉयडलाई नै पठाइयो । सिक्किम महाराजाले सन् 1835 जनवरीमा दार्जिलिङको भूभाग अंग्रेज-भारतलाई उपहार-स्वरूप प्रदान गरे । यसरी दार्जिलिङ भारतमा समाविष्ट बन्‍यो । अंग्रेज-भारतले एकापट्टि दुइ हिमालयी-राज्य बीचको धेरै लामो भूमि-अधिकारको एकत्ववादी हठलाई साम्य पार्यो भने अर्कोतिर नेपाली जनगणलाई भारतीय संघमा सामेल गरायो ।

सामाजिक रूपमा नेपाली जनगणको चौतर्फी विकास आग्रहित थियो । यद्यपि नेपाली समाजले द्रूततर विकास पाउन पहिलो विश्वयुद्ध र दोस्रो विश्वयुद्धमाझको समय पर्खिनु पर्यो (राई: 1993: 41)।

दार्जिलिङ र नेपालको पूर्वमा साझा सिमाना भएकोले सहज आवत-जावत चल्दो छ । अंग्रेज-भारतले दार्जिलिङमा चियाखेती शुरू गर्दा, नेपालभित्रको सामाजिक-राजनैतिक उतार-चढाउले गर्दा नेपालीहरूको बसाइँ सराई दार्जिलिङको भूमिमा भयो । सहर बसाउनलाई, मूल सडक खनाउनलाई, चियाखेती शुरू गराउनलाई मजदूर चाहिँदा यहीं भएकाले अपुग भई थप मजदूर ल्याउन साझा सिमाना भएको पूर्वी नेपाल एकमात्र सहज विकल्प थियो । विभिन्न जाति-गोष्ठीका नेपालीहरूले साझा भाषाको रूपमा अप्नाएको आजको नेपाली भाषा **खस, पर्वते** कुराको अवस्थामा मात्र थियो अठारहौँ शताब्दीसम्म ।

भाषाको विकास हुनुमा त्यसका मौलिक साहित्य लेखनले ठूलो भूमिका निर्वाह गर्दछ । भाषाको दैनिक व्यावहारिक उपयोग, लोकको अनुभवको अभिव्यक्ति, लिप्यङ्कन, प्रयोग हुँदा नै भाषा विकसित हुँदै जान्छ । नेपाली भाषाको सन्दर्भमा पनि यिनै कुरा प्रयुक्त हुन्छन् । राजनैतिक दृष्टिकोणले मात्र नेपाल-भारतका नेपालीहरू अलग-अलग राष्ट्रका वासिन्दा भए । राजनीति अनुसारको भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्था र स्थिति उत्पन्न भइदिँदा र त्यसैमा जीवन शैलीलाई अनुकूलित बनाएर बाँच्नुपर्दा मात्र भारत-नेपालका नेपालीहरू केही पृथक-पृथक देखिएका हुन् (प्रधान: 2008: 1) । नेपालभित्रको समाजमा विशेषत हिन्दू सनातनी धार्मिक आचरण प्रमुख रहेको हुनाले प्राथमिक कालमा वीर तथा भक्तिधाराका रचनाहरू अधिक रचिए । वीरधाराभन्दा पनि भक्तिधाराले पाँजिएर बहने अवसर पाएको छ । धार्मिक आचरणले सामाजिक पाखण्ड र शोषणको रूप फेरेपछि र भारतमा अंग्रेजी शिक्षा एवं इसाई धर्मको प्रचार-प्रसार भएपछि भारतमा नेपाली समाजको मानसिकता अर्कै भएको पाइन्छ । समानन्तर दुइ धुरी भएर सन्त ज्ञानदिलदास एवं पादरी गंगाप्रसाद प्रधान, जे. ए. एटन आदिको योगदानले नेपाली भाषा, समाज संगठित हुँदै गएको छ । सन्त ज्ञानदिलदासले **उदयलहरी, झ्याउरे भजन, टुङना भजन** जस्ता आफ्ना कृतिद्वारा समाजलाई कुसंस्कार, शोषण, अन्धकारबाट बाहिर निस्कने बल प्रदान गरे । बबगुनी गुरुङको **ब्रह्मतत्वको सवाई** पनि यसै कडीको एक उल्लेखनीय रचना-कृति हो । यस शृंखलामा कृष्णलाल नेवारको **लक्ष्मी धर्म संवाद, बुद्धिचानक, तुलसीभक्ति** आदि पनि महत्त्वपूर्ण खोज (प्रधान : 2008: 30) साबित भएको छ । रामभद्रपाध्याको **लक्ष्मी धर्म संवाद** (सन् 1794) (बालकृष्ण पोखरेल : पाँचसय वर्ष , 1974 मा संग्रहित/प्रकाशित) कै शीर्षकमा दार्जिलिङका कृष्णलाल नेवारले नागरी गारथमा बसेर सन् 1868 मा नेपालीमा अनुवाद गरेका छन् । कृष्णलाल नेवारका यी रचनाहरू ज्ञानदिलदास र बबगुनी गुरुङका रचनाभन्दा जेठा छन् (प्रधान : 2008: 1) ।

सन् 1899 मा दार्जिलिङमा डरलाग्दो पैढो गयो । अंग्रेजी शासनले आफ्नो साम्राज्यवादी नीति अनुसार नेपालीलाई विभिन्न युद्धमा होमेर एक लडाकू जातिको संस्करण बनाइराख्दा युद्धरत् सिपाही-काव्यका रूपमा सवाईहरू अनेक लेखिँदै गरेको त्यस समयमा त्यो प्राकृतिक प्रकोपले जनजीवन तथा लेखक, कविहरू स्तब्ध बने । फलस्वरूप डाकमान राई, दिलुसिंह राईले त्यही साल पैढोको सवाई लेख्ने काम गरे । यसरी दार्जिलिङको भाषा-साहित्यले समाजको चिन्तालाई लेख्ने कार्य यहींबाट शुरू भएको देखिन्छ ।

दार्जिलिङको नेपाली भाषा र साहित्यमा हाजीरमान राईको **मीठा मीठा नेपाली गीत** (दीक्षित: 1977: 124) पनि महत्त्वपूर्ण छ । विभिन्न सामाजिक, प्रणय, मानवीय सम्बन्ध आदिमाथि लेखिएका उनका गीतहरूले नेपाली भाषालाई सरसता र सरलता निश्चय नै दिएका छन् ।

नेपाली भाषामा सवाई, कविता आदि मात्र लेखिएनन् । पादरी गङ्गाप्रसाद प्रधानले सन् 1901 देखि 32 वर्षसम्म **गोर्खे खबर कागत्** सम्पादित र प्रकाशित गरे साथै उनीद्वारा नै संग्रहित 1438 वटा **उखानको पोस्तक** र उनैद्वारा अनुदित कृतिहरू दार्जिलिङका उपज हुन् (प्रधान: 2008: 3) । पादरीका यिनै कार्यहरूलाई संकीर्ण धार्मिक अन्धताका घेरोभित्र राखेर पछिका साहित्यकारहरूले नगण्य ठान्ने परम्परा बसाले । तथापि भारतको नेपाली भाषाको गद्यरूपलाई विकसित बनाउनमा यिनको योगदान महत्त्वपूर्ण छ । ख्रीष्ट समाजका अनुयायीहरूले समाज-कार्यका उद्देश्यले गर्नेगरेका यी महत् कार्यलाई कतिपय कारणवश भाषिक शुद्धा-शुद्धी र व्याकरणिक त्रुटि औल्याएर सधैं होंच्याउने कार्य भइरह्यो । सन् 1821 मा व्याप्टिस्ट मिसन अर्वाइबल सोसाइटीले **बाइबल** नेपालीमा अनुवाद गरेर छाप्यो (प्रधान: 2008: 22) । पादरी गङ्गाप्रसाद प्रधानको महत् कार्यले तत्कालीन **काशी भाषे** समूहको निर्देशन तथा होर्च्याई सहनु

परचो भने आजसम्म पनि उनले प्रचार-प्रसार गर्न खोजेका भाषालाई वर्तमान व्याकरणको नियम र शब्दकोशको मानदण्डले हेरेर अशुद्ध भाषा मान्नेहरू कम छैनन् । यस्तो पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोणले हेर्दा दार्जिलिङमा सवाई लेखक, कवि र गीत कथकेहरूकै समानन्तर ख्रीष्ट समाजका अनुयायीहरूले गरेका भाषा सेवा र योगदानको उचित कदर नभई नेपाली भाषा-साहित्यको एउटा ठूलो अध्यायलाई बिर्सिनु जस्तो पनि हुन्छ ।

कालिम्पोङ

दार्जिलिङ क्षेत्रमा पर्ने कालिम्पोङ पनि अघि सिक्किमकै भू-भाग थियो । सन् 1865 को सिंचुला सन्धि अनुसारले भुटानले सिक्किमबाट कब्जा गरी राखेको आजको कालिम्पोङ, डुवर्स आदि अंग्रेज-भारतलाई सुम्पिनु पर्यो (प्रधान: 2008: 5) । केही समय कालिम्पोङलाई डुवर्ससँग गाभेर राखियो । सन् 1866 मा यसलाई दार्जिलिङमा मिलाइयो । सिक्किम, दार्जिलिङमा सम्मिलित कालिम्पोङमा स्वाभवतः अघि नै नेपालीहरू पुगिसकेका थिए । त्यहाँ उनीहरूको समाज थियो । भाषा-साहित्यगत चहलपहल कालिम्पोङमा अघि नै शुरू भइसकेको थियो ।

डुवर्स

दार्जिलिङ क्षेत्रको अर्को महत्त्वपूर्ण स्थान डुवर्स हो । पूर्वमा सुनकोश नदी, पश्चिममा टिस्टा नदी, उत्तरमा दार्जिलिङ जिल्ला र भुटान अनि दक्षिणमा जलपाइगुडी जिल्लाको समतल भूभागले घेरिएको क्षेत्रलाई डुवर्स भनिन्छ । नेपाल, कालिम्पोङ, सिक्किम, दार्जिलिङ, जलपाइगुडी, असम अनि भुटानको निम्ति आवागमन गर्न सकिने सजिलो क्षेत्र भएको हुनाले यस भूभागलाई डुवर्स भनिएको भन्ने अभिमत धेरैको छ (प्रधान: 2008: 16) ।

डुवर्सको भौगोलिक अवस्था, जलवायु एवं मलिलो माटो चियाखेतीको उपयुक्त भएकाले चनाखा अंग्रेजहरूले सन् 1774 देखि डुवर्सका भेकमा चियाका बिरुवा रोप्न (प्रधान: 2008: 76) थाले । यही चियाको खेती सँगसँगै नेपालीहरूको बसोबासोमा पनि यहाँ वृद्धि भएर गएको देखिन्छ (प्रधान: 2008: 16) ।

भाषा र साहित्यको विस्तार एवं विकासमा डुवर्सको भूभागले शुरूबाट महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह गरेको छ । आज पनि डुवर्स क्षेत्र भाषा साहित्यको उत्थानमा अद्यावधिक लागिपरेकै छ ।

भारतको पूर्वोत्तरमा नेपाली भाषा-साहित्यको विस्तार

नेपालीहरूको अधिक जनसंख्या भएको अर्को क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत पनि हो । अधिको बृहत्तर अविभक्त असम हाल टुक्रिएर स-साना राज्य – असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागाल्याण्ड, त्रिपुरा, मिजोराम र मणिपुरमा बाँडिएको छ । भौगोलिक दृष्टिकोणले यी राज्यहरू भारतको पूर्वोत्तर क्षेत्रमा एकैपट्टि परेको हुनाले र यस भेगमा बसोबासो गर्ने नेपालीहरूको उन्नति र अवनति ; समस्या र सम्पन्नताको कुरो उठ्दा असम मात्र नभनेर पूर्वोत्तर भारत अथवा अधिको बृहत्तर असम सम्पूर्णलाई लिने आग्रह विद्वान्हरूको रहेको छ ।

पूर्वोत्तर राज्यहरूमा नेपाली भाषी जनसंख्याको अवस्थान सन् १८२८ भन्दा अघिदेखि भएको प्रमाण पाइन्छ । 'सन् १८१४ देखि ब्रिटिशले "गुर्खा" भनी आफ्ना सैन्यमा भर्ना गरेका धेरै नेपाली भाषीले १८२८ मा असम विजयमा भाग लिएका थिए । तिनमा कोही त्यहीँका रैथाने भए अनि पुस्तौँदेखि तिनका सन्तानहरू असममा बसोबास गर्दैछन् (प्रधान: १९९१: ६) । सन् १९६४ को असमको भूमि र राजस्व ऐनका धारा १६० र १६२ ले "नेपाली खेताला वस्तु-चराउने"हरूको स्वार्थसुरक्षा गराउन

उनीहरूलाई पछौटे वर्गको श्रेणीमा दर्ता गरेको छ। “पूर्वोत्तर भारतमा किसान र सैनिक, चियावारी, तेल र कोइलाखानीमा मजदूर काम गरी राष्ट्र निर्माणको काममा आफ्नो योगदान दिने भारतीय नेपालीको संख्या धेरै छ। वास्तवमा छरिएर बसेका तिनीहरूको संख्या सिक्किम र दार्जिलिङका नेपाली भाषीको मोठ संख्या भन्दा धेरै बेसी छ (प्रधान: १९९१: ७)।

असमका नेपालीहरूको आगमनका प्रत्यक्ष र परोक्ष कारणहरू निम्न प्रकारका रहेका देखिन्छन्।

- सन् 1824–1833 मा अंग्रेजहरूले असमका जयन्तियाका राजालाई जितेर चेरापुंजी कब्जा गर्दा **सिल्हेट लाइट इन्फेन्ट्री**—मा गोरखाहरू नै थिए (उपाध्याय: 13)। असमलाई अंग्रेजले आफ्नो अधीनमा लिँदा गोरखालीहरू नै प्रथम त्यहाँ पुगेका हुन्। नेपालबाट यता आएका अधिकांश मानिसहरू विभिन्न काम कुरातिर नभए सैनिक सेवा तिर संलग्न भई रहन लागे (के. एण्ड जे. हिल्स : 1901: 25)।
- धार्मिक आस्था र आचरण एउटै भएकोले तथा हिन्दू देवी देवताका मन्दिर वा स्थानतिर आवागमन एकैनासले हुनेगरेको कारण पनि असममा नेपालीहरूको संख्या बढ्दै गएको कुरो विद्वानहरू स्वीकार्छन्।
- नेपाल र असमको प्राचीन सम्बन्धलाई यी दुई देश बीच राजपरिवारमा हुनेगरेको तात्कालीन वैवाहिक सम्बन्धले पनि अधिक आकर्षणीय बनाएको हुनसक्छ (क्षत्री: 2002: 2)। ती वैवाहिक सम्बन्धहरू निम्नलिखित थिए — जयदेव मल्ल र कामरूप राज्यकन्या राज्यमती ; कोच वंशीय राजा विश्वसिंह र नेपाल राजकन्या रत्नकान्ती, अन्य अन्य।
- पुरानो कामरूप राज्यका पालादेखि नै यहाँ नेपालीहरूको आवागमन शुरू भएको पौराणिक तथ्यहरूले देखाउँछन् भने 1826 को **यान्डाबु सन्धिपछि** त बृहत् मात्रामा असम भेकमा नेपालीहरू आउन थालेका कुरा इतिहासले सिद्ध गरेको छ (उपाध्याय: 2004: 13)।

असममा थात—वास बसाएर जीवन बिताउने नेपालीहरूको सामाजिक जीवनको स्तर चार प्रकारको रहेको तथ्य विष्णुलाल उपाध्यायले बताएका छन् (उपाध्याय: 13)। ती हुन् —

- (1) सिपाही
- (2) ग्रेजियर
- (3) कृषक
- (4) लेबर

यसरी चारवटा स्तरमा हाँगिएर नेपाली समाजले आफूलाई स्थापित गराउन अनेक क्षेत्रमा संघर्ष निश्चय गर्नुपरेको छ। भाषा संघर्षको माध्यम हो र साहित्य संघर्षको आत्मवृत्तान्त हो। सिपाही, गौपालक, कृषक तथा मजदूर भएर जीवन बिताउँदै बृहत्तर नेपाली समाजको सदस्यको रूपमा कसै न कसैले आफ्नो भाषाको रेखदेख गरेको हुनाले नै नेपाली सिंगो जातिको सुरक्षा उनीहरूले पाएका छन्।

कुनै पनि भाषाको विकास साहित्य-लेखनको माध्यमबाट हुने गर्दछ। साहित्य निश्चित भाषिक-समुदायको अभिव्यक्ति हो। कला सिर्जना र व्यवहार सम्पन्न गराउन अभिव्यक्तिको माध्यमको रूपमा भाषा अपरिहार्य सम्पदा हो। पूर्वोत्तर भारतको समाज र परिवेशमा नेपाली भाषाको विकासको इतिहासलाई हेर्नुपर्दा यिनै सन्दर्भ टड्कारो रूपमा देखापर्दछन्। साहित्येतिहासकारहरूले विशेषतः माध्यमिककाल, प्राकआधुनिककाल प्रवर्तनकाल/विकासकाल आदि नामले उल्लेख गरेका सन् १८८७-१९१३ मध्यको समयभित्र पूर्वोत्तर क्षेत्रबाट संख्याधिक रूपमा साहित्य-रचना भए। माध्यमिककालको शृङ्गारिक धाराले विकासित बनेर **लहरी साहित्य** को रूप प्राप्त गर्नमा पूर्वोत्तरको भूमिलाई चुनेको छ। भारतमा सर्वप्रथम लोकप्रिय साहित्यलेखनको **लहरी** संस्करणको सुरुआत तुलाचन आलेको **मणिपुरको लडाजीको सवाई** (सन् १८६५) बाट भएको हो भन्ने तथ्यमा कसैको द्विमत छैन। यसै साल छापिएको धनवीर भण्डारीको **अब्बर पहाडको सवाई**, गजबीर राणाको **नागाहिलको सवाई** आदि रचनाले पूर्वोत्तरमा साहित्य लेखनको परम्पराको लेखो तानिएको छ। सन् १८६५ देखि आजसम्म

अनवरत् रूपमा पूर्वोत्तर भारतबाट नेपाली साहित्य लेखन र रचना प्रक्रिया जीवित रहेको पाइन्छ। साहित्य लेखनको मूल प्रवृत्तिलाई प्रभावित पार्ने प्रतिनिधि तथा प्रतिभाशाली लेखकहरू छन्। साहित्य र समाज अन्योन्याश्रित अवलम्ब हुन्, कुनै पनि जाति तथा समुदायको विकासप्रक्रिया अधि बढ्नको निम्ति साहित्यकार लेखकहरू समाजकर्ता समाजसेवक पनि बन्नुपरेको छ। शिक्षा, धर्म, नैतिकता, प्रशासन, सञ्चार तथा प्रबन्धन क्षेत्रसँग जोडिएर यिनै साहित्यकार लेखकहरूले आफ्नो समुदायलाई सुरक्षित राखेको प्रसङ्ग र घटनाहरू उल्लेखनिय छन्। भारतमा नेपाली भाषा मान्यता अभियानमा सुरूबाट नै पूर्वोत्तरको सक्रिय भूमिका रहीआएको छ। सन् १९४२ देखि स्पष्टरूपमा जातीय हीत रक्षार्थ गठित सामाजिक सङ्गठन तथा तदनन्तर राजनैतिक दलको रूपमा परिवर्तित उल्लेखनीय जातीय संस्थानमा पूर्वोत्तर भारतको समाजले अतुलनीय योगदान दिएको इतिहाससिद्ध छ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनमा एक सुसंगठित जाति र समुदायले आफ्नो साहभागिता जगाउनु पूर्व आफ्नो जातिको आत्मनिर्णायको स्थिति आर्जन गराउन पूर्वोत्तरबाट नै राजनैतिक सचेत व्यक्तिहरू अधि आए। पुष्पालाल उपाध्याय देखि लिएर प्रसादसिंह सुब्बासम्माका नाम उच्चारण गर्दा पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली जाति र समाजको विकास तथा दरिलो अवस्थितिको कैग्न हुनुसक्ता।

साहित्य क्षेत्रमा हरिप्रसाद गोर्खा राई, लीलबहादुर क्षेत्री, हरिभक्त कटुवाल, के बी नेपाली, युद्धवीर राणा, अविनाश श्रेष्ठ अनिरुद्ध गौतम, विक्रमवीर थापा, शान्ति थापा आदि धेरै साहित्यकारले प्रवृत्तिगत विकासका दिशा निर्धारण गरेका पाइन्छ।

साहित्य अकादमी, नयाँ दिल्लीबाट प्रतिवर्ष प्रदान गरिने अकादमी पुरस्कार प्राप्तकर्ता साहित्यकारमध्ये पूर्वोत्तर क्षेत्रबाट पनि धेरै नाम लिन सकिन्छ। अनि ती पुरस्कार प्राप्तकर्ताहरू निर्विवाद साहित्य स्रष्टाका रूपमा परिचित छन्।

पूर्वोत्तर भारतबाट साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्तकर्ता साहित्यकारहरूको सूची

१. लीलबहादुर क्षेत्री, सन् १९८७
२. पुष्पालाल उपाध्याय, सन् १९८८
३. विक्रमवीर थापा, सन् १९९९
४. गोपीनारायण प्रधान, सन् २०१०
५. गीता उपाध्याय, सन् २०१६

नेपाली साहित्यको विकासमा समय-समयमा देखापरेका आन्दोलन तथा अभियानमध्ये सर्वाधिक चर्चित एवम् प्रभावकारी आन्दोलन कोलाज आन्दोलन पनि असमबाट सन् १९७९-८० मा कवि अविनाश श्रेष्ठको अगुवाइमा सम्पन्न भयो। यसमा साहित्य लेखनमात्र नभएर समाज, कला, इतिहास र सामाजिक चेतनाको सम्मिश्रण पनि थियो।

सडक नाटक, जात्रा र प्रदर्शनको परम्परामा पनि पूर्वोत्तर भारतको नेपाली समाज स्रष्टा र जनता अधि देखि नै अत्यन्त जागारूक छन्।

सन् १९८० को दशकसम्म भारतमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकासको ऐतिहासिक अध्ययन गर्नुपर्दा पूर्वोत्तर क्षेत्रको साहित्यिक प्रकाशन र गतिविधिको कालक्रमिक सूचना पाउन गारो पर्ने गथ्यो। लेखकहरूको निमित्त प्रथम अड्चनको रूपमा यिनै 'सामग्री' नपाइने भन्न असमर्थता रहेको उल्लेख हुन्थ्यो। अब यस्तो स्थिति छैन। पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा-साहित्य सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्रीको सङ्ग्रहण सुरु भइसकेको अवस्था छ। भीमकान्त उपाध्यायले आफ्नो समालोचना पुस्तक **आँखीझ्यालबाट हेर्दा** (सन्) भित्र सातवटा लेखमा असममा लेखिएका नेपाली साहित्यको क्रम नबिराई, तिथीमिति सहित विवरण र विवेचना गरेका छन्। लक्ष्मीप्रसाद पराजुलीले आफ्नो सानो पुस्तिका **उत्तर-पूर्व भारतीय नेपाली समाज र साहित्य** (सन् १९९५) मा नेपाली समाजको सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितिको ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखि लिएर सामाजिक-साहित्यिक संस्था तथा पूर्वोत्तर क्षेत्रबाट प्रकाशित नेपाली पत्र-पत्रिकाको विवरण लेखेका छन्। छविलाल उपाध्यायले **उत्तर पूर्वाञ्चल भारतीय नेपाली साहित्यको गतिविधि माथि एक दृष्टि** (सन् २०१२) पुस्तकमा पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा, साहित्य, समाज र संस्कृतिको विकासबारे विशद जानकारी दिएका छन्। भवानी अधिकारीको **आँखीझ्यालभित्र मणिपुर** (सन् २०१७) पुस्तकमा पूर्वोत्तर भारतको मणिपुर राज्यमा नेपाली जाति, भाषा, साहित्य, संस्ति र तिनको विकासको इतिहास तथा अवस्थितिबारे सविश्लेषण सूचना राखिएको पाइन्छ। मित्रदेव शर्माको सङ्कलन तथा सम्पादनमा **उत्तर पूर्वाञ्चलका नेपाली साहित्यस्रष्टा र सृष्टिको जन्मानुक्रमणिक सूची** (सन् २०१८ फरवरी) मा प्रकाशित भएको छ। असम नेपाली साहित्य सम्मेलन केन्द्रीय समितिका मूल सचिव रुद्र बरालले पारिचयिकीमा यस पुस्तकलाई साहित्यकार कोश को निर्माणमा एक सराहनीय कार्य भनेर उल्लेख गरेका छन्। यस पुस्तकलाई पूर्वोत्तर भारतको सन्दर्भमा अहिलेसम्मकै एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मान्नुपर्छ। भविष्यत यसमा अझ प्रविष्टि र परिवर्द्धन गर्नमा पूर्वोत्तर समाज सामूहिक रूपमा कटिबद्ध हुने नै छ।

पूर्वोत्तरको सन्दर्भमा भाषा-साहित्य, समाजसंस्कृतिको विकासबारे ऐतिहासिक साहित्यकारहरूले भारतभरि जहाँ जहाँ पुगे त्यहाँ ठूलो स्वरले सुनाए। श्री विद्याधर्म प्रचारिणी नेपाली समिति, बनारसले वर्षौपिच्छे प्रदान गर्ने मदन-स्मरक सम्मान प्राप्त गरि लिखित व्याख्यान दिँदा पूर्वोत्तर भारतका अहिलेसम्म नौजना साहित्यकारहरूले पूर्वाञ्चलमा नेपाली जाति, भाषा, साहित्य, संस्कृति र समाज-विकासका निमित्त गरिएका संघर्षको विवेचनात्मक व्याख्या गरेका छन्। ती लेखहरू **मदन स्मारक सम्मान व्याख्यान निबन्धहरू, भाग-१-** मा प्रकाशित भएको छ।

पूर्वोत्तर भारतबाट मदन स्मारक सम्मान प्राप्त गर्ने साहित्यकारहरूको सूची:

१. गोपीनारायण प्रधान, सन् १९९४
२. हरिप्रसाद गोर्खा राई, सन् १९९६
३. लीलबहादुर क्षेत्री सन् २००१
४. लालुप्रसाद उपाध्याय, सन् २००२
५. के बी नेपाली, सन् २००४
६. मणिसिंह थापा, सन् २००७
७. छविलाल उपाध्याय, सन् २०११
८. टीकाराम उपाध्याय निर्भीक, सन् २०११
९. लोकनाथ उपाध्याय चापागाईँ, सन् २०१२

पूर्वोत्तर भारतको सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक परिदृश्यमा नेपाली जातिको अवस्थाबारे लालुप्रसाद उपाध्यायले *आसामको सामाजिक जनजीवन* लेखमा केही चर्चा गरेका छन्। यस दिशामा विशद् कार्य हुन बाँकी नै रहेको अनुभव हुन्छ।

अन्ततः वास्तवमा नेपालीभाषी जनसंख्या र तिनको नेपाली भाषा भारतको भूराजनैतिक तथा राष्ट्रिय परिचय निर्माण हुने प्रातःकालीन समयदेखि नै संश्लेषित बनेर आएको ऐतिहासिक प्रमाण पाइन्छ। नेपाली भाषाले भारतको समुचित सामाजिक, राजनैतिक विकास र सङ्गठनमा अग्रगामी भूमिका निभाएको छ।

भारतमा नेपाली जातिको ऐतिहासिक स्थिति अवस्थानमा निर्णायक भूमिका पूर्वोत्तर भारतको नेपाली समुदायले निभाएर आइरहेको देखिन्छ। भाषा र साहित्य सदा विकासशील एवम् चलायमान रहने भएकोले पूर्वोत्तरको नेपाली समाज पनि परिवर्तनशील छ तथापि सामाजिक विकासले पनि नेपाली भाषालाई प्रभाव पारेर यसको भारतीयकरण गराउनमा पूर्वोत्तर भारतकै समाजले अन्योन्याश्रित रूपमा अग्रणी भूमिका निभाउन सक्नेछ भन्ने अपेक्ष राखिएको छ।

पाद टिप्पणी :

- 1 इन्द्रबहादुर राई (भूमिका) : माध्यमिक नेपाली व्याकरण: सन् 2006 : पृष्ठ संख्या ग-घ ।
- 2 चूडामणि बन्धु: नेपाली भाषाको उत्पत्ति: चौथो संस्करण, सन् 1990 : पृष्ठ संख्या 2-3 ।
- 3 चूडामणि बन्धु: पूर्ववत्: पृष्ठ संख्या 3 ।
- 4 विकिपिडिया. अर्ग/विकि/हिस्ट्री अन्ड भुटान ।
- 5 एल. एस. एस. ओ'माले : बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : दोस्रो संस्करण : सन् 1999 : पृष्ठ संख्या 20 ।
- 6 कुमार प्रधान : दि गोर्खा कन्क्वेस्ट : 1991: पृष्ठ संख्या 132-141 ।
- 7 एल. एस. एस. ओ'माले : बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, : दोस्रो संस्करण :सन् 1999 : पृष्ठ संख्या 20 ।
- 8 इन्द्रबहादुर राई : नेपाली उपन्यासका आधारहरू : पृष्ठ संख्या 41 ।
- 9 सुनीति कुमार चटर्जी : ल्याङ्ग्वेज एण्ड लिटरेचर्स अन्ड मोडर्न इण्डिया, कोलकाता, सन् 1960, पृष्ठ संख्या ८ र ४६ ।
- 10 घनश्याम नेपाल : नेपाली साहित्यको परिचयात्मक इतिहास : पहिलो संस्करण, सन् २००९ :पृष्ठ संख्या ९४ ।
- 11 कुमार प्रधान : नेपाली भाषाको परिचय अनि संवैधानिक मान्यताको प्रश्न, गान्तोक, सन् 1999, पृष्ठ संख्या ३ ।
- 12 एल एस एस ओ'मेली : दार्जिलिङ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर: सन् 1909, पृष्ठ संख्या ४9 ।
- 13 कुमार प्रधान : पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या ५ ।
- 14 कुमार प्रधान : पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या ६ ।
- 15 कुमार प्रधान : पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या ७ ।
- 16 कुमार प्रधान : पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या ८ ।
- 17 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 1 ।
- 18 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 30 ।
- 19 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 :पृष्ठ संख्या 31 ।
- 20 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008: पृष्ठ संख्या 1 ।
- 21 कमल दीक्षित : बुँङ्गल: दोस्रो संस्करण, सन् 1977 : पृष्ठ संख्या 124 ।
- 22 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 3 ।
- 23 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 22 ।
- 24 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या . 5 ।
- 25 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 16 ।
- 26 गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू, दोस्रो संस्करण, सन् 2008 : पृष्ठ संख्या 76 ।
- 27 घनश्याम नेपाल : नेपाली साहित्यको परिचयात्मक इतिहास : सिक्किम, जनपक्ष प्रकाशन, दोस्रो संस्करण, सन् 1994/1991, पृष्ठ 50 ।
- 27 दयाराम श्रेष्ठ : मोहनराज शर्मा, नेपाली साहित्यको संक्षिप्त इतिहास, काठमाडौं, साझा प्रकाशन, चौथो संस्करण, 2049 संवत्, पृष्ठ 43 ।
- 28 घनश्याम नेपाल : पूर्ववत्, पृष्ठ 50-51 ।

29. घनश्याम नेपाल : पूर्ववत्, पृष्ठ 102 ।
30. घनश्याम नेपाल : पूर्ववत्, पृष्ठ 102 ।(काव्यको परम्परालाई अद्यावधि एक अभिव्यञ्जनाको विधाको रूपमा देख्न पाइन्छ ।
31. डिल्लीराम तिमसिमा : बसिबियाँलो : बनारस, नभसंगम, प्रथम संस्करण सन् 1973 : पृष्ठ 96 ।
32. डिल्लीराम तिमसिमा : बसिबियाँलो, बनारस, नभसंगम, प्रथम संस्करण सन् 1973 : पृष्ठ 96 ।
33. घनश्याम नेपाल : नेपाली साहित्यको परिचयात्मक इतिहास : सिक्किम, जनपक्ष प्रकाशन, दोस्रो संस्करण, सन् 1994/1991 ।
34. डिल्लीराम तिमसिमा : बसिबियाँलो : बनारस, नभसंगम, प्रथम संस्करण सन् 1973 : पृष्ठ 98 ।
35. डिल्लीराम तिमसिमा : पूर्ववत्, पृष्ठ 98 ।
36. डिल्लीराम तिमसिमा : पूर्ववत्, पृष्ठ 98 ।
37. विष्णुलाल उपाध्याय : आसामे नेपाली, पृष्ठ संख्या 13 ।
38. के. एण्ड जे. हिल्स : असम डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स 1901, लुसाई हिल्स : पृष्ठ संख्या पृ. 25 ।
39. लीलबहादुर क्षत्री : असमको नेपाली साहित्य : मदन स्मारक सम्मान, बाराणसीमा प्रस्तुत कार्यपत्र, सन् 2002 : पृष्ठ संख्या 2 ।
40. तेजनाथ उपाध्याय : असममा नेपाली साहित्य : संक्षिप्त इतिहास ; हाम्रो ध्वनि, वर्ष 35, अंक 5, मई 2004 : पृष्ठ संख्या 13 ।
41. विष्णुलाल उपाध्याय : आसामे नेपाली : पृष्ठ संख्या 13 ।
42. मोहन पी. दाहाल : हाम्रो संस्था: एक परिचय : दोस्रो संस्करण : 2009 : पृष्ठ संख्या 30 ।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. इन्द्रबहादुर राई : दार्जिलिङमा नेपाली नाटकको अर्धशताब्दी : साझा पुस्तक प्रकाशन, दार्जिलिङ : प्रथम संस्करण : सन् 1984 ।
2. इन्द्रबहादुर राई (भूमिका), साझा पुस्तक प्रकाशन : माध्यमिक नेपाली व्याकरण : साझा पुस्तक प्रकाशन, दार्जिलिङ: सन् 2006 ।
3. इन्द्रबहादुर राई : नेपाली उपन्यासका आधारहरू : साझा प्रकाशन, काठमाडौं, नेपाल : दोस्रो संस्करण : सन् 1993 ।
4. ईश्वर बराल : (सम्पादक) : सयपत्री : साझा प्रकाशन, काठमाडौं : चौथो संस्करण, 1989 ।
5. एल. एस. एस. ओ'माले : बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : लोगस प्रेस, 4788-90/23, अंसारी रोड, दरियागंज, नयाँ दिल्ली: दोस्रो संस्करण : सन् 1999 ।
6. कमल दीक्षित : बुँइगल : साझा प्रकाशन, काठमाडौं : दोस्रो संस्करण, सन् 1977 ।
7. कुमार प्रधान : दि गाखा कन्क्वेस्ट : अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता: प्रथम संस्करण : सन् 1991 ।
8. कुमार प्रधान : पहिलो पहर ; दार्जिलिङ, सन् १९८१ ।
9. कुमार प्रधान : नेपाली भाषाको परिचय अनि संवैधानिक मान्यताको प्रश्न; गान्तोक, सन् १९९१ ।
10. के. एण्ड जे. हिल्स : असम डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स : लुसाई हिल्स : सन् 1901 ।
11. केदार गुरुङ, उपमान बस्नेत (सम्पादक) : स्रष्टा : प.सि.सा.प. गेजिङ, वर्ष १५, अंक ३४
12. गुप्त प्रधान : धुमिल पृष्ठहरू : गामा प्रकाशन, दार्जिलिङ : दोस्रो संस्करण, सन् 2008 ।
13. घनश्याम नेपाल : नेपाली साहित्यको परिचयात्मक इतिहास ; सिक्किम, जनपक्ष प्रकाशन : दोस्रो संस्करण : सन् 1994 ।
14. घनश्याम नेपाल : श्रद्धाको एक थुँगा फूल, (डा. डिल्लीराम तिमसिना स्मृति ग्रन्थ) : डा. डिल्लीराम तिमसिना स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति, विराटनगर, नेपाल : सन् 2003 ।
15. चूडामणि बन्धु: नेपाली भाषाको उत्पत्ति: साझा प्रकाशन, काठमाडौं : चौथो संस्करण : सन् 1990 ।
16. चूडामणि बन्धु: नेपाली भाषाको उत्पत्ति: साझा प्रकाशन, काठमाडौं : चौथो संस्करण : सन् 1990 ।
17. जनकलाल शर्मा: जोसमनी सन्त परम्परा र साहित्य: रोयल नेपाल एकेडेमी, काठमाडौं, नेपाल: प्रथम संस्करण : सन् 1963 ।
18. डिल्लीराम तिमसिना : बसिबियाँलो : नभसंगम, बनारस : सन् 1973 ।
19. तेजनाथ उपाध्याय : असममा नेपाली साहित्य : संक्षिप्त इतिहास ; हाम्रो ध्वनि : मई 2004 ।
20. दयाराम श्रेष्ठ ; मोहनराज शर्मा : नेपाली साहित्यको संक्षिप्त इतिहास : काठमाडौं, साझा प्रकाशन: चौथो संस्करण, सन् 1992 ।
21. नगेन्द्रमणि प्रधान : डा. पारसमणि प्रधानको जीवन यात्रा : दार्जिलिङ : सन् 1991 ।
22. बाबुराम आचार्य : (सम्पादक) : पुराना कवि र कविता : साझा प्रकाशन, काठमाडौं : सन् 1978 ।
23. मननारायण प्रधान : केही साहित्यिक अध्ययन र मूल्याङ्कन ।
24. मोहन पी. दाहाल : हाम्रो संस्था: एक परिचय : नेपाली साहित्य प्रचार समिति, सिलगढी : दोस्रो संस्करण : सन् 2009 ।
25. लीलबहादुर क्षत्री : असमको नेपाली साहित्य : मदन स्मारक सम्मान, बाराणसीमा प्रस्तुत कार्यपत्र : सन् 2002 ।
26. विष्णुलाल उपाध्याय : आसामे नेपाली : भानु : सन् 1971 ।
27. शरदचन्द्र शर्मा (भट्टराई) : नेपाली साहित्यको इतिहास (माध्यमिक काल) : काठमाडौं, त्रिभुवन विश्वविद्यालय : प्रथम संस्करण : सन् 1981 ।
28. सुनीति कुमार चटर्जी : ल्याङ्ग्वेज एण्ड लिटरेचर्स अन्ड मोर्डन इण्डिया, कोलकाता, सन् १९६० ।

कार्यपत्र/

पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली लोकसाहित्यको अध्ययन र विकास एक पर्यवेक्षण

प्रस्तोता - डा० खेमराज नेपाल

kherane@gmail.com

M. No. 8638267848

भारतका पूर्व प्रान्तमा रहेको विश्वकै एक उल्लेख्य नदी ब्रह्मपुत्र उपत्यकाका चारै पटि भनी विस्तारित ससाना राज्यहरूको समष्टिलाई नै पूर्वोत्तर भारत अथवा उत्तर-पूर्वाञ्चल भनिन्छ। यहाँ संलग्न रहेका सात राज्यमा असम प्रमुख छ र यसका छिमेकी राज्य हुन् मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोराम, अरुणाचल प्रदेश र नागालेण्ड । यद्यपि भारतसरकारले गठन गरेको पूर्वोत्तर परिषदमा (North-East Council) सिक्किमलाई पूर्वोत्तर राज्यभित्र गाभिएको छ तापनि साहित्य-संस्कृति आदिको इतिहासमा त्यसलाई पूर्वोत्तरभित्र गाभिएको नहुनाले यहाँ पनि त्यसै गरिएको छ।

अंग्रेजको शासनकालीन भारतमा आजका पूर्वोत्तर भेकका प्राय सबै राज्यहरू असमभित्र समेटिएका थिए तापनि विगत ई.1972 देखि ती सबै राज्यहरू स्वतन्त्र राज्यकारूपमा मर्यादित छन्। माथि उल्लेख गरिएका प्राय सबै राज्यहरूमा नेपालीहरूको बसोबासो पाइन्छ तापनि असममा मात्राधिक्य रहेको कुरो यहाँ मननीय छ। त्यसका साथै यी सबै राज्यहरूमा एकै किसिमको जनजीवनको झलक विराजित छ।

लोकसाहित्यको परिचय र यसका केही विशेषताहरू:

लोकसाहित्य भनेको जनजीवनमा जन्मदेखि मृत्युसम्म प्रचलित आचार-संस्कार, उत्सव-पर्व आदिसँग सम्बन्धित र मौखिक परम्परामा आश्रित गीत, गाथा, कथा, नाटक, उखान-तुक्का आदिको समष्टि हो। लोकजीवन अथवा जनजीवनमा मुखमुखै पुस्तोपुस्ता प्रचलनमा रहनु यसको विशेषता हो। यहाँनेर के कुरो मननीय छ भने नेपाली जनजीवनमा अथवा भनी नेपाली जाति गठनको प्रक्रियामा जसरी खस-किरात-आर्य आदि विभिन्न नृ-समुदाय (जनगोष्ठी) को संमिश्रण भएको छ, त्यसरी नै लोकसाहित्यको गठन र विकासमा पनि यी विभिन्न जनसमुदायका सांस्कृतिक विशेषताहरूको झलक पाइन्छ। भू-प्रकृति अथवा भौगोलिक स्थितिमा जनजीवन आश्रित हुनाले विभिन्न प्राकृतिक परिवेश अथवा मौसममा रहेको लोकजीवनमा प्रचलित लोकसाहित्यका विभिन्न बुँदामा केही अन्तर पनि हुन सक्छ। त्यसैले आज पूर्वाञ्चल भारतका विभिन्न ठाउँमा पाइने लोकसाहित्यका यी बुँदाहरूमा र अन्य ठाउँका बुँदाहरूमा केही फरक हुनु स्वाभाविक मानिन्छ। एउटा भाषिक एकाइको जनसमुदायको मौखिक भाषामा आश्रित हुनाले लोकसाहित्यमा स्थानीयताको प्रभाव पनि रहेको पनि अनुभव हुन्छ। लोकसाहित्यमा पाइने यी

सामान्य विशेषताहरूको उल्लेख पछि अब पूर्वाञ्चलमा पाइने लोकसाहित्यका विभिन्न उपादानहरूमाथि संक्षेपमा चर्चा गरिने छ।

लोकसाहित्यको सेरोफेरो र वर्गीकरण :

सामान्य रूपमा नेपाली जनजीवनमा पाइने प्राय सबै प्रकारका बुँदाहरू नै यस भेकको नेपाली जनजीवनमा पनि पाइन्छ भन्नु पर्दछ। यी बुँदाहरूको वर्गीकरण यसरी गर्न सकिन्छ :

1. लोकगीत, 2. लोकगाथा, 3. लोककथा, 4. लोकनाटक, 5. उखान-तुकका, प्रवाद-प्रवचन अथवा लोकोक्ति, 6. लोकमन्त्र, 7. अन्यान्य

1. लोकगीत : “चारजात र छत्तिस वर्ण” भन्ने उखानको वाच्यार्थको प्रासङ्गिकता आजको समाज व्यवस्तामा पाइँदैन तापनि उखानको अर्थमा सधैं व्यञ्जना वृत्तिको प्राधान्य रहेको कुरालाई ध्यानमा राखी के भन्न सकिन्छ भने “चारजात र छत्तिस वर्ण”ले भरिएको नेपाली जनजीवनमा पाइने लोकसाहित्यका विभिन्न उपादानहरूमा सबैभन्दा जनप्रिय र विस्तृत उपादान हो लोकगीत। जीवनका विभिन्न परिस्थितिमा लोककविका मानसपटबाट निस्किएर मौखिकरूपमा समाजमा जुगजुगान्तरसम्म प्रचलित रहेका नाना प्रकारका गीतलाई लोकगीत भनिन्छ। नेपाली लोकजीवनमा पाइने लोकगीतलाई तिनका विषयवस्तुको आधारमा विभिन्न प्रकारमा भाग गरिएको छ। अध्ययनको सुविधाका लागि तिनको उल्लेख यस प्रकारले गरिएको छ :-

(क) संस्कार सम्बन्धी गीत : जन्म-मृत्यु-विवाह वा अन्यान्य संस्कार सम्बन्धी अनुष्ठानमा गाइने यस्ता गीतलाई संस्कार सम्बन्धी गीतमा राखिएको छ। यस विधा अन्तर्गत पर्ने केही गीत हुन् - सिलोक, कवित्त, माँगल, रत्यौली र खाँडो।

सिलोक : नेपाली जनजीवनमा विवाह संस्कार अन्तर्गत बेहुलीका घरमा जन्ति पुगेपछि वरपक्ष र बधूपक्षका बीचमा क्रमैसँग रामायण-महाभारत अथवा अन्य कुनै आख्यानपरक सिलोकहरूको वाचन प्रतियोगितालाई सिलोक भनिन्छ। वर र बधूपक्षका वाचकहरूले पालैसँग कुनै आख्यान-उपाख्यानका सिलोक वाचन गरी बिहेको यज्ञानुष्ठान रमाइलो पारी रात छर्लङ्ग उज्यालो पारेको हामी सबैले देखेका छौं। कथा वाचनका साथै सिलोकमा छेडखान पनि गरेको देखिन्छ। जस्तै :

“अकासमा उड्ने चिल-गिद्ध बरिलै भुँड भुँडमा उड्ने रूपी।

मेरा सिलोकको उत्तर नदिए उखल्छु तिम्रो टुपी॥”

कवित्त : सिलोक झैं कवित्त पनि वरपक्ष र बधूपक्षका बीचको कविता वाचनको होडबाजी अथवा प्रतियोगिता हो। यहाँ पनि दुबैपक्षका बीचमा छेडखानी चलेको देखिन्छ र त्यसरी नै सारा रात यज्ञमण्डप रमाइलो पारिन्छ। एक उदाहरण :

“हैं जी सुन तव भाइ मुखिया

सुने पनि सुन् नसुने पनि नसुन्....

बरमपुत्र(ब्रह्मपुत्र) पारी काजिरडा जङ्गल

नेपालीहरूले त्यतै देख्ये मङ्गल -

हैं जी.....”

माँगल : विवाह, उपनयन आदि संस्कारका कुनै पनि शुभ मुहूर्तमा गाइने माङ्गलिक गीतलाई माँगल अथवा मङ्गल गीत भनिन्छ। माँगल स्त्री-प्रधान अनुष्ठान हुनाले नै होला माँगल गाउने स्त्रीहरूलाई “मङ्गलेनी” भनिन्छ। कसारको पिठो भुट्ने, बेउली निकाल्ने आदि अनुष्ठान विशेषमा माँगल गाएको सुनिन्छ। जस्तै :

“अक्कासकी दिदै ज्यू ता पतालैकी बुनै हो-
कैसेमा होला दिदै-बुनै तिम्रो हाम्रो भेट।।”

रत्यौली : बेहुलो अन्माएर लगेपछि बेहुलाका घरमा त्यस रात स्त्रीहरूले मात्र गर्ने नृत्य-गीतात्मक र रति-रागारात्मक अनुष्ठान हो रत्यौली। जस्तै :

छक्क छक्क रेल पुग्यो हारमती।

शिवजीलाई मनपन्यो पार्वती।।

खाँडो : विवाह अनुष्ठानको एक उल्लेखनीय र रोचक कार्यक्रम हो खाँडोजगाउने पर्व। संस्कृत खड्गबाट बनिएको खाँडो अथवा खुँडो शब्द उही हतियारको प्रतीक हो र यस अनुष्ठानमा खाँडोको पूजा गरी बरपक्षका कुनै जानकार व्यक्तिद्वारा निश्चित प्रकारको बीरगाथा गाइन्छ। खाँडो वास्तवमा एक बीरगाथा भए पनि विवाह संस्कारमा अनुष्ठित गरिएको हुँदा यसलाई संस्कार मूलक लोकगीतमा राखिएको हो।

(ख) चाडपर्व अथवा व्रत-उत्सव सम्बन्धी : नेपाली जनजीवनमा ‘बाह्र मैनामा तेह्र पर्व’ भन्ने त उखानै छ - जसले यस लोकजीवनमा रहेको उत्सव-पर्वको आधिक्यलाई स्पष्ट पारेको छ। यस उपशीर्षक अन्तर्गत केही गीत हुन् : देउसी, भैली/भैलो, मालसिरी, साँगिनै/साँगिनी, तीजको गीत, फागु गीत, डम्फुगीत, कीर्तन-भजन आदि। यी सबै विधाको उदाहरण यहाँ प्रस्तुत गर्दा विस्तृत हुनाले यहाँ केही विधाको मात्र उल्लेख गर्न खोजिएको छ।

देउसी : हलीतिहारको दिनदेखि बालक अथवा पुरुषहरूले दलबद्ध रूपमा खेलिने एक मागन गीतको अनुष्ठान हो देउसी। यो एक पुरुष प्रधान अनुष्ठान हो। यहाँ एक भट्याउने हुन्छ। भट्याउनेले “ झिलिमिली झिलिमिली ” भनेपछि सबैले एकै स्वरमा “ देउसिरे” भन्दछन्। देउसे दललाई घरपटी अथवा घरपतिले सिधा दिन्छन् भने देउसेले घरपतिलाई आसीक दिएपछि देउसी सकिन्छ।

भइली : देउसी झैं भइली पनि गाईतिहारे औंसीको साँझ घरघरै गई नारीजातिले गाइने एक मागन गीतको अनुष्ठान। भैली खेल्ने(गाउने) हरूलाई भैलेनी भनिन्छ। यिनीहरूलाई पनि सिधा दिइन्छ र सिधा ल्याउने घरपतिलाई आसीक दिई भैली समाप्त गरिन्छ। केही उदाहरण :

“ भैलेनी आयौं आँगन बडारी-कुँडारी राखन।

ए... औंसीबारो गाईतिहारो भैली।।”

“हरिया गोबरले लिपेको माली बाछी पुजेको
ए... औंसीबारो गाईतिहारो भैली।।”

मालसिरी : राग “मालश्री”बाट उत्पन्न मालसिरीलाई भगवती दुर्गादेवीको स्तुतिपरक भक्ति गीत हो भन्नु पर्दछ। दसैंमा विशेषतः नौरथादेखि नै मालसिरी गाउने चलन थियो तापनि हिजो आज यस भेकमा मालसिरी गाउने चलनको अभाव अनुभव हुँदै आएको छ।

सँगिनै/सँगिनी : साथी-संगीहरू भेला भएर गीतका साथ घुमी घुमी सामान्य नृत्य गर्ने स्त्री-प्रधान अनुष्ठान हो सँगिनी। सँगिनीमा नारीजीवनका विभिन्न पक्षको बिम्बको झलक पाइन्छ।

तिजको गीत/तिजे गीत : भदौ शुक्ल तृतीयाको दिनलाई तीज भनिन्छ जो नेपाली जनजीवनमा पाइने एक उल्लेखनीय चाड हो। यस पर्वमा विबाहित छोरी-चेलीलाई माइत ल्याउने चलन छ। यस पर्व उपलक्ष्य धेरै गीत गाएको सुनिन्छ जहाँ विवाहित नारी-जीवनका विभिन्न पक्षको परिचय पाइन्छ।

यस अतिरिक्त कीर्तन, भजन, तामाङसेलो आदि विभिन्न प्रकारका गीतहरू यस भेकको नेपाली जनजीवनमा प्रचलनमा पाइन्छन्।

(ग) **श्रमगीत :** मानिसले जीवनका उकाली-ओह्यालीमा कहीं शारीरिक र कहीं मानसिक खोराक अनुसार विभिन्न प्रकारको श्रम गरेको हुन्छ। श्रम गर्दा गर्दै थाकेको शरीरलाई विनोदनको माध्यममा पुनर सक्षम पार्ने उद्देश्यले मेला-पात, दाउरा -घाँस आदिमा गएका खेताला-गोठालाले गाएका यस्ता गीतलाई श्रमगीत भनिन्छ। यस विधा अन्तर्गत पर्ने गीतहरू हुन् : असारे (रसीया), मङ्सिरे, दाइँगीत, धाननाच(पालम), फावर गीत आदि। यहाँ यी सबै विधाको उदाहरण प्रस्तुत नगरी केवल दाइँगीत र धाननाचको उदाहरण प्रस्तुत गर्ने जमर्को गरियो :

दाइँगीत : खलामा गोरु घुमाएर धानको दाइँ गर्दा गाइने गीतलाई दाइँगीत भनिन्छ।

“ढाङ ढपेरी बरदो (<बलिर्बर्द = गोरु) हो ढाङ ढपेरी।

आजको दाइँ बरदो हो भोलि त सबेरी।।

हाम्रा बरदोको बरदो हो कैलासमा वास।

सयमुरी झरुवा बरदो हो बीस सयको रास।।”

धाननाच अथवा पालम : श्रमगीतको एक उल्लेखनीय विधा हो धाननाच। यद्यपि यहाँ नृत्यको प्रधान्य रहन्छ तैपनि यसको मुख्य उद्देश्य धान झार्न गरिएको श्रम नै हो भन्नु पर्दछ। यस गीत-नृत्यात्मक अनुष्ठानमा स्त्री-पुरुषले हातेमालो गरी सारा रात धानको थुप्रामा नाच्ता यसरी गाएको सुनिन्छ :

“नाङ्लोलाई होइन चाल्नी है

मङ्सिर मैनाको थाल्नी है

परेवा पङ्खी सातजोडी

नाचिसो राखौँ हातजोडी।”

अवश्य, हिजो आज यस्तो चलन प्राय हराउँदै जाँदै छ।

(घ) ऋतु सम्बन्धी गीत : प्रकृतिको परिवर्तन अनुसार वर्षलाई विभिन्न महिना र ऋतुमा विभाजन गरेको कुरो पनि गीतको माध्यममा व्यक्त गरिएको छ। यस्ता केही गीत हुन् : बाह्रमासे गीत, जाडो सम्बन्धी गीत आदि। बाह्रमासे गीतमा बाह्र महिनाको विशेषता व्यक्त भएको हुन्छ भने जाडो सम्बन्धी गीतमा त्यसै गरी विभिन्न महिनामा जाडोको मात्राको जानकारी पाइन्छ। जाडो सम्बन्धी एक गीतको नमुना यस्तो छ :

“भदौको जाडोले बाँधो बुटी असौजको जाडो जुरूकै उठी।
कात्तिकको जाडो लाँहासाँहा, मङ्सीरको जाडो खेतमा ।
पूसको जाडोले हातगोडा कामे, माघको जाडोले मुटु छामे।
फागुनको जाडोले राख्यो मान, चैतको जाडोले समात्यो कान।
बैसाखको जाडो रुनारानी, जेठको जाडो कुनाकानी।
असारको जाडो पानी मुनि, साउनको जाडो कुरा न कानी।।”

(ङ) विविध लोकगीत : वर्षका विभिन्न समयमा र विभिन्न काल-क्षणमा गाउन सकिने यस्ता गीतलाई यस शीर्षकमा गाभिएको छ । जस्तै : झ्याउरे, जुवारी, गोठाले गीत, बाल गीत, झुल्लरी गीत (लोरी) आदि।

झ्याउरे : नेपाली लोकगीतको परिसर व्यापक भए पनि यी विभिन्न गीतहरू कुनै न कुनै अनुष्ठानसँग सम्बन्धित रहेछन् भन्ने कुरो हामीले उल्लेख गरिसकेका छौं। तर, यहाँनेर मननीय कुरो के छ भने माथिका विधा अन्तर्गत जम्मै गीतहरू र यहाँ अन्तर्भूत नभएका अन्यान्य गीतहरूको मूल बृक्ष हो झ्याउरे। त्यसैले छोटकरीमा के भन्न सकिन्छ भने माथि देखाइएका विधागत र यी विधाबाहिर रहेका जम्मै गीतहरू झ्याउरे कै उपज हुन्। अनि फेरि नेपाली लोकगीतको मूल बृक्षस्वरूप झ्याउरे शब्द एकाधिक अर्थको बोधक हो। यस शब्दले कुनै गीतलाई बुझाउनुको साथै त्यस गीतको लय, छन्द अथवा भाकालाई पनि बुझाउँछ। यस छलफलको अन्तमा के भन्न सकिन्छ भने शास्त्रीय राग-रागिनी अथवा ताल-मानका बाहिर रहेका लोकजीवनका जम्मै गीत-गाथा नै झ्याउरेका अन्तर्भूत हुन आउँछन्।

माथि देखाइएका अनुष्ठानपरक लोकगीतहरू झ्याउरेकै अन्तर्भूत भए पनि तिनको परिवेशन निश्चित संस्कार अथवा उत्सव-पर्वमा मात्र केन्द्रित हुन्छ। तर, विधाबाहिरका अन्यान्य केही गीतहरूलाई बाह्र महिना मुक्तरूपमा परिवेशन गर्न सकिन्छ। त्यसैले विधामुक्त रूपमा परिवेशन गर्न सकिने झ्याउरे गीतको चर्चा हामीले यहाँ प्रस्तुत गर्ने जमर्को गरेका छौं।

गीतलाई परिवेश्य कला भनिन्छ। त्यसैले यसको परिवेशनमा वाद्य र नृत्यको पनि साहचर्य हुन्छ। वाद्य र नृत्यसाथ परिवेशित गीतलाई सङ्गीत भनिन्छ। अनुष्ठानपरक गीत अथवा अनुष्ठान मुक्त गीतको परिवेशनमा परिवेश अथवा परिस्थिति अनुसार वाद्य र नृत्यको संयोग गर्न सकिने कुरो पनि यहाँ विवेच्य हुन आएको छ।

प्रसङ्गानुसार के पनि उल्लेख्य छ भने लोक लय अथवा झ्याउरे छन्द आज लोकगीत अथवा लोकसिंहत्यमा मात्र सीमित रहेको छैन र रहन सक्तैन भन्ने कुरो महाकवि देवकोटाको मुनामदनले विगत शताब्दीमै प्रमाणित गरिसकेको छ। यसबाट के पनि भन्न सकिन्छ भने लोकसाहित्य र शिष्टसाहित्य सधैं एकअर्काका परिपूरक र अन्योन्याश्रयी हुन्।

झ्याउरे गीतको विशेषता : झ्याउरे गीत दुइ प्रकारले गाउन सकिन्छ-थेगा लगाएर अनि थेगा नलगाई। कुनै गीतको पङ्क्तिका बीचमा प्रयोग गरिने कुनै अर्थपूर्ण अथवा निरर्थक पद अथवा पदावलीलाई थेगा भनिन्छ।

थेगामुक्त केही गीतका बुँदाहरू यहाँ उल्लेख गरियो :

- “धानको बालो आलिमा नुइजाने ।
पर्ख साइँली मै पनि उँइ जाने॥”
“गाईको बाछो चरनमा चर्देन।
जान्न म त बोलाउनै पर्देन॥”

थेगायुक्त गीतका नमुना

- “भातै र पाक्यो ज्यान गुदु गुदु तिहुन त करेला।
कान्छीका आँखा ज्यान गुदु गुदु झिम्क्याउने परेला॥”

यो गीतमा पाइनएको ‘ज्यान गुदुगुदु’ लगायत अन्यान्य गीतमा पाइने ‘कान्छीमट्याइट्याइ’, ‘सुन मेरी निर्माया’ आदि पद वा पदावलीलाई थेगा भनिन्छ। थेगाको प्रयोगले गीत श्रुतिमधुर हुनुको साथै चित्ताकर्षक हुन जान्छ।

बालगीत :

विविध लोकगीत अन्तर्गत उल्लेखनीय विधा हो बालगीत अथवा शिशुगीत। प्रकृतिको घाम-पानीको परिवेश अथवा दसैं आउदाको रमाइलो क्षणको उल्लास आदि पनि बालगीतमा व्यक्तिएको पाइन्छ। जस्तै -

- “घामपानी घामपानी स्यालको बिहे
कुक्कुर जन्ती बिरालो बाहुन
बिरालाले पकाएको सप्पैले खाउन्॥”

- “दसैं आयो
खाउँला पिउँला
काँ पाउँला
चोरी ल्याउँला

हट्ट पापी ! चोर्नु भन्दा परै बसौला।।”

बालख फुल्याउने गीत अथवा झुल्लरी गीत : रुँदै गरेको बालखलाई फुल्याउनु बाबु-आमाको पहिलो कर्तव्य हो। त्यसैले उनीहरूले कहिले कोक्रामा हालेर अथवा कहिले काखमा कोल्थ्याएर कुनै गीतको भाका अथवा स्वरमा केही गाएर उनीहरूलाई फुल्याउने गर्दछन्। यसरी शिशुलाई फुल्याउँदा गाउने गीतलाई शिशु फुल्याउने अथवा झुल्लरी गीत भनिन्छ।

जस्तै :

- लै लै ला नानीलाई

हा हा हा बाबालाई

झुल्लरी नानीलाई झुल्लरी

झुल्लरी नानीलाई झुल्लरी

ताराबाजी लै लै..., माथिबाट आयो आयो....आदि पनि यस प्रसङ्गमा स्मरणीय छन्।

गोठाले गीत : पशुपालन मानव मात्रको प्राचीन वृत्ति हो। नेपाली जनजीवनमा पनि यो एक प्रमुख वृत्तिका रूपमा स्वीकृत छ। गाई, बाख्रा, भेडा आदि पशुहरूलाई चरनमा चराउँदा गोठालाहरूले गाउने गीतलाई गोठाले गीत भनिन्छ। झ्याउरे छन्दका विभिन्न प्रकारका गीतहरू गोठालाहरूले गाएको सुनिन्छ।

.....

.....

लोक गाथा : गीतभन्दा केही लामो र आख्यान परक गीतिकाव्यलाई गाथा भनिन्छ। नेपालीमा गाथा शब्दको समार्थक शब्द हो **सबाई**। यस शब्दले पनि एकापटि कुनै कृतिका साथै अर्कापटि त्यो कृति रचिएको छन्द, स्वर अथवा भाकालाई पनि बुझाउँछ। नेपाली लोकजीवनमा सबाईहरू भन्ने र सुन्ने चलन रहेको पाइन्छ। यस्तो एक जनप्रिय गाथा अथवा सबाई हो सासु र बुहारीको सबाई। अधिकांश सबाईहरू **सुन सुन पञ्च हो म केही भन्छु** भन्ने वाक्यबाट थालिएको पाइन्छ। जस्तै :

“सुन सुन पञ्च हो म केही भन्छु।

सासु र बुहारीको सबाई कहन्छु।।

सासु भन्छे बुहारी ! बुहारी भन्छे ज्यू !

सिमाडमा राखेको कसले खायो घिउ ?

देख्नु न सुन्नु त्यसै मलाई दोष।

चाहिँदैँन तिम्रो घिउ आफ्नै छोरो पोस।।

ओठ तेरा चिल्ला थिए चाल मैले पाएँ।

नजानी त होइन बहू जानीकन लाएँ।।

भित्री ठोका बन्ध गर्छु बाइरी ठोका खोल्छु।

फेरिदेखि चोरिस् भने तेरो मुख पोल्छु।।

सिरानीको खोल नाइ करङ्गेको पल्ला।
 बुहारीको मुख झोसी नाउँ तमै चल्ला।।
 मास्तिरको भोटेबस्ती तल्लो मगर गाउँ।
 बुहारीको मुख झोस्ता के को चल्लो नाउँ।।
 घर र परीको ठुलो कोठेबारी।
 सासु र बुहारीको चलो कुटामारी।।
 बञ्चराको बीँड झिकी हातमा लिइन्।
 कोदालाको बीँडले डडेल्नामा दिइन्।।
 थोरै हुन्छन् अर्ती दिने धेरै हुन्छन् जासु।
 बुहारी चैं माइत पुगी घर खोजिछन् सासु।।
 कहाँदेखि आइस् बाबै केको खाजा खाइस्।
 बिदा दिइन् सासुले कि आफैं भागी आइस्?
 तीन दिनका बासी मकै चार दिनमा खाएँ।
 बिदा कैले दिन्थिन् बाबा, आफैं भागी आएँ।।
 एक तैले दुःख पाइस् कर्मलाई हारिस्।
 घरबाट भागी आइस् गाल मलाई पारिस्।।

यहाँनेर मननीय कुरो के छ भने सबै छन्द पनि लोकसाहित्यमा मात्र सीमित छैन, शिष्टसाहित्यमा पनि यसको अत्यधिक प्रयोग भएको छ। पूर्वाञ्चल भारतको नेपाली शिष्टसाहित्यको इतिहास लेन्सनायक तुलाचन आलेको **मणिपुरको लड़ाईको सबै (1893ई.)** बाट आरम्भ भएको कुरो यस प्रसङ्गमा उल्लेख्य छ।

.....

लोककथा: लोकजीवनमा मुखमुखै प्रचलनमा रहेका देव-मानव-दानव, भूत-प्रेत, जादुटुना, परी-अप्सरा, नाग-नागिनी, पशु-पक्षी, रूख-पात आदि सबै चरित्रको प्राधान्य रहेका कथा अथवा आख्यान-उपाख्यानलाई लोककथा भनिन्छ। जनजीवनमा मुखमुखै प्रचलनमा रहेका हुन्ले यनलाई “दन्तेकथा” पनि भनेको सुनिन्छ। विषयवस्तुसँग सम्बन्धित हुनाले लोककथाको क्षेत्र व्यापक रहेको देखिन्छ र तिनको विभाजन अथवा वर्गीकरणमा विविधता पाइएको छ। ती सबै विधा र वर्गीकरणको विभिन्नतालाई पनि हटाउने प्रयासले र अध्ययनको सुविधाका लागि चरित्रको आधारमा - मानव चरित्र प्रधान, मानवेतर चरित्र प्रधान र उभय चरित्र प्रधान भनी लोककथालाई तीनभागमा विभक्त गरिएको छ।

मानव चरित्र प्रधान कथा : मानव चरित्र प्रधान भएका कथाहरूमा फट्याङ्गे जैसीको कथा अतिनै रोचक एवं जनप्रिय रहेको देखिन्छ। त्यसै गरी सुनकेसी रानीको कथा, मनचिन्ते गाईको कथा, दुइ ठगको कथा(जस्तालाई तस्तै) आदि पनि यहाँ उल्लेख्य छन्।

मानवेतर चरित्र प्रधान : डल्लो र टपराको कथा, उइन खटौलाको कथा, बाठो कागको कथा, सिंह र मुसाको कथा आदिलाई लिन सकिन्छ।

उभय चरित्र प्रधान कथा : बाहुन र बाघको कथा, पशु बाक्के बुझ्ने बुहारीको कथा आदि।

.....

.....

लोकनाटक : श्रमजीवी मानिसले घाम-पानी, जाडो-गर्मी आदिमा अडिग रही प्रकृतिको कोखमा उब्जाएको शष्यसम्पादाको प्राप्तिको सुखदः अवसरमा अथवा परिश्रमको थकाइमारी देहलाई पुनर कर्मक्षम गर्न, अथवा कुनै अनुकूल परिस्थितिमा गाउँघरको आँगन, दोबाटो-चौबाटो अथवा मन्दिर प्रङ्गणमा समवेत भई गीत, गाथा, कथा आदिको माध्यममा परिवेशन गरिएको नृत्याभिनयलाई लोकनाटक भनिन्छ। लोकनाटकमा शिष्टनाटकमा गरिए झैं मञ्च निर्माण, पात्रपात्राको वेशभूषा र आङ्गिक, वाचिक आदि अभिनय कलाको विशेष आवश्यकता पर्दैन। अवश्य, हिजो-आज मञ्च-सजावट र अन्यान्य विधामा पनि प्राधान्य दिएको अनुभव हुँदछ। त्यो जेसुकै भए पनि लोकनाटक लोकजीवनको कला-विनोदनको अनन्य उदाहरण हो।

यस भेकको नेपाली जनजीवनमा बालुन, सोरठी, मारुनी आदिको आयोजन गरेको पाइन्थ्यो तापनि हिजो-आज यसमा शिथिलता आएको अनुभव हुँदछ। तैपनि, सीता भरत बालुन, कृष्णचरित्र बालुन, रामायणको बालुन आदिको साथै मारुनी-नृत्यको प्रदर्शन पनि नपाइने होइन।

.....

.....

लोकमन्त्र : लोकसाहित्यको अन्य एक रोचक विधा हो लोकमन्त्र अथवा तन्त्र-मन्त्र । लोकमन्त्रलाई लोकजीवनको सुस्थताको संरक्षक मान्न सकिन्छ। किनभने तन्त्रमन्त्र अथवा लोकमन्त्रमा लोकजीवनको सर्वतो प्रकारको सुरक्षाको प्रश्न जोडिएको देखिन्छ। किनभने, जादुटुना, मरण-मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि कार्य लोकमन्त्रद्वारा सम्भव हुने कुरो विभिन्न प्रकारका लोककथाबाट मात्र होइन, जनजीवनमा प्रचलित विधि-नियम, आचार-आचरण आदिबाट जान्न पाइन्छ। लोकमन्त्रसँग लोक-औषधि विधान पनि सम्बन्धित रहेको छ भन्दा अन्यथा नहोला। धामी-झाक्री, जोगी-जानपा, ओझा-बिजुवा आदिले तन्त्र-मन्त्रको साथै जडी-बुटी आदिको व्यवहार गरी लोकजीवनलाई स्वस्थ पारेको कुरो पनि यहाँ बिर्सिनसक्नु छ। गुरु-शिष्य परम्परामा रहेको तन्त्र-मन्त्रलाई प्रयोग अनुसार विधि-विधान सम्बन्धी, उपचार सम्बन्धी, अभिचार सम्बन्धी, स्तुतिपरक र अन्यान्य वा विविध गरी पाँच भागमा विभक्त गरिएको छ। (विस्तृत जानकारीको लागि द्रष्टव्यः डा० खेमराज नेपालको नेपाली लोकसाहित्यको रूपरेखाः पृ. 174-182)

.....

.....

सूक्ति साहित्य अथवा उखान-तुक्का : कुनै पनि भाषामा पाइएका उखान-तुक्का र वाग्धारालाई ती भाषाका गहना मानिन्छन्। मानिसको युगयुगको सञ्चित अभिज्ञता, प्रकृतिको सूक्ष्म निरीक्षण-पर्यवेक्षण आदिको फलस्वरूप पाइएका रहस्यात्मक अनुभवहरूलाई प्रकाश गरिएका तिक्खर,

संक्षिप्त, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक, अनुभवपूर्ण एवं निर्णायक वाणीविलासलाई सूक्ति,(सु+उक्ति) सुन्दर कथन अथवा उखान-तुक्का भनिन्छ।

सूक्ति साहित्य अथवा उखान-तुक्कालाई सामग्रिक रूपमा उथान, तुक्का र वाग्धारा गरी तीन प्रकारभेदलाई देखाउन सकिन्छ।

उखान : साधारणतः गैद्यात्मक शैलीमा रहेका र तुक नमिलेका लोकोक्तिलाई उखान भनिन्छ। जस्तै :

- अर्ती र ओखती मिठो हुँदैन।
- एक हातले ताली बज्दैन।
- एक गोली दुइ शिकार।
- एक पन्था दुइ काज।
- सहेको सिद्ध कतै जाँदैन।

तुक्का: तुक् मिलाको लयात्मक उक्ति अथवा अन्त्यनुप्रास मिलाको उखानलाई मात्र तुक्का भनिन्छ। जुन उखान तुकात्मक छन् ती मात्र तुक्का हुन्। जस्तै :

- आयो गयो माया-मोह
आएन - गएन कोहो कोहो॥
- तैं रानी में रानी।
को भर्ने कुवाको पानी॥
- नमच्चिने पिँडका सय झट्का।
होचा मान्छेका लामा फट्का॥
- बाह छोरा तेह नाती
बुढाको धोक्रो काँधै माथि॥

वाग्धारा : लोकपरम्परामा रहेर अभिधाको अथार्तिरिक्त अन्य अर्थ प्रतिपादन गर्ने केही निश्चित शब्द, शब्द-विन्यास, वाक्य, वाक्यांश आदिलाई खण्डवाक्य अथवा वाग्धारा भनिन्छ। उखान-तुक्का अथवा वाग्धाराको प्रयोगले भाषा सजीव, सार्थक र सारगर्भित हुन्छ। यस भेकको नेपाली जनजीवनमा पाइने केही वाग्धारा यस प्रकार छन् -

आँइ सुक्नु, (दुर्बल हुनु, रजस्वला नहुने हुनु आदि), अगुवा हुनु/ बन्नु(नेतृत्व दिनु), इसारा गर्नु / दिनु(सङ्केत दिनु), कुरा दुहुनु(भित्री कुरा जान्नु), खाटो बस्नु (पुरानु हुनु/बिर्सन लाग्नु), टाउकोमा चडाउनु(पुल्पुल्याउनु), तातो लाग्नु(चासो लिनु/चेत आउनु), सेखी झार्नु(दर्प चूर्ण गर्नु) ।

.....

.....

प्रकीर्ण साहित्य : यस शीर्षक अन्तर्गत केही ससाना विधा छन् जसमा गाउँखाने कथा, आशीर्वाद, अभिशाप, डाक-वचन, शपथ अथवा किरियाका पदावली, शकुन-अपशकुनका केही नीति-वचन

आदिलाई समावेश गर्न सकिन्छ। तर, विस्तृतिको भयमा सबैको चर्चा सम्भव नहुनाले गाउँखाने कथा र डाक-वचनलाई मात्र यहाँ उपस्थापन गरिएको छ।

गाउँखाने कथा : श्रमजीवी जनताले मेलापात, दाउरा-घाँस आदिमा जाँदा अथवा बसिबियालो गर्दा गरेका प्रश्नहरूलाई गाउँखाने कथा भनिन्छ। यस भेकमा प्रचलित केही गाउँखाने कथा यस प्रकार छन् :

| प्रश्न | उत्तर |
|--|----------|
| आमाभन्दा छोरी बोक्सी के हो ? | खोर्सानी |
| खस्रे भ्यागुत्ताको भुँडी नै मीठो के हो ? | कटहर |
| तीन भाइको साझे पगरी के हो ? | ओधान |
| पाँच दाजुभाइको एउटै आँगन के हो ? | हत्केलो |
| हरियो चरीका दुइतिर पुच्छर - के हो ? | दुनु |
| | |

डाक-वचन :

भारतवर्षका विभिन्न भाषाहरूमा पाइए झैं नेपालीमा पनि डाक-पुरुषका नाउँमा प्रचलित विशेष गरी कृषि र ज्योतिष सम्बन्धी केही वचनहरू पाइन्छन् जसलाई डाक-वचन भनिएको छ। अन्यान्य भारतीय भाषामा पाइए झैं नेपालीमा पनि कृषि र ज्योतिष सम्बन्धी यस्ता केही वचन पाइन्छन्। जस्तै -

“उत्तर चम्के ठाडी विजुली दक्खिन चम्के गाढ।
डाक कहे सुन भटोरी(भट्टरी) वर्षा आए आज।।”
“दिन भए बादलु राति छङ्गाछुर।
डाक कहे सुन भटोरी(भट्टरी) पानी गए बड़ा दूर।।”

.....

पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली लोकसाहित्यको विकासको परम्परा :

पूर्वाञ्चल भारतमा नेपाली लोकसाहित्यको विकासको परम्परालाई औपचारिक र अनौपचारिक गरी दुइ भागमा केलाउन सकिन्छ।

औपचारिक परम्परा : प्रथमतः औपचारिक भन्नाले विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय अथवा अन्य कुनै शैक्षिक संस्थानहरूद्वारा चलाइएको अध्ययन-अध्यापनलाई बुझिन्छ। यी शिक्षण संस्थानहरूमा प्रस्तुत गरिएका लोकसाहित्य र संस्कृतिका विभिन्न विधाका पाठ्य सामग्रीले पनि यस विधाका केही न केही विषयमा छात्रछात्रालाई केही ज्ञान दिइएको देखिन्छ। अब, यस भेकमा कहिले देखि यसरी आनुष्ठानिक अथवा औपचारिक अध्ययनको शुभारम्भ भयो त्यस विषयमा किटान गर्न अफट्यारै परे पनि ई. 24. 07. 1918 मा कलकत्ता विश्वविद्यालयले नेपाली मातृभाषालाई माध्यमिक, आई. ए. र बी.ए. कक्षामा पठन-पाठनको स्वीकृति प्रदान

गरेपछिदेखि नै भाषाको माध्यममा शिष्ट साहित्यका साथै लोकसाहित्यका विभिन्न विषयको चर्चा हुने सम्भावना रहेको अनुभव हुन्छ। किनभने भाषाका साथै साहित्य र संस्कृतिका विभान्न बुँदामाथि चर्चा हुँदैन थ्यो भन्न सकिदैन। यता पूर्वाञ्चल भारतको त्यस समयको राजधानी शिलाडमा मणिसिंह गुरुडद्वारा स्थापित गोर्खा पाठशाला (1915) ले चलाएका शिक्षण सामाग्रीहरूमा पनि यस विषयका केही नै तथ्य थिएनन् भन्न मिल्दैन। यही औपचारिक परम्पराले आज केही मात्रामा भए पनि विद्यालय तथा महाविद्यालय तहका विभिन्न शिक्षण संस्थानको माध्यममा विकासको गति अव्याहत राखेको छ भन्नु पर्दछ।

अनौपचारिक अध्ययन परम्परा :

अनौपचारिक परम्परामा हेर्ने हो भने लोकसाहित्यका विभिन्न विधामाथि विभिन्न जनले गरेको अध्ययन, चर्चा, परिचर्चा, लेख, निबन्ध, पुस्तक आदिको प्रकाशन, विभिन्न गाउँ-ठाउँमा गएर परिवेशित अनुष्ठानहरूको सर्वेक्षण, तथ्य-सङ्कलन, प्रशिक्षण आदिलाई समेटिएको छ।

त्यसैले औपचारिक अध्ययन परम्परा भन्दा अनौपचारिक अध्ययन परम्पराको परिधि व्यापक रहेको पाइन्छ।

अब, पूर्वाञ्चल भारतमा अनौपचारिक रूपमै भए पनि कहिलेदेखि लोकसाहित्यको अध्ययनको परम्परा बसेको छ त्यसको जानकारी प्राप्त गर्न हामीले मणिसिंह गुरुडले सम्पादन र प्रकाश गरेको यस भेकको पहिलो (छापा) साप्ताहिक पत्रिका 'गोर्खा सेवक'(1936-38) लाई अवलोकन गर्ने पर्दछ - जसद्वारा त्यस समयको समाज-जीवनको गतिविधि अवगत हुन सकिन्छ। त्यसैले यहाँ 'गोर्खा सेवक'का पन्नामा पाइएका केही वाक्य उद्धृत गर्ने प्रयास गरेको छु :

“ समयको हेरफेरले कति वर्ष अघि भन्दा आधुनिक गोर्खा जगतको मनोभाव, विद्या, बुद्धि, सामाजिक परिस्थिति, रहन-सहन इत्यादि कुराको पनि एक दर्जा उँभो लाग्न स्वाभाविक हो। साथै आधुनिक रीतिमा शिक्षित भएका नर-नारीको संख्या पनि क्रमशः बढ्दै गएको बुझिन्छ। यसरी उन्नति बृद्धि हुनको साथ जाति उन्नतिको एक अङ्क समाचार पत्रको प्रयोजन पनि जनतामा अधिक मात्राले हुन पर्ने हो। अरु अरु भाषाका भने यहाँ हिन्दुस्थानमा थरि थरिका कति पुराना पत्रिकाहरू बराबर लोकसेवा गर्दै चल्दै आएका छन्। औ दिन प्रतिदिन संख्या थपिदै आएका छन्। तर, हामीमा भने केवल नाउँका लागि एक-दुइओटासम्म खड्गाराख्न पनि धौ धौ परेको बुझिन्छ। जो एकप्रकारले ता अवश्य पनि हाम्रै अज्ञानता, अरुचि, उपेक्षा औ सहयोगको अभावले नै होला।...पत्र-पत्रिका जातीय उत्थान औ हित साधनका खातिर प्रयोजनीय साधन हो भन्ने कुरा ताहाम्रा पढे-लेखेका नर-नारीमध्ये बारम्बार दोहर्याउनु व्यर्थ छ।... हामीले पत्र-पत्रिकाको महत्त्व नबुझी त्यसै नीचमारी बस्नाले नै ती असहाय पत्र-पत्रिका स्थायी हुन पाउँदैनन्। यदि हामी सबैले तिनको पालन-पोषणको पूरा प्रबन्ध गरिदिन सकेको भए अवश्य पनि हामीमा आज यसरी सम्वादपत्रको अभाव देखिने थिएन होला। ” (खड्गबहादुर क्षत्री, बी. ए. शिलाडको निबन्ध-

शुभाकांक्षा, गोर्खा सेवक-22.1.1936 : सङ्कलक-सम्पादक - डा० खेमराज नेपाल, प्रका. गोर्खा उन्नयन परिषद - असम, 2016, पृ. 26-27)।

यस्ता उदाहरण अनेकौं छन्। यहाँ केवल एक निदर्शनका लागि गोर्खा सेवकको सम्पादकीयका दुइ वाक्य यहाँ उपस्थापन गरियो : “ ...पत्र-पत्रिकाको अभावले गर्दा आज हामी कूपमण्डुकको जब्बर फेलाबाट उम्कन नसकी कस्तो थाने औं टीठलाग्दो दशामा पर्न गएका छौं यस कुराको रतिभर विवेक हामीमा रहेको भए आज यस विशाल जगतमा फगत नामलो, कोदालो, भार, चिसो नाल औं यिनै खालका अन्य कुराहरू बाहेक देखने लायकका अन्य कुरा पनि हाम्रा नजरमा आउने थिए।... यसबेला प्राय हामी 30 लाख गोर्खालीहरू छरिएर भारतवर्षका भिन्न भिन्न प्रान्त, भूटान, वर्मा आदि देशमा बसेका छौं। हामी यस बेला कस्ता कस्ता स्थितिमा फेला पर्न गएका छौं औं हाम्रा अगाडी कस्ता कस्ता विकट प्रश्न औं समस्या इत्यादि आइलागेका छन् इसब कुराको विचार गर्ना निमित्त हामी सित साधन औं उपाय के छ ? ” (नेपाली भाषामा अखवारको आवश्यकता : सम्पादकीय-15.1.1936, गोर्खा सेवक : सङ्कलक-सम्पादक - डा० खेमराज नेपाल, प्रका. गोर्खा उन्नयन परिषद - असम, 2016, पृ. 19)।

यी उद्धृतिबाट के कुरो स्पष्ट हुन्छ भने त्यस समयको अर्थात् प्राय भारत स्वाधीन नहुञ्जेलसम्म समग्र भारतवर्ष मै नेपालीहरूको स्थिति त्यति राम्रो देखिदैन। जबसम्म जातिको घड़ेरी नै डाँबाडोल अवस्थामा रहन्छ तबसम्म त्यहाँ लोक अथवा शिष्ट साहित्यको आजको जस्तो चर्चा अथवा अध्ययन हुने कुरो कल्पनातीत हुन जान्छ। तैपनि कति चाहिँ भन्न सकिन्छ भने लोकजीवनका यी सांस्कृतिक बुँदाहरू जनजीवनका विभिन्न स्थिति-परिस्थितिसँग सम्मिलत हुँदै प्रयोग-प्रचलनमा रहेका उत्सव-पर्व आदिसँग वर्तीरहेका हुन सक्छन्। यस भेकको नेपाली जनजीवनमा पनि त्यस्तै स्थिति रहेको अनुभव हुन्छ।

खेमराज नेपाल 15-10-018

पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषा साहित्यको विकासको सेरोफेरो

डा खगेन शर्मा

गुवाहाटी विश्वविद्यालय

पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली साहित्यको विकासको सेरोफेरो शीर्षकमा कार्यपत्र प्रस्तुत गर्नु लरतरो प्रयासले हुँदैन, यो एउटा व्यापक अनुसन्धानको विषय हुन जान्छ। यहाँ चाहिँ सिक्किमलाई छोडेर पूर्वोत्तर भारतको केही प्रसङ्ग उठाउन प्रयास गरिएको छ।

नेपाली साहित्यले बामे सरिसकेको प्राय एक सय बीस वर्षपछि 1893 मा तुलाचन आलेले रचेको तथा छापिएको **मणिपुरको लडाईको सवाई** पूर्वोत्तर भारत तथा समग्र भारतको पहिलो साहित्यिक कृति हो भन्ने गरिन्छ(पराजुली,2009)। समग्र नेपाली साहित्यले लगभग अढाई सय वर्षको फड्को मारिसक्दा भारत तथा पूर्वोत्तर भारतको नेपाली साहित्यले एक सय पच्चिस वर्ष अर्थात् आधा समय नाघिसकेको छ। अझ भनौ पूर्वोत्तर भारतमा नेपालीभाषीको स्यायी बसोबासो दुई सय वर्ष पुग्दा(उपाध्याय,2009) नेपाली साहित्यको उमेर एक सय पच्चिस वर्ष भएको छ। यस भेकमा नेपालीभाषीको स्यायी बसोबासो हुन थालेको पचहत्तर वर्षपछि नेपाली साहित्यको जग बसेको रहेछ, यसका धेरै कारण होलान्। पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली साहित्यले सय वर्ष अथवा एक सय पच्चिस वर्ष नाघ्दा पनि उत्सव मनाउने मौका कसैले छोपेको देखिएन। त्यसमा नेपालीभाषी चुकेछन् र यसका पनि कारण खोज्नु छ।

यी भए विषय उठानका मुद्दा। साहित्य विकासको छलफल गर्दा भाषाको संरक्षण सम्बर्धन प्रसङ्ग तान्नै पर्ला। पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली भाषाको औपचारिक रूपमा पठन पाठन तथा संरक्षण हुनु भन्दा पैतिस वर्ष पहिलै सन् 1893 मा नेपाली साहित्यले किलो ठोकिसकेको रहेछ। अर्थात् बाबु मणिसिंह गुरुङको भरीरथ प्रयासमा शिलाङमा सन् 1928 मा स्थापना भएका नेपाली माध्ययको स्कूल गोर्खा पाठशाला(थापा,2010:70) अहिले हायारसेकेन्डरी स्कूल 10+2 तहमा पुगी इतिहास कायम गरेको छ। यो हाम्रो गौरवको शान हो मान हो। यसै अवसरमा बाबु मणिसिंह गुरुङ लगायत उहाँका समस्त अनुयायीहरूप्रति हामी नतमस्तक छौं। शिलाङपछि नेपाली माध्ययका स्कूल खोल्ने अभियान चाहिँ पन्ध्र वर्षपछि डिगबाईतिर चल्थो तर केको श्राप थियो कुन्नि त्यो अभियान पनि अर्को प्राय पन्ध्र वर्षपछि ओइलायो र अहिले त सो अभियान अतीत भयो। अचम्मको कुरा के देखिन्छ भने नेपाली भाषा पढ्ने वा नेपाली माध्ययका स्कूल खोल्ने अभियानले ब्रह्मपुत्र तर्न सकेन। ब्रह्मपुत्रको उत्तर भेकमा नेपाली पढ्ने लहर सुरु हुन सन् 1967 सम्म पर्खिनु पर्‍यो अर्थात् सन् 1967 मा दरङ कलेज(वर्तमान तेजपुर) मा नेपाली

विभागमा नेपाली प्राध्यापकका रूपमा दुर्गा प्रसाद उपाध्याय(घिमिरे)को नियुक्ति भयो, त्यो पनि उच्च शिक्षा तहमा। ब्रह्मपुत्रको उत्तर भेकमा प्राथमिक र माध्यमिक तहमा बाक्सा जिल्लाबाहेक अन्य जिल्लामा अझै पनि छैनको बराबर छ। अहिलेसम्म गुवाहाटीको पल्टन बजार नेपाली मन्दिरको गोर्खा एल पी र गोर्खा यु पी स्कुल र बडागाउँ नेपाली एल पी र यु पी स्कुल(देवकोटा नगर, बडागाउँ, मालिगाउँ)मा दुमोका रूपमा नेपाली माध्यमका स्कुल रहेका छन्। मोठमाठमा साहित्यको आग्रहमा चाहिँ भाषाको अस्तित्व रहेको हो कि भन्नु पर्ने अवस्था छ। यसको विश्लेषण यसरी गर्न सकिएला।

(1)- यो भेकमा नेपाली भाषाको पठनपाठन हुनुभन्दा अगिदेखि नै नेपाली साहित्यको चर्चा प्रारम्भ आएको हो। माथिल्लो तहसम्म नेपाली भाषा नपढेका र नेपाली भाषा नपढाउनेहरूद्वारा नेपाली साहित्यको मलजल भएको पाइन्छ, देखिन्छ, त्यो उनीहरूको रुचि क्षेत्र भएकाले र नेपाली भाषा साहित्य संस्कृति र जातिको मायाले होला। अर्थात् साहित्यको सेवा वा सिर्जना जसले पनि गर्न सक्छ, यसमा तगारो छैन। त्यसैले आज पनि नेपाली लेखक तथा भाषा साहित्यका सेवकहरू चाहिँ माथिल्लो तहसम्म नेपाली भाषा नपढाउने तथा औपचारिक रूपमा नेपाली भाषा नपढेकाहरू नै धेरै छन्। उनीहरूले नेपाली भाषा साहित्यका लागि ठुलो गुन लगाएका छन्। अवश्य यो धारा अरू साहित्यमा पनि देखिन्छ, पाइन्छ।

(3)- औपचारिक तथा संस्थागत स्वीकृति अझ भनौं सरकारी तथास्तुबिना कुनै पनि भाषा, साहित्य वा संस्कृतिको मूल्य मान्यता प्रतिष्ठा हुन गारो हुन्छ। अतः नेपाली भाषा र साहित्यको मूल्य मान्यता प्रतिष्ठाका लागि नेपाली पढाउने गुरुहरूको अहम् भूमिका हुनुपर्छ। बेलाबेला त नेपाली पढाउने गुरुहरूबले तोक नलगाई स्वीकृति नहुने नियम छ।

सर्जक र शिक्षक दुइटै बेग्लाबेग्लै व्यक्तित्व हुन्, सबै सर्जक शिक्षक नहुन सक्छन्, सबै शिक्षक सर्जक नहुन सक्छन्, तर नेपाली भाषाका शिक्षकहरूले नेपाली भाषाको राम्रो मार्केटिङ गर्न सक्छन् र उनीहरूले मार्केटिङ गर्ने पछि भन्ने मेरो ठनाइ छ। सायद आजको दिन नेपाली गुरुहरूले अपेक्षित मार्केटिङ नगरेकाले होला नेपाल भाषा र साहित्यको बजार मन्दा भएको होला। यसबारे मात्रै व्यापक चर्चा हुनु छ। यो ठुलो मुद्दा हो आजको परिप्रेक्षमा।

(4)-पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली साहित्यको विकासको चर्चा गर्दा आजको विश्व साहित्य र समग्र नेपाली साहित्यको गति प्रकृति जान्नु जरूरी हुन्छ। यस भेकका अधिकतम् नेपाली साहित्यका सिर्जनामा जातीय अस्तित्व तथा अस्मिताको गुनासो पोख्ने क्रममा अलमलिएको पाइन्छ भने

विश्वजनीन विषयवस्तु, मानवतावादी वैचारिकतामा आधारित कृति सिर्जनामा समय नजुरेको हो कि भन्नु पर्ने अवस्था छ।

सन् 1957 मा लेखिएको बसाइँको विषयवस्तु त्यसबेलाको यथार्थता थियो भने आज त त्यो विषयवस्तु आउटटेडेड हुन जान्छ।

देवकोटाको मुनामदनको परिवेश पनि आज बदलिएको छ। यस्ता विषयवस्तु आफ्नो समाजमा केही मात्रामा समादृत भए तापनि छिमेकी समाजमा त्यसले अपेक्षित स्थान नपाउला, अनुवादले समादार नपाउला।

बसाइँलाई यसरी विश्लेषण गर्न सकिन्छ-

(क) आज पनि सामाजिक यथार्थवादी चर्चा छँदै छ तर

(1) आजकी झुमा—आत्महत्या गर्न नजान पनि सकिन्छन्—

(2) आजको महाजनको छलकपट अब त्यसरी चल्दैन, प्रतिवाद हुन्छ, सरकारी सुविधा थपिएकाले केही सरकारी आड पनि पाइन्छ।

(3) आजको धने बसाइँ नहिँड्न पनि सक्छ।

यसै गरी आज मुनामदन-को मदन लासा होइन विदेश जान्छ, मदनको घरसित बराबर सम्पर्क हुन्छ, आजकी केही मुना जानी बुझी पोइल जाने गरेको पाइन्छ। अर्थात् साहित्यको विकासमा विषयवस्तु र शैलीगत परिवर्तन भई मानवतावादलाई समेटेको युगसापेक्ष हुनुपर्छ।

आज चलेको अर्को वाद हो नारीवाद। यस वर्तमानमा नारीवादले समादार पाइरहेको छ। अहिलेको साहित्यले रामायणलाई पनि चुनौति दिन लागेको छ। हिजोआजकी सीता अग्नि परीक्षामा सहमत नहोलिन् र पुत्र सन्तानको वर्चस्वमा पनि परिवर्तन देखिन्छ, छोरीहरूले पनि मुखाग्नि दिने, पिण्ड दिने चलन बसेको छ। साहित्यमा यी मान्यताले स्थान पाउन लागेका छन्। यस्ता साहित्यले समाज सर्वाङ्गीन उन्नतिमा सहायक हुन्छ। जातीयताको गुनगान गाउने साहित्यको परिधि सीमित हुन्छ। यो गाँठी कुरा हो।

सूचना प्रविधिको चलन तथा प्रविधिलाई आत्मसात गर्न सकेन भने त्यो साहित्य पढ्ने आजको जमातले सहर्ष स्वीकार्लान् के भन्ने प्रश्न उठ्छ।

भाषा र साहित्यको पारस्परिक साइनो

भाषाको पठन-पाठन, संरक्षण सम्बर्धन जति धेरै हुन्छ, सरकारी र संस्थागत पृष्ठपोषण जति बढी हुन्छ त्यति नै साहित्यको मलजल हुन्छ, आदर बढ्छ, सर्जकहरू पनि उत्साहित हुन्छन्, प्रकाशकहरूको पनि हौसला बढ्छ। वास्तवमा साहित्यलाई पाठक चाहिन्छ, पढिदिने जमात चाहिन्छ, बजार चाहिन्छ, साहित्य पढ्ने युवाहरू पनि उत्तिकै चाहिन्छ, त्यो माहौल बनिनु पर्छ। यस्तामा संस्थागत पहलको खाँचो अनुभव हुन्छ।

यस वर्तमानको तितो सत्य के छ भने पूर्वोत्तर भारतमा नेपाली पढिने संस्थानहरू बढ्नुको सट्टा घट्दै छन्, नेपाली भाषा पढ्ने माहौल डमाडोल छ। यसबारे सानो जनसङ्ख्या भए पनि तुलनात्मक रूपमा हेर्दा असमभन्दा मेघालय अगि देखिन्छ। मेघालयमा नेपाली माध्यमका स्कूल टिकेकै छन्, मेजर कोर्स पनि चलेकै छ, यी दुइटै कार्य असममा चलन सकेका छैनन् यद्यपि जनसङ्ख्या ठुलो छ। यो पनि छलफलको विषय हो। मणिपुर र मिजोराममा जस्तो अवस्थामा भए पनि नेपाली पढाइ हुन्छ भन्ने लेखिन्छ अनि साहित्यको सिर्जना पनि छँदै छ। अरू राज्यमा साहित्य सिर्जनाको गति नाजुकै होला।

केही खास कृति र पुरस्कार

पूर्वोत्तर भारतमा केही नेपाली किताबले राष्ट्रिय र अन्तर्राष्ट्रिय पुरस्कार प्राप्त गरेका छन्। आगामी दिनमा पनि पाउलान्। तर अहिलेसम्म अति सीमित सङ्ख्यामामा पुरस्कार आएका छन्। तर पनि मदन पुरस्कार आएको छैन। उता पुरस्कृत कृतिहरू न त खोजेर पढिन्छ वा किनिन्छ, न त ती पुरस्कृत किताबको दोस्रो संस्करणकै कुरा आउँछ। यस्तो किन हुन्छ? बहसको विषय हो। संस्थाहरूले छलफल गर्नु पर्ने हो। गुवाहाटी तथा नेपाल दार्जिलिङ सिक्किमतिरबाट जीवित साहित्यकारभित्र चिनिने र भेट्न खोजिने व्यक्तित्व हुनुहुन्छ प्रा लीलबहादुर क्षेत्री। उहाँको सेखापछि त्यो ठाउँ कसले लेला प्रश्न छ, किनकि साहित्य व्यक्तिद्वारा होइन कृतिद्वारा चिनिन्छ। क्षेत्रीलाई पनि बसाइँद्वारा बढी चिन्ने गर्छन्। मूलतः साहित्यको मार्केटिङमा संस्था सङ्गठनहरूको अहम् भूमिका रहनु पर्ने देखिन्छ।

भारतीय साहित्यका रूपमा नेपाली साहित्य

हामीबिच नेपाली साहित्यको चर्चा गर्दा आफैमा रुमलिएको हुन्छ। अनि नेपाली साहित्यलाई भारतीय साहित्यका रूपमा हेर्ने प्रचलन न्यून देखिन्छ। साहित्य अकादमीले यसबारेमा केही छलफल गर्छ होला तर नेपाली साहित्यलाई भारतीय परिप्रेक्षमा उपस्थापन गर्न जे जति प्रयास चलिरहेका छन् त्यो भन्दा बढी कसरत गर्नु पर्ने अवस्था छ।

सरस्वती सम्मान, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त गर्न भारतीय नेपाली साहित्य कहिले सफल होला, प्रश्न छ। किनकि त्यसका लागि अनुवादको भूमिका अहम् हुन्छ र विधा तथा विषयवस्तु चयन, दर्शन, प्रस्तुति, अनुवाद, समीक्षा र अलिकति प्रचार-प्रसारको पनि जोड हुनु पर्ला, मूलत नेपाली साहित्यलाई विश्व साहित्यको हाराहारीमा पुऱ्याउन नेपालले पनि प्रयास गरिरहेको देखिन्छ तर नेपालका केही लेखकबाहेक अरू कुन भारतीय नेपाली साहित्यिक कृतिहरू विश्वका प्रतिष्ठित पुस्तकालयमा पुगेका छन्? त्यसका लागि ISBN को आवश्यकता हुन्छ, हामीकहाँ ISBN र महत्वपूर्ण प्रकाशक चाहिन्छ नै भन्ने चर्चा कति पो छ र?

निचोड

- (1) साहित्यको विकास भन्ने शीर्षकमा कसले कहिले के लेखे भन्ने विषय खोजेर पढ्दा पनि पाइन्छ अनि यस्तो प्रभावकारी माहोलमा चाहिँ भाषा साहित्यका सङ्कटका मोचनबारे केही चर्चा गरेको उचित देखिन्छ।
- (2) साहित्यको विकास तथा उत्थानमा नेपाली भाषा पढाउने गुरुहरूको पहल तथा भूमिका अबसो बढ्नुपर्छ अन्यथा संरक्षण सम्बर्धन तथा विकासको गति मत्थर हुन सक्छ।
- (3) साहित्य सर्जकहरूले पनि विश्व साहित्यको लहर अध्ययन गरी हाम्राले सिर्जना गर्नु पर्ने हो कि भन्ने चर्चा गर्नु पर्ला। अब त सल्लाहमै धारा नै बदलाउन सके हुन्थ्यो कि? समेटिनु पर्ने तर छुटेका विषयमाथि केही लेखिनु पर्ने रहेछन्। जस्तै 1987, असम आन्दोलन, भोटाङ आन्दोलन, एनआरसी, देशप्रेम आदि।
- (4) भाषा र साहित्यका संस्था सङ्गठनहरूले सर्जक तथा समालोचकलाई युग सापेक्ष परिवेश निर्माण गराउने कार्य(कार्यशाला, सेमिनार) अझ द्रूत र शुद्ध गतिमा चलाउनु पर्छ।

- (5) नेपाली साहित्य भनेको भारतीय र विश्व साहित्य पनि हो भन्ने कुरा आत्मसात गरी सर्जक, समालोचक, अनुवादक, सङ्गठक, शैक्षिक संस्थान सबैले त्यसखाले प्रयास र दृष्टिकोण राख्नु आजको माग हो अर्थात् यी मानक अप्राप्त जसरी देखिन्छ अनि यसका लागि हामीबाहेक अरू कसैले पनि प्रयास गरिदिनेवाला छैनन्।
- (6) विद्यार्थी तथा युवाहरूलाई भाषा र साहित्य संस्कृति अध्ययन, मननार्थ परिवेश सृष्टि गराउने अभियान चलाउनु पर्ने हो। आजका युवाले यो कुरा मनन गरेनन् भने भविष्यमा अझ सङ्कट आइलाग्ला। केही अनिवार्य कार्य गर्नुपर्ने हुन्छ, जस्तै- भेटघाट, भ्रमण आदि। प्रा लील बा क्षेत्री, डी एन जोशी, पञ्जुलाल गुरुङ, बीकमबीर थापा आदि।

सन्दर्भ ग्रन्थ

उपाध्याय, डा जमदग्नि(2009) *द एडभेन्ट अफ द नेपालिज इन आसाम*, हिस्ट्री एन्ड कल्चर अफ आसामिज नेपाली, गुवाहाटी, ढास, असम सरकार, पृ 10.

थापा बीकमबीर(2010) मणिसिंह गुरुङ, शिलाङ, गोर्खा पाठशाला उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पराजुली, लक्ष्मीप्रसाद(2009) *नेपाली पोएट्री इन आसाम अ हिस्टरिकल आउटलाइन*, हिस्ट्री एन्ड कल्चर अफ आसामिज नेपाली, गुवाहाटी, ढास, असम सरकार, पृ 208.

मेघालयमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकास

डा० टेकनारायण उपाध्याय

शिलाङ, मेघालय

१. विषयप्रवेश

भारतको पूर्वोत्तर क्षेत्रमा रहेको मेघालय राज्यको स्थापना २१ जनवरी १९७२ का दिन भएको हो। असमबाट छुट्टिएर छुट्टै राज्य बनेपछि यसको राजधानी शिलाङ बनाइयो। राज्यको स्थापना सन् १९७२ मा भए तापनि यस राज्यमा नेपाली/गोर्खालीहरूको प्रवेश र सम्बन्ध निकै पुरानो भएको बुझिन्छ। अङ्ग्रेज-नेपालबीच सुगौली सन्धि भएको ठीक दुई वर्षपछि नेपालीहरूले अङ्ग्रेजी पल्टनमा सोझै प्रवेश पाउन सफल भए भने उनीहरूलाई सङ्गठित गरेर विभिन्न पल्टनहरू बनाइए। सन् १८२६ बाटनै गोर्खालीहरूलाई युद्धका लागि विभिन्न ठाउँमा प्रयोग गर्न थालिए र यसै क्रममा सन् १८२६ मा अङ्ग्रेज-बर्माबीच भएको युद्धमा यिनीहरू सञ्चालन गरिए। सन् १८३२-३५ मा गोर्खापल्टन निर्माण गरी चेरापुञ्जीमा मुख्यालय बनाई त्यहाँ राख्ने व्यवस्था गरियो। सन् १८६६ सम्म चेरापुञ्जीमा रहेको पल्टन अधिक वर्षाका कारण बस्नसक्ने भएर शिलाङ सारियो। शिलाङ मुख्यालय बनाएपछि ४२, ४३ र ४४औँ पल्टनहरू बनाइए र यी पल्टनको सहायताले अङ्ग्रेजहरू पूर्वोत्तरका विभिन्न ठाउँहरू जित्न सफल भए। ४४औँ गोर्खापल्टनलाई भने अन्य पल्टनको सहयोगार्थ शिलाङमा स्थायी बनाएर राखियो। यसै पल्टनमा तुलचन आले पनि थिए। सन् १८९१ मा गोर्खापल्टनलाई मणिपुर जित्न पठाइयो त्यस युद्धमा तुलचन आलेले भाग लिएका थिए। शिलाङ फर्केपछि तुलचन आलेले मणिपुरको अनुभवलाई समेटी **मणिपुरको लडाईँको सवाई** रचना गरे।^१ यो सवाई मेघालयको नेपाली साहित्यतिहास लेखनको आरम्भ मानिन्छ। यस रचनालाई आधार मानेर हेर्दा मेघालयको नेपाली साहित्यले १२० वर्षको इतिहास पार गरिसकेको छ। एकसय बीस वर्षभन्दा अघिबाट थालिएको साहित्य तथा सामाजिक गतिविधि वर्तमानसम्म पनि गतिशील छ। सन् १८७६ मा पहिलो गोर्खा शैक्षिक संस्थान 'गोर्खा पाठशाला' आरम्भ गरिएको तथ्य प्राप्त छ भने सन् १८८५ मा पहिलो सामाजिक संस्था 'गोर्खा सोसिएसन' स्थापना गरिएको थियो यसरी नै सन् १९३६ मा मणिसिंह गुरुङले पहिलो नेपाली साप्ताहिक पत्रिका 'गोरखा सेवक' निकालेको थाहा पाइन्छ। सन् २०११ को जनगणना अनुसार मेघालयमा २८५१५ पुरुष र २६२०१ महिला गरी नेपालीहरूको जनसङ्ख्या जम्मा ५४७१६ रहेको छ। यस आलेखमा मेघालयमा हालसम्म विकास भएको भाषा-साहित्यको विधागत इतिहासको सङ्क्षिप्त परिचय दिइएको छ-

२. कविता विधामा मेघालयको योगदान

मेघालयमा कविताको विकास प्राथमिककालीन नेपाली काव्यसरह लोककाव्यबाट भएको पाइन्छ। लोकमा प्रचलित सवाई छन्दबाट यहाँको काव्यलेखन आरम्भ भएको छ। लोकपरम्परामा रहेको सवाई छन्दमा आफ्ना भाव व्यक्त गर्न सहज हुने हुनाले प्रथम काव्य सवाई छन्दमा रचिएको हो। मेघालयको राजधानी शिलाङमा रचिएको युद्ध र वीरतामा आधारित **मणिपुरको लडाईँको सवाई** पहिलो लिखित र प्राप्त काव्य हो। यसका रचयिता तुलचन आले हुन्। तल मेघालयमा हालसम्म काव्यसङ्ग्रह प्रकाशित गर्ने कविहरूको परिचय र उनका काव्यकृतिको सङ्क्षिप्त परिचय गराइएको छ-

(१) तुलचन आले

तुलचन आलेको हालसम्म पुर्खौली, परिचय, जन्मस्थान तथा जन्मसमय र शिक्षादीक्षाबारे जानकारी उपलब्ध हुनसकेको छैन। सन् १८९१ मा ४३/४४ गोर्खापल्टनमा यिनी लेन्सनायक थिए भन्ने सामान्य जानकारी यिनले वर्णन गरेको **मणिपुरको लडाईँको सवाई**का २८ देखि ३० श्लोकबाट बुझ्न सकिन्छ।^२ यिनले सन् १८९१ मा मणिपुरको लडाईँमा देखाएको शौर्यको वर्णन आफ्ना सवाईमा गरेका छन्। कतै स्वच्छन्दतावादी ढङ्गबाट र कतै

यथार्थवादी ढङ्गबाट युद्ध एवं वीरताको वर्णन, सवाई छन्दको प्रयोग, भाषिक सरलता र सहजता आदि यिनका काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(२) धनवीर भँडारी

धनवीर भँडारीको हालसम्म विस्तृत परिचय प्राप्त हुनसकेको छैन। उनले भँचालाको सवाईको अन्तिम चार श्लोकमा आफ्नो परिचय दसथर मझिया चैनपुर खरीपाटी नेपाल दिएका छन्। नेपालमा जन्मेर त्यही हुर्केका भँडारी फौजसँग शिलाङ आई बसोबास गरेका हुन् भन्ने यिनको परिचयबाट जानकारी पाइन्छ। यिनी ४४ औं गोर्खा पल्टनमा सिपाही थिए। शिलाङमै बस्दा सन् १८९७ मा ठुलो भँचालो गएको थियो त्यही घटनालाई आधार बनाई यिनले भँचालाको सवाई शीर्षकको सवाई रचेका थिए। यथार्थमूलक ढङ्गले सामाजिक शोषणको वर्णन, प्रकृतिको चित्रण, सवाई छन्दको प्रयोग, सरल, सहज भाषाको प्रयोग यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(३) मनोरथ उपाध्याय

सन् १९१५ मा तीर्थावली काव्य रचना गर्ने मनोरथ उपाध्याय सन् १८८३ मा गारो हिल्स् मिलिटरी पुलिसमा भर्ना भएका र जमदारको पदसम्म पुगी १५ अप्रेल १९०५ मा रिटाएर भएर तुरामै बसेका थिए। यिनी तुरामा माटोबारी किनी बसेको लिखित प्रमाण उपलब्ध छ तर उनको कविता भने धमिराले खाएर सखाप पारको जीर्ण अवस्थामा भएकाले बुझ्न सकिएन।

(४) पद्मप्रसाद उपाध्याय ढुङ्गाना

पद्मप्रसाद उपाध्याय ढुङ्गानाको जन्म असोज ६ गते १९५६ का दिन फिक्कल इलाममा भएको हो। यिनले वाराणसीबाट शास्त्रीसम्मको औपचारिक शिक्षा प्राप्त गरेका थिए। यिनले केही वर्षसम्म कोच राजाका दरवारिया पण्डितको कार्य गरेका थिए भन्ने बुझिन्छ। सन् १९३०-३१ तिर शिलाङ प्रवेश गरी ठाकुरबाडी मौप्रेम गाउँमा कर्मथलो बनाएर बसेका ढुङ्गाना ज्योतिष र कर्मकाण्डमा निपुण थिए भन्ने जानकारी पाइन्छ। संस्कृतका जाता ढुङ्गानाले मौप्रेममै काव्यसाधना गरेका थिए भन्ने बुझिन्छ। पद्मप्रसादका रामायण-शिक्षा-पद्मप्रकाश-सप्तकाण्डम् धनुष-भङ्ग(१९४०), लक्ष्मण-परशुराम संवाद(१९४०), रामायण सप्तरत्न पद्मप्रकाश(१९४१) आदि काव्य प्रकाशित छन्। रामचरित्रलाई प्रमुख विषयवस्तु बनाई काव्यरचना गर्ने, काव्यमा नीतिशिक्षा, सामाजिक चेतना, विभिन्न शास्त्रीय छन्दको प्रयोग, भाषाशैलीय विन्यासगत सरलता र सहजता आदि यिनका काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(५) गोकुलप्रसाद जोशी

गोकुलप्रसाद जोशीको जन्म जेठ ८ गते १९८७ का दिन गण्डकी अञ्चलको तनहुँ रामपुर खोलाखेतमा भएको हो। सानै उमेरमा टुहुरा भएकाले औपचारिक शिक्षा पाउन सकेनन् तर आफ्नै प्रयासमा कक्षा आठसम्म पढ्न सक्षम भएका बुझिन्छ। सानैदेखि अभाव र समस्यामा बाँचेकाले यिनले अस्तित्वको खोजीमा कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, देहरादुन दार्जिलिङ, गुवाहाटी, शिलाङ आदि ठाउँमा घुम्दै जीवन व्यतीत गरे तापनि कविता तथा गीत रचनामा संलग्न हुनभने छोडेनन्। यिनले धर्मराज थापासँग मिलेर डाँफेचरी द्वैमासिक पत्रिकाको सम्पादन गरेका थिए।^३ यिनका जेठा दाजु शिवलाल जोशी शिलाङको स्टेट बैंकमा काम गर्थे। दाजु शिलाङमा भएका कारणले सन् १९५८ मा यिनी शिलाङ प्रवेश गरेका थिए। यिनी शिलाङमा लगभग चार वर्ष बसेको बुझिन्छ। यही बसाइका क्रममा सन् १९६१ मा यिनले बाँच र बाँचन देऊ नामको कविता सङ्ग्रह रचेका थिए। यो कविता सङ्ग्रह शिलाङको तरुण दलले प्रकाशित गरिदिन्छ। करीब चार वर्षको शिलाङ बसाइपछि विक्षिप्त अवस्थामा यिनी नेपाल फर्कन्छन् र त्यही साल अर्थात् असार ४ गते २०१८, आइतबारका दिन यिनको मृत्यु हुन्छ। यिनी मूलतः प्रगतिशील र यथार्थवादी दृष्टिकोणलाई अभिव्यक्ति दिने कवि हुन्।

(६) दिल साहनी

दिल साहनीको जन्म असार १ गते बिहीबार २००२ तदनुसार १४ जुन १९४५ का दिन बाग्लुङ जिल्ला गलकोटको मल्ल गा०बि०स० अन्तर्गत हलुआ गाउँमा भएको हो। साहनीले पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालयबाट सन्

१९७८ मा अङ्ग्रेजी विषयमा एम्.ए. र सन् १९८४ मा एल.एल.बी. गरेका हुन्।^४ साहनी सन् १९६४ देखि १९७८ सम्म मेघालयमा बसेका र यहाँका विभिन्न साहित्यिक गतिविधिसँग संलग्न रहेको पाइन्छ। यिनले मेघालयमा बस्ता नयाँ चेतना(१९७०), मादल(१९७१), पसिना(१९७७) पत्रिकाको सम्पादन गरेका हुन्। साहनीले 'मेघालय नेपाली भाषा सङ्घर्ष समिति'का मुख्यमन्त्री(१९७२), 'पूर्वाञ्चल नेपाली छात्र सङ्घर्षका सचिव', 'अखिल शिलाङ नेपाली विद्यार्थी सङ्घर्ष समिति'का अध्यक्ष, 'नेपाली साहित्य परिषद् शिलाङ' का मूलसचिव पदमा बसेर काम गरेको बुझिन्छ। *ओइलाएको फूल*(१९६५), कथा यिनको पहिलो रचना हो। यो **सैनिक समाचार** नयाँ दिल्लीमा छापिएको थियो। साहनीका **नौलो माटो चाहिएको छ** (कवितासङ्ग्रह, १९७०), **युगपुरुष(कथासङ्ग्रह (१९७१), नौलो मान्छे(कवितासङ्ग्रह(१९८३), जनाताको शत्रु (एकाङ्कीसङ्ग्रह,१९८३)** आदि कृतिहरू प्रकाशित छन्। यिनका कवितामा प्रगतिशील र यथार्थवादी, परिवर्तनशीलगामी चिन्तनको अभिव्यक्ति पाइन्छ।

(७) धर्मलाल भुसाल

धर्मलाल भुसालको जन्म वि.सं. २००५ का दिन नेपालको अर्घाखाँची मर्याड वडा नम्बर ६ मा भएको हो। यिनी अभिभावकसँग सानै उमेरमा शिलाङ प्रवेश गरेका हुन्। यिनको प्रारम्भिक शिक्षा शिलाङको गोर्खा पाठशाला स्कुलमा भएको हो। यिनले सन् १९७५ मा सन्त एन्थोनी कलेजबाट बी.ए. सम्मको औपचारिक शिक्षा प्राप्त गरेका हुन्। यिनले शिलाङमा शिक्षा ग्रहण गर्दै विभिन्न सामाजिक गतिविधिमा संलग्न रहेको बुझिन्छ। यिनी 'नेपाली साहित्य परिषद्'मा सहसचिव, **मादल** पत्रिकाका सहसम्पादक, 'अखिल नेपाली विद्यार्थी सङ्घ' का सचिव थिए। यिनले **विद्यार्थी(१९७२)** र **छात्रआवाज(१९७२)** पत्रिकाको सम्पादन गरेको पाइन्छ। **मादल** पत्रिकाको पहिलो अङ्कमा छापिएको *पर्खाल* शीर्षकको कथा यिनको पहिलो रचना हो। यिनका **युगको घेराभिन्न मलिन अनुहारहरू(१९७१,कवितासङ्ग्रह)** र **उ क्याङ नडुबा** नाटक प्रकाशित छन्। युगीन कुन्ठाजन्य परिस्थितिलाई स्खन्दतावादी ढङ्गले सरल भाषाशैलीमा प्रस्तुत गर्नु यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(८) गोपीनारायण प्रधान

गोपीनारायण प्रधानको जन्म ७ जनवरी १९३५ का दिन नागरी फार्म दार्जिलिङमा भएको हो। त्रिभुन विश्वविद्यालयबाट नेपाली विषयमा एम्.ए. गरेका र शिलाङको सन्त एन्थोनी कलेजको नेपाली विभागमा शिक्षण गरी निवृत्त भएका प्रधानका **साइलक आइरहेछ!(१९७५), यस्तो भूल पो गरेछु!(१९७८)** र **आकाशले पनि ठाउँ खोजिरहेछ!(२००७)** शीर्षकका तीनवटा कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छन्। यिनले **आशा(१९६४),हाम्रो आशा(१९६६),नेपाली रचनावली(१९८३)** र **नेपाली नवीन पाठसङ्ग्रह(१९९३)** आदि पाठ्यपुस्तक र पत्रपत्रिकाको सम्पादन गरेका छन्।^५ साहित्य अकादमी पुरस्कार(२०११) प्राप्त गरेका प्रधानका स्वखन्दतावादी एवं क्रान्तिकारी चेतना, अन्याय र शोषणको विरोध, निम्नवर्गीय पक्षधरता, जन्मभूमि र कर्मभूमिको महिमागान, प्रकृतिका विविध रूपको चित्रण, परिष्कृत भाषाशैलीय विन्यास आदि प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(९) बलराम पोखरेल

बलराम पोखरेलको जन्म सन् १९४८ मा शिलाङमा भएको हो। गोर्खा पाठशाला अपर प्राइमेरी स्कुल नयाँबङ्गलामा शिक्षण कार्यमा संलग्न रहेका बलराम पोखरेल विगत ३० वर्षदेखि नेपाली कविताको रचना गर्दै आएका छन्। यिनका **जीवन सङ्घर्षदेखि डराएको मान्छे(१९८२)** र **देवरूपा(१९९६)** कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छन्। पहिलो कविता सङ्ग्रहमा ४३ वटा कविता सङ्कलित छन् भने दोस्रो सङ्ग्रहमा ४४ वटा कविता सङ्कलित छन्। सामाजिक कुसंस्कार, अनैतिकता, दुराचार, शोषणको विरोध, सभ्यताको संरक्षण, मुक्तखन्दको प्रयोग, भाषिक सरलता एवं सहजता आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१०) पदम क्षत्री

सन् १९४५ मा तुरामा जन्मेका पदमबहादुर क्षत्री, पदम क्षत्रीका नामले प्रसिद्ध छन्। तुराबाट प्रकाशित हुने एकमात्र पत्रिका **सिमसाङ(१९८४)** का सम्पादक क्षत्रीले तुराका नेपालीहरूको सय वर्षको इतिहास **तुराका**

नेपालीहरू(१९९३) नामक पुस्तक प्रकाशित गरेका छन्। तुराको नेपाली साहित्यिक विकासमा विशेष योगदान दिने क्षेत्रीको **आदिम सङ्क**(१९८५) कवितासङ्ग्रह प्रकाशित छ। नेपाली साहित्य परिषद् गुवाहाटीले प्रकाशित गरेको यस सङ्ग्रहमा यिनका २६ वटा कविता सङ्कलित छन्। अतीतप्रतिको मोह, सामाजिक यथार्थको चित्रण, गरीब एवं शोषितप्रति सद्भाव, व्यङ्ग्यात्मक अभिव्यक्ति आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(११) दुर्गाप्रसाद उपाध्याय

दुर्गाप्रसाद उपाध्यायको जन्म सन् १९५२ मा तुरामा भएको हो। बी० ए० सम्मको शिक्षा ग्रहण गरेका दुर्गाप्रसादको तुराको नेपाली साहित्य विकासमा उल्लेखनीय योगदान रहेको छ। यिनको **कल्पनाको फूल**(१९७७) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस कविता सङ्ग्रहमा दुर्गाप्रसादका विभिन्न शीर्षकका ४८ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। गद्यशैलीमा रचिएका यिनका कवितामा कुण्ठा, आक्रोश, विद्रोह, प्रेम, विछोड, प्रकृति चित्रण आदि प्रवृत्तिहरू रहेका छन्। भाषा सरल,सहज र प्रभावकारी छ।

(१२) रणबहादुर क्षेत्री

रणबहादुर क्षेत्रीको जन्म सन् १९५५ सालमा भएको हो। सानै उमेरदेखि साहित्यमा रुचि राख्दै आएका क्षेत्री मेघालयको नङ्पो नेपाली स्कुलमा हेडमास्टर थिए। यिनले **मेघालय सन्देश** र **नौलो जनादेश** पत्रिकाको सम्पादन गरेका हुन्। साहित्यमा सधैं क्रियाशील रहेका क्षेत्रीका **युग गित**(१९८३), **नौलो गीत : नयाँ कविता**(१९८६), **नरबुडको सवाई**(१९८९), **आमाको पुकार छोराको हुँकार**(१९८९), **यो कविता तिम्रो नाउँमा**(१९९४), **टुक्रैटुक्रा**(१९९९), **तीन दशक:तीस अभिव्यक्ति** आदि काव्यसङ्ग्रह प्रकाशित छन्। जाति र भाषा प्रेम, सामाजिक शोषण, अन्याय, अत्याचारको विरोध, सरल भाषाशैली र सवाई छन्दको प्रयोग आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१३) खेमलाल पोखरेल

खेमलाल पोखरेलको जन्म कात्तिक १ गते २००१ का दिन फिदिम खोलाखेत स्याङ्जामा भएको थियो। सन् १९५१ मा बाबुआमासँग शिलाङ प्रवेश गरेका र यतैका रैथाने भइबसेका खेमलाल पोखरेलको मेघालयको नेपाली साहित्यिक विकासमा विशिष्ट योगदान रहेको छ। इतिहास र अङ्ग्रेजी विषयमा एम्.ए. गरेका र रिभोई कलेजमा इतिहास विषयको प्राध्यापन गरेका र पछि नयाँबङ्लाको नेहरू मेमोरिएल स्कुलमा हेडमास्टर भई कार्य गरेका यिनले **मेघमाला**(१९७७) नामको अङ्ग्रेजी-नेपाली पत्रिका सम्पादन र प्रकाशित गरेका हुन्। खेमलाल पोखरेलका **विश्वशान्ति**(१९८६), **विसङ्गति** र **शान्तिचेत**(१९९६) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित गरेका छन्।^६ यिनका केही कविता **विविध तरङ्ग**(२०६०) मा पनि सङ्कलित छन्। देशप्रेम, जातिप्रेम, जातीय अस्तित्वको खोज, मानवतावादी चिन्तन, विसङ्गति र विकृतिको विरोध, वैचारिक स्पष्टता, मुक्तक छन्दको प्रयोग, सरल एवं परिष्कृत भाषाको प्रयोग आदि यिनका काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१४) मणिसिंह थापा

मणिसिंह थापाको जन्म ५ मई १९३१ का दिन शिलाङको मौप्रेम गाउँमा भएको हो। थापाले धेरै नै कविताहरू रचेका भए तापनि यिनको एकमात्र कविता सङ्ग्रह **कविता-कुञ्ज**(१९९१) प्रकाशित छ। यस सङ्ग्रहमा यिनका विभिन्न समय र विभिन्न विषयमा लेखिएका ३३ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। देशप्रेम, प्रकृतिप्रेम, शान्ति र स्वतन्त्रताको कामना, सामाजिक यथार्थवादी चिन्तन, छन्दमुक्त कविताको सिर्जना आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१५) दिलबहादुर नेवार

दिलबहादुर नेवारको जन्म २७ मार्च १९२२ का दिन नेपालको रामेछापमा भएको हो। आठ वर्षका हुँदा बाबाको मायाबाट बिमुख हुनपुगेका नेवार आर्थिक अभावका कारणले सन् १९४९ मा शिलाङ पसेका थिए। शिलाङ बस्नथालेपछि व्यवसाय गर्दै सन् १९६५ मा यिनले नेपाली भाषा सेवा हेतु **सुमनप्रेस** खोलेको बुझिन्छ। छापाखाना खोली **सुमन** पत्रिका प्रकाशन गर्नुमा यिनको उल्लेखनीय योगदान रहेको छ। यिनले **दुङ्गा बोल्दो हो** (**सुमन** १-१,१९६५) शीर्षकको कविता लेखी साहित्य लेखन थालेको बुझिन्छ। यिनको **इन्द्रेणी**(१९९१) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित

छ।^१ यस सङ्ग्रहमा ६६ वटा कविता सङ्कलित छन्। नेपाली भेषभूषा, भाषा, संस्कृति आदिप्रति सम्मान, सामाजिक यथार्थको चित्रण, छन्दमुक्त कविताको सृजना आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१६) मोतीराम तिमिसना

मोतीराम तिमिसनाको जन्म वि० स० २०१३ का दिन उम्पी उम्सनिङ रिभोई मेघालयमा भएको हो। प्रीयुनिभर्सिटी तथा हिन्दीमा परिचयसम्मको शिक्षा ग्रहण गरेका यिनले गोर्खापाठशाला स्कुल नयाँबङ्गलामा शिक्षक रहेका छन्। धेरै वर्षदेखि शिक्षण गर्दै तथा समाजमा विभिन्न सङ्घसंस्थाको अनुभव प्राप्त गर्दैजाँदा कविभावनाको उद्भव हुँदैगएको बुझिन्छ। यिनको **विस्मृति**(१९९९) नामको कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस लघुकविता सङ्ग्रहमा विभिन्न विषय र भावभूमिमा रचिएका यिनका उन्नाइसवटा कविता सङ्कलित छन्। मोतीराम तिमिसनाका कवितामा गोर्खा जातिको महिमा र वीरताको वर्णन, देशप्रेम, अधिकारको खोजमा भौँतारिएका पूर्वोत्तर भारतमा बस्ने नेपालीहरूका पीडा र व्यथा, अतीत वर्णन, उच्छेदन र वेदनाको वर्णन, अधिकारको खोजी, पूर्ववर्ती कविहरूको महिमा गान, नेपाली भाषा र संस्कृतिप्रति श्रद्धाभाव, जुवातास आदिको विरोध, एकताको आह्वान, मान्छेका बहुरूपी चरित्रको विरोध, सरल गद्य भाषाको प्रयोग आदि प्रवृत्तिहरू पाइन्छन्।

(१७) कृष्णप्रसाद जवाली

कृष्णप्रसाद जवालीको जन्म १८ नवम्बर १९३६ का दिन भएको हो। संकृत, हिन्दी तथा नेपाली भाषाका ज्ञाता कृष्णप्रसाद जवाली सन् १९५३ मा बाबासित शिलाङ आएका थिए। जवाली मेघालयमा पद्मप्रसाद उपाध्यायपछि छन्दमा कविता लेख्ने दोस्रो उल्लेख्य कवि हुन्। शिलाङमा बसेर यिनले **उषा**(१९५९) र **सुमन**(१९६४) नामका दुईवटा पत्रिकाको सम्पादन गरेका हुन्। यिनको **कृष्णप्रसाद जवालीका कविताहरू**(२०००) शीर्षकको कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छ।^१ यस सङ्ग्रहमा विभिन्न समय र भावभूमिमा रचिएका ६६ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। यिनी सन् १९६६ मा नेपाल नरेश श्री ५ महेन्द्रको बाहुलीबाट कविता प्रतियोगितामा सुनको तक्माले पुरस्कृत भएका थिए। धार्मिक, आध्यात्मिक र नैतिक औपदेशिकता, शोषणको विरोध, जाति, भाषा, संस्कृतिको उत्थान, राष्ट्र, राष्ट्रियता आदिको उत्थान, विभिन्न शास्त्रीय छन्दको प्रयोग, सरल,सहज बोधगम्य एवं परिनिष्ठित भाषाको प्रयोग, गयात्मकता आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१८) अनामिक

दार्जिलिङमा जन्मिएकी अनामिकाले राजनितिशास्त्र तथा इतिहासमा एम्.ए. गरेकी हुन्। दार्जिलिङमा दश वर्षसम्म सरकारी महाविद्यालयमा शिक्षणकार्य गरेपछि यिनी शिलाङ प्रवेश गरेकी हुन्। यिनी शिलाङको मैदान लबान नेपाली स्कुलमा कार्यरत छिन्।

अनामिकाका हालसम्म **अन्तरद्वन्द**(२०००) र **नीलकण्ठ**(२००१) नामका दुईवटा कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छन्। यिनको पहिलो कविता सङ्ग्रहमा विभिन्न शीर्षकका ३२ वटा कविता र दोस्रो सङ्ग्रहमा ३३ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। समाजमा व्याप्त शोषण, अन्याय, हिंसा, आतङ्कको विरोध, नारीका विविध पीडा र शोषणको विरोध, पूर्ववर्ती कवि, कलाकार तथा महान् व्यक्तिको महिमागान, प्राकृतिक विचलन,विध्वंस र अराजकताप्रति आक्रोश प्रकट, ओजपूर्ण भाषिक विन्यास आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(१९) हरिप्रसाद जोशी ढकाल

हरिप्रसाद जोशी ढकालको जन्म सन् १९३९ का दिन मेघालयको गारोपहाड अन्तर्गत चानमारी तुरामा भएको हो। प्रवेशीका तथा हिन्दीमा विशारद उत्तीर्ण गरेका जोशीको पहिलो रचना **नामकरण(सहकारी समीक्षा १,१ सन् १९८२)** हो। जोशीले विगत ३३ वर्षदेखि मेघालयमा नेपाली भाषा-साहित्य तथा समाजको सेवा गर्दै आएका छन्। लामो समयदेखि विभिन्न अनुभव बटुल्दै आएका हरिप्रसादका **कर्मवीरको पदचिन्ह**(विविध सङ्ग्रह २००६) र **श्रद्धाञ्जलि**(जीवनी सङ्ग्रह १०१२) गरी दुईवटा कृति प्रकाशित छन्। यिनका विभिन्न समयमा रचेका तेइसवटा कविता **कर्मवीरको पदचिन्ह**मा सङ्कलित छन्। हरिप्रसादका कवितामा धर्मकर्मको महिमागान, अतीत सम्झना, क्षणभङ्गुर

जीवनको चित्रण, गोर्खालीले दिएको योगदान, नेपाली भाषाको महिमागान, कविकलाकारको सम्झना, युद्धहिंसाको विरोध, छोरी-बुहारीमा भेदभाव मेटिनुपर्छ, नेपाल-भारत सम्बन्ध आदि जस्ता विविध विषयको प्रस्तुति, सहज, सरल र बोधगम्य भाषाको प्रयोग आदि प्रवृत्तिहरू पाइन्छन्।

(२०) गीता लिम्बू

गीता लिम्बूको जन्म १४ अप्रेल १९६७ का दिन असमको गोलाघाटमा भएको हो। यिनले समाजशास्त्रमा बी०ए० सम्मको शिक्षा ग्रहण गरेकी बुझिन्छ। यिनको **बिहानी**(२००८) शीर्षकको कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस कविता सङ्ग्रहमा विभिन्न भावभूमि र विषयमा रचिएका लामाछोटा २४ वटा कविता सङ्कलित छन्। शोषण, दमन, अन्याय र अत्याचारको विरोध, नारीका महिमागान, सुधारवादी चिन्तन, मातृभूमि तथा कर्मभूमिको गुणगान, धर्म र दर्शनको महत्व, सरल र सहज भाषाको प्रयोग आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(२१) रामबहादुर शाह

रामबहादुर शाहको जन्म १ अप्रेल १९६१ का दिन मोतीनगर शिलाङमा भएको हो। नङ्थुमाई स्कूल र सन्त एन्थोनी कलेजमा पढेका शाह हाल उत्तरपूर्वीय परिषद् सचिवालय शिलाङमा सरकारी कर्मचारीका रूपमा कार्यरत छन्। यिनको **आत्तिरहेको छु!**(२०११) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित भएको छ। यस सङ्कलनमा यिनका विभिन्न समय र स्थानमा रचिएका लामाछोटा ६३ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। मानवीय स्वभाव, व्यवहार, आचरण आदिको चित्रण, भौतिकवादी चिन्तनको विरोध, व्यङ्ग्यात्मक अभिव्यक्ति, अग्रज कविहरूको महिमागान, नेपाली भाषाप्रति श्रद्धाभाव, स्वच्छन्दतावादी एवं यथार्थवादी भावधाराको प्रस्तुति, भाषाशैलीय विन्यासगत सरलता र सहजता आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(२२) नारायणप्रसाद अधिकारी

नारायणप्रसाद अधिकारीको जन्म १४ अगस्त १९२८ का दिन पर्वत लुङ्खु देउराली नेपालमा भएको हो। यिनले हिन्दीमा विशारद् तथा होमियोपेथीमा डाक्टर गरेका हुन्। 'नेपाली साहित्य परिषद्' शिलाङका सदस्य तथा पन्थरमुखा नेपाली स्कूल शिलाङका संस्थापक रहेका यिनका लामो समयदेखि लेख-निबन्ध आदि विभिन्न पत्रपत्रिकामा प्रकाशित हुँदै आएका छन्। यी रचनादि जीवित कालमा सङ्ग्रहका रूपमा प्रकाशित हुनसकेनन् तर दिवङ्गत भएपछि यिनका पुत्रहरूले **पहाडी दूबो**(२०११) नाम राखेर कविता सङ्ग्रह प्रकाशनमा ल्याएका छन्। यस सङ्ग्रहमा विभिन्न भाव, शीर्षक र समयमा रचेका ४३ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। प्रकृति चित्रण, समाजका विभिन्न पक्षको अभिव्यक्ति, शोषण र अन्यायको विरोध स्वच्छन्दतावादी एवं आर्शवादी भावधाराको प्रस्तुति, सरल, सहज एवं बोधगम्य भाषाको प्रयोग आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(२३) टेकनारायण उपाध्याय

टेकनारायण उपाध्यायको जन्म २१ जुलाई १९६९ का दिन उपर शिलाङ मेघालयमा भएको हो। नेपाली तथा हिन्दीमा एम०ए० एवं विद्यावारिधि गरेका उपाध्याय हाल शिलाङको बुद्ध भानु सरस्वती कलेजमा कार्यरत छन्। स्कूल तथा कलेजका पाठ्यपुस्तकको लेखन एवं सम्पादन गरिसकेका उपाध्यायका नेपाली, हिन्दी र अङ्ग्रेजी भाषाका लेखहरू विभिन्न पत्रपत्रिकाहरूमा प्रकाशित भएका छन्। यिनले **सुमन, युगान्तर, समझौटो** आदि पत्रिकाको सम्पादन पनि गरेका छन्। विगत बीस वर्षभन्दा अधिक समयदेखि काव्यको रचना गर्दै आएका उपाध्यायको **एउटा सहर**(२०११) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित भएको छ। प्रेमका विभिन्न स्वरूपको प्रस्तुति, पुर्खाहरूको महिमागान, स्वतन्त्रता र मुक्तिको चाहना, सहिदप्रतिको सम्मान, नारीमहिमा, भाषिक सङ्कटप्रति चिन्ता, स्वच्छन्दतावादी र यथार्थवादी, राष्ट्रवादी र मानवतावादी भावधाराको अभिव्यक्ति, मुक्तछन्दको प्रयोग, भाषिक सरलता र सहजता आदि यिनका प्रमुख काव्यप्रवृत्ति हुन्।

(२४) बोगे नेवार

बोगे नेवारको जन्म २ अक्टुबर १९४७ का दिन सितलमारी शिडरी असममा भएको हो। नेवार हाल हावाखाना पश्चिम गारो पहाडको तुरामा स्थायी बसोबास गर्दै आएका छन्। लामो समयदेखि मादल, युगान्तर, हामोध्वनि, पृथ्वी, विन्दु, उदय आदि पत्रिकाहरूमा कथा, कविता, निबन्ध र लेखहरू प्रकाशित गराउँदै आएका नेवारको हाल आएर तिमी र म (१९९२) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित भएको छ। तुरा गोर्खा पाठशाला स्वर्ण जयन्ती स्मारिका (१९९६), कबीर साखी सङ्ग्रह (२००३), रोडराम निम्न गोर्खा पाठशाला स्वर्ण जयन्ती स्मारिका (२००८) पत्रिकाका सम्पादक बोगे नेवारको जीवनचक्र (कथा सङ्ग्रह २००८) पनि प्रकाशित छ। तिमी र म कविता सङ्ग्रह अस्सी पृष्ठमा आबद्ध छ भने यसमा विभिन्न भावभूमिमा रचिएका ५२ वटा कविता सङ्कलित छन्। बोगे नेवारका कवितामा राजनैतिक दाउपेचको विरोध, अधिकारको खोजी, मातृभूमि तथा राष्ट्रप्रेम, संस्कृति तथा मानवीय सोचप्रति आस्था, रुढिवादको विरोध, कविकलाकारको सम्मान, लोभलालच र वर्तमान युगमा देखिएका विविध विकृतिप्रति चिन्ता, पुर्खाहरूको महिमागान, लागुपदार्थको सेवनको विरोध, यथार्थवादी चिन्तन, युगीन सन्दर्भका विविध विषयको प्रस्तुतीकरण, सरल, सहज गद्यभाषाको प्रयोग आदि यिनका कवितामा पाइने प्रमुख प्रवृत्तिहरू हुन्।

(२५) दिनेश शर्मा(जवाली)

दिनेश शर्मा(जवाली) को जन्म १ सेप्टेम्बर १९४९ का दिन अपरमौप्रेम शिलाडमा भएको हो। स्नातक र हिन्दीमा भाषा रत्नसम्म गरेका यिनी भारतको केन्द्र सरकारमा जागीर खाएर निवृत्त भइसकेका छन्। यिनले केही वर्ष शिक्षणको कार्य गरेको पनि बुझिन्छ। यिनको प्रथम प्रकाशित रचना घात (पारस, जुन, १९६४) नामको हिन्दी कविता हो। यिनी शिलाडबाट प्रकाशित तरुण पत्रिकाको सहसम्पादक पनि थिए। शिलाडका विभिन्न सङ्घ-संस्थासित जोडिएर लामो समयदेखि यिनले समाजसेवा पनि गर्दै आएका छन्। हिन्दी, नेपाली र अङ्ग्रेजी तीनै भाषामा लेख्नसक्ने यिनको पञ्चतत्वको रहस्य (२०१२) कविता सङ्ग्रह प्रकाशित भएको छ। यस कविता सङ्ग्रहमा विभिन्न समय र अनेक सन्दर्भमा रचिएका विभिन्न शीर्षकका ५५ वटा कविताहरू सङ्कलित छन्। दिनेश शर्मा(जवाली) का कवितामा अग्रज कविहरूको सम्झना एवं महिमागान, मनुष्यका विविध चारित्रिक विशेषता, निर्दयी, पाखण्डी र स्वार्थी मान्छेको विरोध, अधिकारको आह्वान, नारी सम्मान, धर्मकर्म, रितिथिति, संस्कार आदिप्रति आदरभाव प्रकट, जीवनमा पञ्चतत्वको महत्व, अराजकता र राजनीतिक दाउपेचको विरोध, जन्मभूमि, कर्मभूमिको महिमागान, ईश्वरीय सत्ताको स्विकृति, जीवनका विविध यथार्थमूलक वस्तुको चित्रण, छोटो पद र पदावलीको प्रयोग, सरल एवं बोधगम्य भाषाको प्रयोग, गेयात्मकता आदि विविध प्रवृत्तिहरू पाइन्छन्।

माथि प्रकाशनमा आएका कविहरूका कविता सङ्ग्रह बाहेक सयौं कविहरूले कविता सिर्जना गरेका छन् र तिनका कविताहरू विभिन्न पत्रपत्रिकाहरूमा छरिएर बसेका छन्। तल कविता विधामा कलम चलाउने केही महत्वपूर्ण कविहरूको नाम दिइएको छ-

गङ्गाधर पाठक, कमला लामा, प्रेम राई, भुपेन्द्र अधिकारी, हेम जोशी, पीताम्बर पोखरेल, डिल्लीप्रकाश साङ्पाड, होमलाल तिमसिना, मोतीलाल सुवेदी, पदमबहादुर थापा, दुर्गाप्रसाद पौडेल, चन्द्रमणि अधिकारी, ईश्वरीप्रसाद खनाल, तिलबहादुर कार्की, माया ठकुरी, राजासिंह लुम्बू, सरस्वती सोनार, होमनाथ गौतम, रुबी नेउपाने, डीटी जीम्बा, विक्रमवीर थापा, विरेन्द्र तुम्बापो 'प्रतीक', ऋषिराम ढकाल, जङ्गबहादुर थापा, कविराज जवाली, टीकाप्रसाद आर्जेल, प्रकाश शर्मा, भुवानन्द पाण्डे, सीताराम पौड्याल, हरिकुमार प्रधान, पुष्पनाथ शर्मा, चन्द्र लम्साल, दिव्यादेवी सुवेदी, सूर्यप्रसाद अधिकारी, दुर्गाप्रसाद अधिकारी, मधुसूदन अधिकारी, एवमाया छेत्री, धुवनाथ जोशी, दिलु सुवेदी, प्रेम पुन, मञ्जु लामा, यमु पौड्याल आदि।

उल्लिखित कविका कविताहरूले मेघालयको नेपाली कविताको इतिहासमा महत्वपूर्ण योगदान पुराएको देखिन्छ। उल्लिखित कविहरूका कवितामा गरिबी, शोषण, अन्याय, अत्याचारको विरोध, भाषा, जाति, संस्कृतिप्रति आस्था र विश्वास, आक्रोश र विद्रोहको स्वर, युद्ध-हिंसा, आतङ्गवादको विरोध, विश्वमा देखिएका आसङ्गति, दुराचार, भ्रष्टाचार आदिको विरोध आदि जस्ता विशेषताहरू पाइन्छन्।

३. कथा विधामा मेघालयको योगदान

मेघालयमा नेपाली कथाको लेखन सन् १९४० को दशकतिरबाट थालिएको पाइन्छ। सन् १९३३ सालमा हर्कबहादुर शाहीले *वीरकन्या* कथाको अनुवाद गरेपछि कथा लेखनको इतिहास आरम्भ भएको बुझिन्छ तर मौलिक कथा भने सन् १९३६ मा रामप्रसाद उपाध्याय जवालीद्वारा लेखिएको *कलङ्क* (*गोर्खा सेवक*, २/३, सन् १९३६) हो।^{१०} सन् १९३६ र १९६९ का बीच भोलानाथ गुरुङका *भिंसी* (*गोर्खा*, १/२, सन् १९४४), *झण्डा* (*गोर्खा*, १/३, सन् १९४५), *सुन्दरी* (*उषा*, १/१, सन् १९५९), *समर्पण* (*उषा*, १/१ सन् १९६०), सन्तुलाल शङ्करका *सम्झना* (*ज्योति*, १/४, सन् १९५६), *दशैदशा* (*ज्योति*, १/५, सन् १९५६), *निशा* (*हाम्रो आशा*, २/३, सन् १९६६), *तुच्छ जीवन* (*आशा*, २/३, सन् १९६६), *रात बितेपछि* (*सुमन*, १/९, सन् १९६८), श्याम बस्नेतको *त्यो मान्छे* (*फिलिङ्गो*, १/३, सन् १९४५), *दोषी को ?* (*फिलिङ्गो*, १/२, सन् १९५६), डी०आर सुब्बाको *स्वाँगी काली* (*उषा*, १/१, सन् १९५९), अर्जुन निरौलाका *कुखुरे बैँस* (*सुमन*, १/१, सन् १९६५), *नयाँ युग नौलो प्रेम* (*सुमन*, १/३, सन् १९६६) आदि कथाहरू लेखिएका देखिन्छन्। लगभग बीस-पच्चीस वर्षको यस अवधिमा कुनै कथासङ्ग्रह प्रकाशित भएका पाइँदैनन्। सन् १९६९ आएर दिल साहनीले विभिन्न कथाकारहरूका बारवटा कथाहरू सङ्कलन गरेर *कथामञ्च* नाम दिएर सङ्ग्रहका रूपमा प्रकाशित गर्छन्। तल मेघालयमा कथा इतिहासमा हालसम्म कथासङ्ग्रह प्रकाशित गराउने कथाकारहरूको सङ्क्षिप्त परिचय र उनका प्रवृत्तिको चर्चा गरिएको छ।

(१) दिल साहनी

दिल साहनी शिलाङमा विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक गतिविधिहरूसँग संलग्न रहँदै साहित्यको सेवा गरेको बुझिन्छ। साहनीका *कथामञ्च* (सम्प० सन् १९६९) र *युगपुरुष* (१९७१) पथासङ्ग्रह प्रकाशित छन्। यिनका कथासङ्ग्रह शिलाङको परिवेशमा रचिएका छन्। यिनका कथाहरू मूलतः सामाजिक यथार्थवादी र केही अंशमा मनोवैज्ञानिक तथा प्रगतिवादी चिन्तनमा आधारित छन्। नारी पीडा, प्रेम, मित्रता, गरीबी, शोषण, अन्याय, अत्याचार, शिलाङको परिवेशमा हुने, घटने र देखिने दैनिक क्रियाकलाप आदि यिनका कथामा विषय बनेका छन्। साहनीका कथामा पात्रहरूले शहरिया जीवनको प्रतिनिधित्व गरेका छन्। परिवेशसूचक स्थानका रूपमा शिलाङका बजार, पार्क, सल्लाघारी, होटेल, रेस्टुरेन्ट आदि रहेका छन्। कथाको वातावरण रमाइलो, कतै निराशाजनक, उराठलाग्दो तथा हास्यात्मक देखिन्छन्। कथाहरू प्रायः प्रथम पुरुष र तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा लेखिएका छन्। यिनका कथाको भाषा सरल, सहज र परिमार्जित प्रकारको छ।

(२) अर्जुन निरौला

अर्जुन निरौलाको जन्म १९४६ अगस्त १९ का दिन मेघालयको राजधानी शिलाङमा भएको हो। अङ्ग्रेजी विषयमा मास्टर्स गरेका निरौलाले शिलाङको शङ्करदेव कलेज, टी०एन० सिनिएर सेकण्डरी स्कूल गान्तोकमा अङ्ग्रेजी विषयका शिक्षक भई कार्य गरेका हुन् भने साहित्यको माध्यम नेपाली भाषालाई बनाई सहयोग पुराएका छन्। अर्जुन निरौलाका *एउटा रात बितेपछि* (१९७२) र *साँझ सँगसँगै* (१९७९) शीर्षकका दुईवटा कथासङ्ग्रह प्रकाशित छन्।^{११} पहिलो कथासङ्ग्रहमा बारवटा कथाहरू सङ्कलित छन् भने दोस्रोमा एघारवटा कथाहरू समावेश गरिएका छन्। अर्जुन निरौला सामाजिक यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक एवं अस्तित्ववादी कथाकार हुन्। यिनका कथामा नारीका अन्तरद्वन्द्व, अतीत र वर्तमानमा बाँचेका मानिसका कुण्ठा, पीडा, मित्रता, उद्देश्यहीनता, करुणा, भावुकता, संवेदनशीलता, गरिबी, जुवा-तास, जारी जस्ता विषयहरू प्रस्तुत गरिएका छन्। यिनका कथाका कथावस्तु शहरिया परिवेशमा आधारित छन् भने अंशतः ग्रामीण परिवेशलाई पनि लिएका छन्। कथाका सहभागी पात्रहरू प्रायः शहरिया परिवेशबाट टिपिएका छन्। यिनका कथाका अधिकांश पात्रहरू गरीब, जटिलताले ग्रसित, भरिया, मागी खाने, भारी बोक्ने, गधा-घोडा चलाउने तथा निम्नवर्गलाई प्रतिनिधित्व गर्नेहरू छन्। परिवेशसूचक स्थानका रूपमा सिलाङ र यसका वरिपरिका स्थानहरूको उल्लेख गरेका छन्। कथा तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा आधारित छन् भने भाषा अत्यन्त सङ्गठित, परिमार्जित, सरल, सहज र आकर्षित छ।

(३) दिलबहादुर नेवार

दिलबहादुर नेवारले शिलाङ्मा बसेर नेपाली भाषा-साहित्यको उत्थान र विकासमा उल्लेखनीय योगदान दिएका छन्। दिलबहादुर नेवारको **लोककथाको आधार**(१९८१) शीर्षकको कथासङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस कथासङ्ग्रहमा विभिन्न शीर्षकका एक्काइसवटा कथाहरू सङ्कलित छन्।

दिलबहादुर नेवारले उल्लिखित कथासङ्ग्रहमा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक र राजनीतिक विषयमतालाई आधार बनाएर नेपाली समाजका विविध पक्ष तथा विषयको यथार्थ चित्रण गरेका छन्। यी सबै कथामा सामाजिक यथार्थको प्रयोग गरिएको छ। कथामा राजनीतिक कारणले गर्दा नेपालीहरूले भारतीय फौजमा भर्ना हुनुपर्ने बाध्यता, आर्थिक कारणले गर्दा बिदेसिनुपर्ने नेपालीहरूका विवशता चित्रण गरिएको छ। विभिन्न खालका सहभागीको प्रयोग पाइने नेवारका कथामा उच्च र निम्न दुवै पात्रहरूले स्थान पाएका छन्। कथामा साहू, महाजन, मुखिया, नेता, कर्मचारी, साधु, गरीब, कृषक, गोठाला, ढाक्रे जस्ता विभिन्न सहभागीहरूको प्रयोग गरिएको छ। कथाकार नेवारले कथामा चित्रात्मक परिवेशको पनि प्रयोग गरेका छन् भने ग्रामीण परिवेशलाई अधिक महत्त्व दिएका छन्। यिनका कथाको भाषा सरल, सहज, सङ्क्षिप्त र प्रभावपरक रहेको छ। प्रायः तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुको प्रयोग गरिएका कथाहरूले नेपाली जनजीवनलाई महत्त्व दिएका छन्।

(४) विक्रमवीर थापा

सन् १९५० फरवरी २२ का दिन शिलाङ्को बारपत्थर भन्ने ठाउँमा जन्मिएका थापाको नेपाली साहित्यको विकासमा उल्लेखनीय योगदान रहेको पाइन्छ। यिनको व्यक्तित्व बन्दुक, कुची र कलमको सङ्गमले बनेको छ। यिनी कुशल सैनिक, चित्रकार एवं साहित्यकार हुन्। विभिन्न विधामा कलम चलाएका थापाको **बीसौं शताब्दीकी मोनालिसा**(सन् १९९७) शीर्षकको कथासङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस सङ्ग्रहमा विभिन्न शीर्षकका सोरवटा कथाहरू सङ्कलित गरिएका छन्।

सामाजिक, यथार्थवादी र स्वच्छन्दतावादी कथा लेखने थापाका कथामा देखेभोगेका विषय रहेका छन्। नारीसमस्या, साहित्यिक विकृति, नेपाली समाजमा बालबालिकाहरूले खप्नुपरेका समस्या, संस्कृति, भेषभूषाप्रतिको प्रेम, आमाको महिमा, युद्धमा भोगेका पीडा, संस्कार, कुची र कलमको सङ्गम आदि यिनका कथामा पाइने विषयहरू हुन्। यिनका कथामा बन्दुक, कुची र कलमको राम्रो समावेश पाइन्छ। यिनले आफ्ना कथामा उच्च, मध्यम र निम्नवर्गका सहभागीहरूको समावेश गरेका छन्। परिवेशसूचक स्थानका रूपमा थापाले गाउँ, सहर, युद्धको मैदान आदि ठाउँको चयन गरेका छन्। यिनले कथामा प्रथम पुरुष र तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुको प्रयोग गरेका छन्। थापाको भाषा सरल, सहज, परिमार्जित, परिष्कृत, मनमोहक र पात्र तथा विषय अनुकूल रहेको छ। थापा सन्देशमूलक कथाकार हुन्। भाषा, साहित्य, परम्परा र इतिहासलाई यथावत् राखेर आफ्नो परिचय दिन चाहने प्रमुख विशेषता यिनका कथामा पाइन्छ।

(५) अनामिका

अनामिकाको **बादलपारिको आह्वान**(२००२) कथासङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस सङ्ग्रहमा लामाछोट विभिन्न शीर्षकका पन्ध्रवटा कथाहरू सङ्कलित छन्। अनामिकाले यस सङ्ग्रहमा अलौकिक जगत्लाई विषयवस्तु बनाएको पाइन्छ। यिनले आफ्ना कथाहरूमा अलौकिक र वास्तविक जगत्बीच तुलना गरेको देखिन्छ। यिनका कथाको विषय यथार्थ हुँदै अलौकिक संसारमा पुगेको छ र पुनः त्यो यथार्थ संसारमा झरेको छ।

अनामिकाका कथामा पाइने मूल प्रवृत्ति परालौकिक विषयको प्रस्तुति हो। भौतिक जगत्मा असम्भव लाग्ने एवं अविश्वसनीय विभिन्न प्रकारका अलौकिक घटनाहरू घटिरहेका हुन्छन् र मान्छे तिनलाई विश्वयकारी भावले देखेभोगेका हुन्छन्। बादलपारिबाट कसैले बोलाएजस्तो लाग्नु, पहिले नै मृत्यु भइसकेको व्यक्तिसँग भेट हुनु, स्वजनको मृत्युको पूर्वाभाष दिलाउने विभिन्न संयोग हुनुजस्ता अविश्वसनीय एवं असम्भव अलौकिक घटना र विषयलाई यिनले कथात्मक संरचनामा आबद्ध गरेको पाइन्छ। प्राकृतिक अपवादको रूपमा रहेको स्थानको तेस्रो लिङ्गीय बाह्य क्रियाकलापलाई देखाउँदै उसको मनोविश्लेषण गरिएका यिनका कथामा बेरोजगारी समस्यालाई

अत्यन्त कारुणिक ढङ्गमा देखाइएको छ। यिनका कथाका पात्र उच्च र निम्न वर्गीय छन्। परिवेशसूचक स्थानका रूपमा अज्ञात, अलौकिक स्थानको प्रयोग गरिएको छ। कथासङ्ग्रहमा बोल्ने भाषा अलि दार्शनिक भए तापनि सहज, सहज र स्वाभाविक छ। वर्णनात्मक शैलीमा संरचित यिनका कथामा दार्जिलिङ क्षेत्रमा बोलिने भाषिकाको प्रभाव रहेको छ।^{१२}

(६) गीता लिम्बू

कविता विधाबाट साहित्य यात्रा आरम्भ गर्ने लिम्बूको **बूढाबाको छाता**(२००३) कथासङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस सङ्कलनमा उनका साना-ठूला विभिन्न शीर्षकका चौधवटा कथाहरू समावेश गरिएका छन्।

गीता लिम्बूका कथाका विषय हाम्रै वरिपरिका परिवेशबाट लिएको पाइन्छ। समसामयिक युगका यथार्थ समाहित गरी कथा लेख्न गीता सफल देखिएकी छन्। नानीहरूलाई युगानुकूल कस्तो शिक्षा दिनुपर्छ, नारी ठीक भएर उभिनुपर्छ, शोषण, समस्या, निराशा, सहयोग आदि यिनका कथाका प्रमुख विषय हुन्। नारीको सकारात्मक चरित्रलाई मात्र प्रस्तुत नगरी नकारात्मक एवं व्यभिचारिणी रूपलाई पनि देखाएका यिनका कथामा आदर्श समाजको परिकल्पना गरिएको छ।^{१३} स्थानीय परिवेशका अनेक समस्यामा परेका पात्रहरूलाई कथामा सहभागी बनाइएको छ। परिवेशसूचक स्थानका रूपमा मेघालय वरिपरिका विभिन्न ठाउँको उल्लेख गरिएको छ। गाउँ, सहरका मानसिक द्वन्द्व आदि यी कथाहरूमा देखाइएको छ। समाजमा हुने, देखिने ससाना घटना फेरि नघट्टुन् भन्ने उद्देश्य यी कथाहरूमा पाइन्छ। तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुको प्रयोग गरिएका यिनका कथाको भाषा सरल, सहज र बोधगम्य छ।

(७) बोगे नेवार

विविध विषयमा कलम चलाएका बोगे नेवारको **जीवन-चक्र**(२००८) शीर्षकको कथासङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस कथासङ्ग्रहमा नेवारका लामाछोटा विभिन्न शीर्षकका अठारवटा कथाहरू सङ्कलित छन्। सामाजिक यथार्थवादी विषयमा आधारित यिनका कथामा पारिवारिक कलह, रक्सीको दुष्प्रभाव, आतङ्कवादी समस्या, ममता, स्नेह, वेदना, टुहुराटुहुरीको दर्द, स्वार्थी, ढोङ्गी, असहाय, ईश्वरप्रति आस्था, असमर्थता, धोका, विश्वाघात, आशा, निराशा, साहित्यप्रेम, जीवनचक्र आदि जस्ता विषय रहेका छन्। नेवारका कथामा शहर एवं ग्रामीण परिवेश रहेको पाइन्छ। यिनका कथाहरूमा सुख-दुखात्मक परिवेशको आधिक्य रहेको छ। द्वितीय पुरुष दृष्टिविन्दुको आधिक्य पाइने यी कथाले समाजका असङ्गत र विकृतिप्रति आफ्नो विचार केन्द्रित गरेका छन्। नेवारका कथाको भाषा सरल, सहज, बोधगम्य रहेको छ।

माथि परिचय गराइएका कथाकारहरूका कथासङ्ग्रह बाहेक पनि विभिन्न कथाकारहरूले विभिन्न पत्रपत्रिकामा कथाहरू लेखेका छन्। केही प्रमुख कथाकारहरू हुन्- कृष्णप्रसाद जवाली, नरबहादुर राई, रामचन्द्र जोशी, पद्मबहादुर थापा, जङ्गबहादुर थापा, खेमलाल पोखरेल, दुर्गाप्रसाद जोशी, दिनेशकुमार शर्मा, बलराम पोखरेल, भुवानन्द पाण्डे, माया ठकुरी, मणिसिंह थापा, रणबहादुर क्षेत्री, दुर्गाप्रसाद अधिकारी, मोतीलाल सुवेदी, सीताराम पौड्याल, कुसुम थापा, पञ्जूलाल गुरुङ, मञ्जु लामा आदि। पत्रपत्रिकामा छरिएर रहेका धेरैजसो कथाहरूमा नैतिकता, नवीन जानकारी, सत्यता, सन्देश, उपदेश, आदर्श, यथार्थ, गरिबी, शोषण, समसामयिकता, विडम्बना, आक्रोश, सपना आदि विषयवस्तु पाइन्छ। यी कथाहरूमा सरल, गाउँले शोषक, सामन्त, युवक, विद्यार्थी, सिपाही, धनी, लाहुरे आदि सहभागीहरू छन्। यी कथाहरूमा सहरी तथा ग्रामीण दुवै परिवेशको चित्रण गरिएको छ। प्रथम पुरुष तथा तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा आधारित यी कथाले मेघालयका सबै वर्ग तथा विषयमा दृष्टि पुराएका छन्। कतिपय कथाहरूको भाषा व्याकरणिक दृष्टिले केही कमजोर देखिए तापनि सरल र सहज रहेको पाइन्छ।

४. उपन्यास विधामा मेघालयको योगदान

नेपाली साहित्यमा नेपाली उपन्यास लेखनको प्रारम्भ निकै अघि भएको भए पनि मेघालयको नेपाली उपन्यासको सुरुआत निकैपछि आएर भएको पाइन्छ। सन् १९२८ मा धनबहादुर राईले **एकथुँगा फूल** नामको उपन्यास लेखेको भनिए तापनि सो कृति हालसम्म उपलब्ध हुनसकेको छैन। यस दृष्टिले हेर्दा मेघालयको पहिलो नेपाली

उपन्यास सन् १९४८ मा प्रकाशित बबुरबहादुर राणाको **सपना या बिपना** हो। यस उपन्यासलाई आधार मान्दै तल मेघालयको उपन्यास विकासको सङ्क्षिप्त चर्चा गरिएको छ-

(१) बबुरबहादुर राणा

बबुरबहादुर राणाको जन्म सन् १९२४ का दिन अपर मौप्रेम शिलाङ्मा भएको हो। उनले केही नाटक र कथाहरू पनि लेखेका छन्। **सपना या बिपना** एउटा लघु आकारको औपन्यासिक कृति हो। यसमा ४२ पृष्ठ र ७ परिच्छेद छन्। उपन्यासकार आफै उपन्यासका वाचक हुन्। आफ्नी प्रियतमाको प्राप्तिका लागि गरिएको नायकको मानसिक पीडाबाट यस उपन्यासको कथावस्तु निर्माण भएको छ। विगतका रमाइला क्षणविशेषलाई कवितात्मक ढाँचामा वर्णन गर्ने म पात्र यस उपन्यासको मुख्य सहभागी पात्र हो। उसकी प्रियतमा वा अज्ञात प्रेमीकाको संकल्पना पनि म पात्रको कथनद्वारा उपस्थित गरिएको छ। नामहीन पात्रको विगत वर्णन गर्नु सहभागी पात्रको उद्देश्य रहेको छ। परिवेशसूचक स्थानका दृष्टिले हेर्दा यस उपन्यासमा कुनै स्थान, काल आदिको उल्लेख गरिएको छैन। विगतमा घटित मानसिक द्वन्दको वर्णन गर्नु यसको मुख्य उद्देश्य रहेको छ। आदि, मध्य र अन्त्य आदिको पालना नगरिएको यो उपन्यास प्रथम पुरुष दृष्टिविन्दुमा संरचित छ। भाषिक दृष्टिले यो त्यति परिमार्जित र परिष्कृत देखिँदैन। स्थानीय भाषाको प्रभाव यसमा अत्यधिक भएकाले पनि यो अस्वाभाविक बन्नपुगेको छ । आवरण तथा बनोटका हिसाबले यसलाई निबन्धका श्रेणीमा राख्न सकिन्छ तापनि औपन्यासिक गद्य लेखनको लामो परम्परा भने यसले बसाल्न सफल भएको देखिन्छ यसर्थ यसलाई लघु आयामको उपन्यास भन्न सकिने आधार भने अवश्य छ।

(२) अर्जुन निरौला

कथा विधामा कलम चलाएर ख्याति प्राप्त गर्ने अर्जुन निरौलाका **शिशिरको बतास**(१९७२) र **घाम डुबेपछि**(१९७६) दुई उपन्यास प्रकाशित छन्। सामाजिक-यथार्थवादी र अस्तित्ववादी विचारधारालाई आधार बनाएर उपन्यासको निर्माण गर्ने निरौला औपन्यासिक लेखनमा सफल देखिन्छन्।

शिशिरको बतास उपन्यास प्रेमप्रणयमूलक सामाजिक विषयवस्तुमा आधारित छ। बाल्यकालदेखिका साथीका रूपमा रहेका पुरुष र नारी सहभागीका बीचको प्रेमप्रणय, एकअर्काको भावना नबुझेर अर्कैसँगको बैवाहिक सम्बन्ध, असफल प्रेमीको मानसिक दुर्दशा, पुरानो प्रेमीको स्मरणजस्ता प्रेमप्रणयका विविध पक्षको प्रस्तुति पाइने यस उपन्यासमा प्रेमजन्य संवेगको अभिव्यक्ति पनि पाइन्छ। न्यून सहभागीका माध्यमबाट प्रेमप्रणयमूलक विषयलाई प्रस्तुत गरिएको यस उपन्यासका घटनाहरू सामाजिक सन्दर्भसँगै गाँसिएका छन्। प्रेमका सन्दर्भबाट यौनमनोविज्ञानको समेत प्रस्तुति पाइने यो उपन्यास शहरीया परिवेशमा केन्द्रित छ। तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा लेखिएको यस उपन्यासको मुख्य उद्देश्य प्रेमजन्य आवेगको प्रस्तुति रहेको छ। प्रमुख अनुकूल सहभागीको पराजय र प्रमुख प्रतिकूल सहभागीको विजय देखाइएको यस उपन्यासको भाषाशैलीय विन्यास पात्रानुकूल सरल, सहज तथा शैली वर्णनात्मक एवं संवादात्मक रहेको छ।^{१४}

अर्जुन निरौलाको **घाम डुबेपछि** पनि मानवीय प्रेमप्रणयसँगै सम्बन्धित सामाजिक ढाँचामा लेखिएको मनोवैज्ञानिक उपन्यास हो। अबिवाहित युवक र बिवाहिता युवतीका बीचमा भएको प्रेमप्रणय, कामवासना, लोग्ने र स्वास्नी दुवैले अर्काअर्कैसँग यौनसम्बन्ध कायम गरेका घटनाबाट उत्पन्न पारिवारिक मानसिक समस्या आदिको प्रस्तुति यसमा पाइन्छ। प्रेमका नाममा हुने यौनाकर्षण र क्षणिक यौनसन्तुष्टिबाट उत्पन्न समस्यालाई प्रस्तुत गरिएको यस उपन्यासमा नैतिकतासँग गाँसिएका सामाजिक सन्दर्भहरू पनि द्वन्दात्मक ढङ्गबाट चित्रित छन्। कामवासना पूर्तिका लागि बिवाहित महिलालाई उसका रूपसौन्दर्यको वर्णन गरेर फुरुक्क पारी उपयोग गर्नु तर सामाजिक नैतिक बन्धनका कारण उसलाई अस्वीकार गर्नुपर्ने र समाजसापेक्ष सन्दर्भहरू पनि यसमा अभिव्यञ्जित छन्। न्यूनधिक सहभागीका माध्यमबाट यौनजन्य आवेगसंवेगको प्रस्तुति पाइने यो उपन्यास सिमित परिवेशमा केन्द्रित छ। सामाजिक यथार्थको भन्दा यौनमनोविज्ञानको प्रस्तुति मुख्य उद्देश्य रहेको यो उपन्यास तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा संरचित छ। सरल र सहज भाषा तथा वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलीमा लेखिएको यो एउटा

मनोवैज्ञानिक उपन्यास हो।^{१५} समग्रमा प्रेमप्रणयमूलक सामाजिक विषयवस्तुलाई शिक्षित न्यून सहभागीका माध्यमबाट औपन्यासिक संरचना प्रदान गर्ने अर्जुन निरौलाका उपन्यासमा नारी मानसिकताको उद्घाटन विशेष ढङ्गबाट गरिएको छ। यौनमनोवैज्ञानिकलाई विशेष महत्व दिएर परम्परित ढाँचामा लेखिएका यिनका उपन्यासमा मानवतावादी दृष्टिकोण पनि पाइन्छ। उखान, टुक्का र अङ्ग्रेजी शब्द मिश्रित भाषाशैलीय विन्यासमा आबद्ध यिनका उपन्यास सहज र पठनीय छन्। सामाजिक सन्दर्भसँग गाँसेर यौनाकर्षण, यौनावेग, यौनजन्य विकृति आदिलाई प्रस्तुत गर्ने निरौला मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवादी किताका उपन्यासकार हुन्।*

(३) विक्रमवीर थापा

मेघालयको राज्यको राजधानी शिलाङमा बसेर नेपाली साहित्यको सेवा गर्दै विभिन्न विधामा कलम चलाउने विक्रमवीर थापाका **विगतको परिवेशभिन्न**(१९८३), **टिस्टादेखि सतलजसम्म**(१९८६), तथा **माटो बोल्दो हो**(२००७) नामका तीनवटा उपन्यास प्रकाशित छन्।

विगतको परिवेशभिन्न उपन्यास २७५ पृष्ठ र १५ परिच्छेदमा फैलिएको छ। शिलाङको पृष्ठभूमिमा लेखिएको यो पहिलो उपन्यास हो। नेपाली जनजीवनको विषयवस्तुमा केन्द्रित रहेको प्रस्तुत उपन्यासको आरम्भ प्रमुख नारी सहभागी सुधाले रमेशको चिठी पाएपछि गरेको प्रसङ्गबाट भएको छ भने अन्त्य विविध घटनाका साथ सुधाले आफ्नो लोग्ने रमेश शाहीद्वारा लिखित चिठी पढिसकेपछि भएको छ। **विगतको परिवेशभिन्न** उपन्यासमा कथाको विन्यास आदि, मध्य र अन्त्यका क्रममा क्रमिक रूपले भएको छ। विजय र मञ्जुलाको भेट हुनु यस उपन्यासको आदि भाग हो। विजय र मञ्जुलाको सम्बन्ध विकसित हुनु रमेशले आफ्ना घरपरिवारलाई छोडेर छुट्टै बस्नथाल्नु यस उपन्यासको मध्य भाग हो भने विजयलाई क्यान्सरले समात्नु र उसलाई अस्पताल भर्ना गरिनु अनि मञ्जुलाले विजयलाई विष दिएर आफू पनि आत्महत्या गर्नु उपन्यासको अन्त्य भाग हो। ठाउँठाउँमा प्रसङ्ग सम्बद्ध कतिपय विषयमा उपन्यासकारका विचारको प्रस्तुति पाइए पनि ती नारीवादी नभई स्वच्छन्द ढङ्गबाट सामाजिक यथार्थलाई द्योतन गर्ने खालका देखिन्छन्।

यस उपन्यासमा विजय, रमेश, कर्नेल, सुलेमान, डाक्टर आदि पुरुष सहभागी तथा मञ्जुला, सुधा, रमेशकी आमा, रमेशकी बहिनी आदि महिला सहभागीहरूको सहभागिता रहेको छ। परिवेशसूचक स्थानका दृष्टिले हेर्दा यो उपन्यास उत्तरपूर्वी भारतको मेघालय राज्यमा पर्ने शिलाङको सेरोफेरोमा घुमेको छ। यसमा शिलाङ वरिपरिका मौप्रेम, महादेव खोला, सुनाकुरुड आदि ठाउँको उल्लेख पाइन्छ। यो उपन्यास प्रथम पुरुष दृष्टिबिन्दुमा लेखिएको छ। भाषाशैलीय विन्यासका दृष्टिबाट हेर्दा यो शिलाङतिर बोलिने भाषाको प्रयोग गरिएको छ।

परम्परित र प्रचलितभन्दा बेग्लै ढङ्गको बाह्य संरचनामा पन्ध्र भागमा विभाजित तथा आदि, मध्य र अन्त्यको क्रमिक विन्यासमा सङ्गठित **विगतको परिवेशभिन्न** शीर्षक उपन्यास स्वच्छन्द एवं भावुक प्रेममा आधारित विचारमूलक कृति हो यसमा सामाजिक जनजीवनसँग मेल खाने खालका विभिन्न सहभागीहरूका माध्यमबाट कथ्यलाई विश्वसनीय ढङ्गले प्रस्तुत गरिएको छ। शिलाङको सेरोफेरोमा दुखद एवं त्रासदीय वातावरणमा सिर्जित यो उपन्यास भावुक प्रेमको प्रस्तुति आदिका सन्दर्भबाट सोद्देश्यमूलक रहेको छ। प्रथमपुरुष दृष्टिविन्दुको प्रयोग गरी सरल र सहज भाषाशैलीय विन्यासमा विविध विचार र दृष्टिकोण प्रस्तुत गरिएको यो एउटा महत्वपूर्ण स्वच्छन्दतावादी उपन्यास हो।^{१६}

टिस्टादेखि सतलजसम्म उपन्यास १५२ पृष्ठ तथा पूर्वार्ध र उत्तरार्ध गरि २१ खण्डमा फैलिएको छ। शीर्षकका ठीक तल 'अस्तित्वको खोजीमा भौँतारिरहेको उपन्यास' भनेर स्वयं उपन्यासकारले लेखेका छन्। जातीय अस्मिताको रक्षा, नेपाली जातीय चिन्हारी कायम गर्नु तथा भविष्यका सन्ततिहरूका लागि पनि सुरक्षित जिविका र जीवनयापन व्यवस्थाका निम्ति जमर्को गर्नु यस उपन्यासको उद्देश्य हो। स्वच्छन्दतावादी यथार्थवादी तथा जातिप्रेम र राष्ट्रप्रेमको भावनाले पूर्ण भएको यस उपन्यासको मूलस्वर जातीयतावादी रहेको छ। भारतीय सैनिक व्यारेकको आयतनभित्रको यथार्थ चित्रण यस उपन्यासमा गरिएको छ। पृष्ठ १९ बाट कथा प्रारम्भ गरिएको यस उपन्यासमा पूर्वार्धमा सान्

१८१४-१६ मा नेपाल र तत्कालीन इस्टइण्डिया कम्पनीबीच भएको युद्ध त्यसको परिणामको उल्लेख गरिएको छ। युद्धपछि 'सुगौली' सन्धि भएको त्यसको परिणामस्वरूप नेपालीहरू अङ्ग्रेजी पल्टनमा भर्ना हुनथालेको र यो क्रम वर्तमानसम्म जारीरहेको कुरा उल्लेख गरिएको छ। यसको दुखद परिणामले आज नेपालीहरू अलपत्र परेका छन् र उनीहरू यन्त्रजस्तै भएका छन्। यही पृष्ठभूमिलाई आधार बनाई कथावस्तुको संयोजन गरी आदि, मध्य र अन्त्यका माध्यमबाट उपन्यास निर्माण गरिएको छ। असमको जयरामपुरमा बस्ने गजमानको छोरो प्रकाश आर्थिक कारणले मेट्रिकको पढाइ छोडी पल्टनमा भर्ना हुनु यसको आदि भाग हो। पल्टनमा हुँदा मेप रिडिङ बिसेर दक्षिण भारतमा पुग्नु, त्यहीं लीलाध्वजको परिवारसँग भेट हुनु र उनकी छोरी मधूचन्दासँग बिहे हुनु यसको मध्य भाग हो भने प्रकाश र मधूचन्दाबाट छोरो जन्मनु, सम्धी गजमान र लीलाध्वजको भेट हुनु, परिचयका क्रममा दुइजना दाजु-भाइ हुनु, यो थाहा पाएर प्रकाश हराउनु र भोलिपल्ट तिराप नदीमा उसको लाश भेटिनु यसको अन्त्य भाग हो।

उपन्यासमा प्रकाश, कमल, इन्द्रबहादुर, गजमान, लीलाध्वज आदि पुरुष सहभागी पात्र हुन् भने पूर्णिमा, कौशल्या, धनमाया, मधूचन्दा आदि महिला सहभागी हुन्। परिवेशसूचक स्थानका दृष्टिले यो उपन्यास असमको जागुन, शिलाङ त्रिचन्नावल्ली आदि ठाउँको सेरोफेरोमा घुमेको छ। यी क्षेत्रमा बस्ने नेपालीहरूको ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रहनसहन प्रस्तुत भएको छ। यसमा सुखदभन्दा दुखद वातावरणको बढी प्रयोग भएको छ। यो उपन्यास प्रथम पुरुष दृष्टिविन्दुमा प्रस्तुत गरिएको छ। भाषाशैलीय विन्यासका दृष्टिले हेर्दा उपन्यासमा असम तथा शिलाङतिरको र देहरादुनतिरको भाषाको प्रयोग गरिएको छ। भारतीय परिवेश विशेष गरी पूर्वोत्तर भारतका मेघालय र असममा गोर्खाली-नेपालीहरूले भोग्नुपर्ने, उनीहरूप्रति आइपर्ने राजनीतिक आपत्ति र विशेष गरी सुगौली सन्धिपछि विश्वव्यापी भएर टुक्रिएर आफनाले आफनालाई चिन्न नसक्ने, आफ्नै दाजु-बहिनीबीच बिहेसम्म हुने दुखद एवं त्रासदीय घटना देखाउनु यस उपन्यासको मूल उद्देश्य रहेको छ।

माटो बोल्दो हो उपन्यास विक्रमवीर थापाको पछिल्लो उपन्यास हो। यो उपन्यास उनका अघिल्ला दुई उपन्यास भन्दा भिन्दै ढङ्गमा रचिएको छ। सामाजिक विषयवस्तुमा आधारित यस उपन्यासको कथावस्तु आफ्नो जन्मस्थान बारपत्थरबाट थालिएको छ। मुना सांस्कृतिक सङ्घले प्रकाशित गरेको **गोडधुवा**को सन्दर्भमा सन् २००३ मा लेखेको सन्दर्भ र कुशलसिंह थापा मगरले लेखेको भूमिकापछि आरम्भ भएको यो उपन्यासभित्रको उपन्यास **गोडधुवा** बाइस परिच्छेदमा विस्तारित छ र आखिरमा उपसंहार 'क' र 'ख' मा पुगेर समाप्त भएको छ। जन्मभूमि अर्थात माटोको माया कति प्यारो हुन्छ भन्ने सन्देश यस उपन्यासमा देखाइएको छ।

यस उपन्यासमा पूर्णबहादुर राई, गगनबहादुर गुरुङ, कुशलबहादुर थापा मगर, मनबहादुर छेत्री, सुदीपबहादुर थापा, टङ्कबहादुर लिम्बु लीलबहादुर थापा आदि पुरुष सहभागी पात्र हुन् भने सरु, दिया, दिदी आदि स्त्री पात्र हुन्। परिवेशसूचक स्थानका दृष्टिले यस उपन्यासमा शिलाङ, उरियामघाट, सरूपथार, देवीपुर, टोकलोङ, लेखापनी, मार्घेरिटा आदि ठाउँको उल्लेख छ। यी क्षेत्रमा बसोबास गर्ने नेपाली जातिका रहनसहन ऐतिहासिक सन्दर्भ पाइन्छ। यस उपन्यासमा समयको स्पष्ट उल्लेख गरिएको छ। सुख-दुखात्मक दुवै वातावरणको सन्दर्भ देखाइएको भए तापनि यो उपन्यास सुखद वातावरणमा पुगेर सकिएको छ। प्रथम पुरुष तथा तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा संरचित यस उपन्यासको भाषा सहज, सरल र आकर्षक छ।

संरचनागत विविधताका साथ उपन्यास सिर्जना गर्ने उपन्यासकार विक्रमवीर थापाका उपन्यास प्रचलित ढाँचाअनुरूप सोझै प्रस्तुत नगरी सन्दर्भ र पृष्ठभूमिको उल्लेखका साथ काल्पनिक लेखकको सिर्जना गरी उसैका माध्यमबाट उपन्यास लेखिएको भ्रम दिन खोजिएको छ। यसरी काल्पनिक लेखकको सिर्जना गर्ने क्रममा यिनका **विगतको परिवेशभित्र** उपन्यासका लेखक रमेश शाही तथा **माटो बोल्दो हो** शीर्षक उपन्यासका लेखकमा कुशलसिंह थापा मगरको नामोल्लेख गरी कुशलसिंह थापा मगरद्वारा लिखित उपन्यास **गोडधुवा** हो भनेर नौल्याइँ प्रदान गर्ने खोजिएको छ। यसरी उपन्यासभित्र काल्पनिक उपन्यासको सिर्जना गरी प्रचलित र परम्परित ढाँचाभन्दा भिन्न ढङ्गले प्रयोगशील संरचनाका उपन्यास सिर्जना गर्नु उपन्यासकार विक्रमवीर थापाको संरचनागत वैशिष्ट्य हो।

१. निबन्ध विधामा मेघालयको योगदान

मणिसिंह गुरुडद्वारा लेखिएको *सच्चरित्रता नै उन्नतिको मूल मन्त्र हो* (चन्द्रिका, कला ३-४, सन् १९१८) निबन्ध प्रकाशित भएपछि मेघालयमा नेपाली निबन्ध लेखनको इतिहास प्रारम्भ भएको हो। आरम्भमा मणिसिंह गुरुडद्वारा लेखिएका निबन्ध दार्जिलिङ आदिका पत्रपत्रिकाहरूमा प्रकाशित भए। मेघालयमा भने मणिसिंह गुरुडको सम्पादनमा निस्केको पत्रिका **गोर्खा सेवक** (१९३६) प्रकाशनपछि नियमित रूपले निबन्धहरू लेखनथालिएको बुझिन्छ। **गोर्खा सेवक, फिलिङ्गो, उषा, सुमन मादल, अछेता, युगान्तर, कोसेली** आदि पत्रपत्रिकाहरूले निबन्ध लेखनलाई अघि ल्याउन प्रशस्त सहयोग पुर्याएका छन्। निबन्ध लेखनको ९० वर्षको इतिहासमा धेरै निबन्धहरू लेखिए तापनि पुस्तकाकार कृति भने सीमितरूपमा प्रकाशित भएका छन्। तल हालसम्म प्रकाशनमा आएका निबन्ध र निबन्धकारको सङ्क्षिप्त परिचय दिइएको छ-

(१) कृष्णप्रसाद जवाली

सन् १९६६ मा **फूलपाती** पत्रिकामा *गुराँस र गुराँसका फूल* निबन्धबाट कृष्णप्रसाद जवालीले निबन्ध लेखनको आरम्भ गरेका हुन्। कृष्णप्रसाद जवालीको **पीपलको छहारी** (वि०स० २०२३) निबन्ध सङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस निबन्ध सङ्ग्रहमा यिनका विभिन्न शीर्षकका बारवटा निबन्ध सङ्कलित छन्।

निबन्धकार कृष्णप्रसाद जवालीले प्रकृतिको विशेषता, हाम्रो संस्कृतिको महिमा, साहित्यकार कस्तो हुनुपर्छ र उसको साहित्यिक दायित्व के हो, हाम्रा साहित्यिक महारथी कसरी हाम्रा प्रेरणादायी बनेका छन् आदि विषयवस्तुमा निबन्ध सिर्जना गरेका छन्। जाति, भाषा, संस्कृतिप्रति विशेष आस्था भएका जवालीले भाषा र पहिरन हराए जाति बिलाउँछ भन्ने गर्थे। जवालीको निबन्धको भाषा सरल, सहज, परिष्कृत, परिमार्जित, कलात्मक र प्रभावकारी छ। संस्कृत भाषाका कोमल शब्दको प्रयोग गरेर भाषालाई मीठो र हृदयग्राही बनाउनमा यिनी सिपालु छन्। संस्कृति, प्रकृति, जाति महिमा, साहित्यकारहरूको महत्त्वलाई निबन्धात्मक रूप दिन यिनी सिपालु छन्। जन्मभूमिको गुणगान, वैयक्तिक जीवनको भोगाइ, लोकोक्ति आदिको सरल प्रयोग यिनका निबन्धात्मक प्रवृत्ति हुन्।

(२) दिलबहादुर नेवार

दिलबहादुर नेवार नेपाली साहित्यका बहुमुखी प्रतिभा हुन्। यिनका **विचारमा दुबेको मान्छे** (१९७७), **मेरा बितेका दिनहरू** (चार भागसम्म, सन् १९७७-१९८४), **यात्रा संस्मरण** (२००३) निबन्ध सङ्ग्रहहरू प्रकाशित छन्।

विचारमा दुबेको मान्छे निबन्ध सङ्ग्रहमा विभिन्न विषय र भावमा रचियका एककडसवटा निबन्धहरू सङ्कलित छन्। यसमा कतिथि सत्कार, परम्परा, मानसिक चिन्तन, गरिबी, अपमान, अन्याय, अपराध, सुख-दुख आदि विविध विषय रहेका छन्। **यात्रा संस्मरण** निबन्धमा नेवारले विभिन्न देश तथा स्थानमा भ्रमण तथा यात्रा गरेका अनुभवको यथार्थ वर्णन गरेका छन्। **मेरा बितेका दिनहरू** निबन्ध चार भागमा फैलिएका छन् र यी आत्मकथात्मक शैलीमा रचिएका छन्। यी आत्मपरक निबन्धमा नेवारले बाल्यकालदेखि गरेका सङ्घर्षको वर्णन गरिएको छ। जीवन भोगाइका क्रममा व्यतीत गरेका पल, समय, कार्य, कठिनाइ आदि विषयलाई नलुकाइकन यिनले प्रस्तुत गरेका छन्। नेवारका निबन्ध र आत्मकथा सोद्देश्यपूर्ण छन्। सबै निबन्ध तथा आत्मकथाको भाषा सहज, सरल र आकर्षक छ। साधारण भन्दा साधारण पाठकले पनि यिनका निबन्ध सहजै बुझ्न सक्छन्।

(३) विक्रमवीर थापा

कथा तथा उपन्यास लेखेर ख्याति प्राप्त गरेका विक्रमवीर थापा एकजना सफल निबन्धकार पनि हुन्। यिनका **हत्या रातो डायरीको** (१९९४), **मणिसिंह गुरुड** (२०१०) गरी दुईवटा जीवनीपरक निबन्धहरू प्रकाशित छन्। हत्या रातो डायरीको अनुसन्धानात्मक संस्मरण हो। यसमा हरिभक्त कटुवालको जीवनमा घटेका घटना, उनीद्वारा रचिएका सामग्री भएको डायरी हराएको घटनाका विभिन्न प्रसङ्गलाई रोचक ढङ्गले वर्णन गरेका छन्। रातो डायरी कहाँ हरायो, यसलाई कसले प्रयोग गर्यो भन्ने घटनाको विविध पक्षको रोचक अन्वेषण गरेका छन्।

यिनको दोस्रो जीवनीपरक निबन्ध **मणिसिंह गुरुङ** हो। यस जीवनीपरक निबन्धात्मक कृतिमा मणिसिंह गुरुङको जन्म, शिलाङमा उनले दिएको योगदान आदि विविध पक्षको उल्लेख भएको छ। नौ परिच्छेदमा संरचित यस कृतिमा मणिसिंह गुरुङको जीवनीका साथसाथै शिलाङमा नेपालीहरूको आगमन र बसोबासको इतिहास पनि देखाइएको छ। दुवै कृतिको भाषा सहज, सरल, आकर्षक छ।

(४) एन०पी० मुक्तान

सन् १८९४ को अगस्ट २५ का दिन असम बिहाली मौजामा जन्मिएर शिलाङमा बसोबास गरेका नरपति मुक्तानको **सम्झना**(१९९२) निबन्धात्मक कृति प्रकाशित छ। यो एउटा जीवनीपरक निबन्धात्मक कृति हो। यसमा ससाना शीर्षकद्वारा विषयवस्तुलाई स्पष्ट पारिएको छ। नरपतिको जीवनीमा आधारित यस कृतिमा उनको शिक्षा, नोकरी, कमिसन एजेन्ट, बाइस्कोप कम्पनी, मोटर गाडी चलाउने, ठेक्कापट्टा गर्ने इमानदार समाजसेवी बनेर गरेको कर्मको उल्लेख गरिएको छ। उनी मिहिनेती, इमानदार, तीक्ष्णबुद्धि भएका, धार्मिक र कर्तव्यनिष्ठ र कर्तव्यपरायण व्यक्ति थिए भन्ने विशेषता यसमा उल्लेख गरिएको छ। यसको भाषा सहज, सरल र बोधगम्य छ।

(५) डी०पी० जोशी

डी० पी० जोशीको जन्म सन् १९४४ जुन १ तारिकका दिन लाबान शिलाङमा भएको हो। यिनी सन् १९६९ देखि नड्थुमाई नेपाली स्कुलमा शिक्षक र पछि त्यहीं हेडमास्टर, प्रिन्सिपल भई रिटायर भइसकेका छन्। आजीवन शिक्षण कार्यमा संलग्न रही निवृत्त भएका जोशी मेघालय राज्य शिक्षक पुरस्कारले सम्मानित पनि भएका छन्। लामो समयदेखि शिक्षण कार्यमा संलग्न रहेका जोशीका **मरेको सिपाही**(२००२), **जिउँदो सिपाही**(२००६), **मेरो यात्रा स्वर्णमन्दिर परिसरमा**(२००८), **मेरो युरोप यात्रा**(२००९), **केन्सर रोगमाथि विजय**(२०११), **मेरो केनाडा यात्रा**(२०१३) र **मेरो यात्रा देश परदेश**(२०१४) निबन्ध सङ्ग्रहहरू प्रकाशित छन्।

डी०पी० जोशीका निबन्ध सङ्ग्रहहरूमा देखे, भोगेका, अनुभव गरेका, जीवनमा घटेका, सत्य, रोचक, आकर्षक, विविध स्थानमा जाँदा भएका रोचक संस्मरण, यात्रा वर्णन, देश-विदेश घुमेर पाएका जानकारी, खेलाडी, प्रशिद्ध पुरुष आदिका प्रेरणादायी घटना, नेपाली शहीदहरूका प्रेरक प्रसङ्ग, समाजका प्रशिद्ध व्यक्तिहरूको परिचय आदि विषयहरू पाइन्छन्। सरल, सहज र आकर्षक भाषामा लेखिएका यिनका निबन्ध रोचक र जानवर्धक छन्। जहाँ जुन विषय जस्तो छ त्यसलाई नलुकाइकन अभिधात्मक शैलीमा वर्णन गर्नु यिनका विशेषता हुन्।

(५) सीताराम पौड्याल

सीताराम पौड्यालको जन्म १ मार्च १९५८ का दिन उमरान डायरी रिभोई मेघालयमा भएको हो। यिनी हरिप्रसाद पौड्याल तथा चित्रलेखा पौड्यालका सुपुत्र हुन्। यिनले औपचारिक रूपमा आइ०ए० तथा कोविदसम्मको शिक्षा प्राप्त गरेका बुझिन्छ। यिनी गोर्खा एल०पी(सेकण्डरी) स्कुल अपर शिलाङमा प्रधान शिक्षकका रूपमा कार्यरत छन्। **प्रियसीलाई प्रेमपत्र**(सपना, सन् १९९०) नामक कविताविधाबाट यिनले आफ्नो साहित्यिक यात्रा आरम्भ गरेका हुन्। यिनले **भुवन**, **मायालु**, **कोसेली** आदि पत्रिकाको सम्पादन गरेका छन्। यिनका विभिन्न विधाका पचास भन्दा अधिक रचनाहरू विभिन्न पत्रपत्रिकाहरूमा प्रकाशित छन्। व्यङ्ग्य विधालाई विशेष प्रकारले रुचाउने सीतारामको **दर्शको बोको पनि माइकमा**(२०१३) हास्य व्यङ्ग्य निबन्ध सङ्ग्रह प्रकाशित भएको छ। यस सङ्ग्रहमा विभिन्न भावभूमि र विषयमा रचिएका तेत्तीसवटा हास्य व्यङ्ग्यात्मक निबन्धहरू सङ्कलित छन्। भ्रष्टाचार र असङ्गतिप्रति व्यङ्ग्य, समाजमा प्रचलित, विविध प्रकारका चलन, विविध प्रकारका आस्था र विश्वसप्रति घोंचपेंच, युगौंदेखि समाजमा मान्दै आएका भूतप्रेत र अन्धविश्वासप्रति कटाक्ष, आधुनिक मानवविरोधि हिंसा, अत्याचार, शोषणप्रति तीव्र विरोध, प्रलोभन, नातावाद, कृपावाद, चाकरीबाज आदि जस्ता विषयप्रति कटु आलोचना, महङ्गी, लाचारी, गरिबी आदि विषयको विरोध, स्वार्थी, चापलुशी जस्ता विसङ्गतिको उद्घाटन आदि जस्ता अनेक सामाजिक यथार्थताको चित्रण सीताराम पौड्यालका निबन्धका प्रमुख विषय हुन्। प्रथम पुरुष दृष्टिविन्दु तथा तृतीय पुरुष दृष्टिविन्दुमा संरचित यिनका निबन्धले समाजमा विद्यमान आसङ्गतिप्रति तीखो व्यङ्ग्य गरेको पाइन्छ। शहरिया परिवेशलाई

केन्द्रविन्दुमा राखेर रचिएका निबन्धले मध्यमवर्गीय परिवारलाई कन्द्रित गरेको छ। यिनका निबन्धको भाषा सहज, सरल र बोधगम्य छ।

माथि आएका केही निबन्ध सङ्ग्रह बाहेक पत्रपत्रिकामा पनि बिभिन्न प्रकारका निबन्धहरू छापिएका छन्। यी मध्ये केही निबन्धकारहरूले ख्याति प्राप्त गरेका छन्। यस्ता निबन्ध लेखनेहरूका नाम तल दिइएको छ- मोतीराम उपाध्याय, भुवानन्द पाण्डे, डी०टी० जिम्बा, ध्रुवसिंह रावत, ध्रुवनाथ जोशी, वसन्तराज जोशी, चन्द्रमणि अधिकारी, रूबी नेउपाने, चेतनारायण जोशी, हरिप्रसाद शर्मा, मोतीलाल सुवेदी, बलराम पोखरेल, खेमलाल पोखरेल आदि।

६. नाटक विधामा मेघालयको योगदान

नेपाली नाटकको लेखन परम्परा लामै भए पनि मेघालयको नाटक लेखनको परम्परा त्यति लामो र समृद्ध भएको पाइँदैन। सन् १९३० का दशकमा तुरामा नेपाली ड्रामेटिक क्लबले बङ्गाली भाषाबाट श्रीकृष्णकुरुक्षेत्र नामको नाटक अनुवाद गरेर नाटक मञ्चन गरिने परम्परा थालेको बुझिन्छ। महाराणाप्रताप, हरिश्चन्द्र, नयाँजमाना, गुरुदक्षिणा, हरधनुषभङ्ग, अभिमन्युबध, रुस्तम शोहराब, हरिश्चन्द्र आदि नाटकहरू चालीसका दशकमा तुराबाट मञ्चन गरिएका पाइन्छन्। श्रवणकुमार, खिजिर खान, राजपुत रमणी, जङ्गली कमल, बाटुली, मुकुन्द-इन्दिरा, भक्तभानुभक्त, विजयवसन्त, तारा रोएको बेला, उषा, टिपु सुल्तान, अभिमन्यु बध, भिष्म प्रतिज्ञा, अभागिनी, गङ्गालालको चिता, सफेद खुन, किङ्गलियर आदि साठी र सत्तरीका दशक अनि अँध्यारोमा बाँच्नेहरू, अन्धो तकदीर, अभिमान, विजयवसन्त, अपराधी को?, जयद्रथबध,, परालको आगो, पाउरोटी बिस्कुट आदि अस्सीका दशकमा मञ्चित नाटकहरू हुन्। अस्सीको दशकपछि तुरामा नाटक मञ्चन एवं लेखन मृतप्राय हुन्छ र सो हालसम्म कायम नै छ। यता शिलाङ्मा जिउँदो लाश, दसैँको टीका, सिपाही, बलिदान, सुबेदारकी छोरी, भक्त अम्बरीश, शकुन्तला, मर्चामृत, उषा, भूत, पचास रुपियाँको तमसुक, भोलारामको प्राण, इतिहास यही भन्छ, जनताको शत्रु, ज्वाला, बिछोड, हाम्रो अस्तित्व, न्वारनमा निम्तो, आधुनिक शिक्षा, खोक्रो संसार, नङ्क्रेम नृत्य आदि नाटकहरू मञ्चन गरिएका पाइन्छन्। मेघालयमा नाटक विधामा कलम चलाउनेहरूमा डल्लीनाथ उपाध्याय, यज्ञनिधि भट्टराई, जगतबहादुर लुङ्गेली, बबुरबहादुर राना, हर्कबहादुर शाही, डी०आर० सुब्बा, मणिसिंह थापा, तुलबहादुर मालेमा, आर०के सिंह, दिल साहनी, भुवानन्द पाण्डे, गङ्गा जोशी, गोपीनारायण प्रधान आदि प्रमुख हुन्।

मेघालयको नाटक लेखन सामान्य स्तरको रहेको छ। धेरैजसो नाटक अनुवाद गरेर मञ्चन गरिएका छन्। मौलिक नाटक थोरै मात्र नाटककारहरूले लेखेका छन्। लेखिएका नाटकहरू पनि सामान्य स्तरका छन् भने धेरैजसो नाटक साधारण मनोरञ्जनका लागि लेखिएका हुन्। पुस्तकाकार रूपमा पनि यी नाटकहरू परिवर्तन भएका पाइँदैनन्। अस्सी वर्षको नाटकको इतिहासमा टी० कार्कीको विजयका हातहरू(१९९०) नाटक सङ्ग्रह प्रकाशित छ। यस सङ्ग्रहमा चारवटा एकाङ्की सङ्कलित छन्। सामाजिक विषयमा आधारित यी नाटकहरूले शोषण र अन्याको विषयलाई अघि बढाएका छन्। शहरिया परिवेशमा रचिएका यी नाटकले सरल र सामान्य वर्गका मान्छेमाथि हुने अन्याय र अत्याचारको विरोध गरेको छ। सोदेश्यमूलक रहेका यी नाटकको भाषा सहज, सरल र बोधगम्य छ।

७. पत्रपत्रिका विधामा मेघालयको योगदान

मेघालयमा नेपाली पत्रपत्रिकाको इतिहास त्यति पुरानो नभए तापनि यसको इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण छ। पचहत्तर वर्षको पत्रकारिताको इतिहासमा केही महत्वपूर्ण र प्रभावकारी पत्रिकाहरू निस्केका छन् तर यी दीर्घकालीन बन्नसकेनन्। यहाँबाट प्रकाशित पत्रपत्रिकाहरूले यहाँको नेपाली साहित्यलाई विकास गराउन र अघि बढाउन ठूलो सहयोग गरेका छन्। यी पत्रपत्रिकाहरूले केही महत्वपूर्ण र प्रभावशाली साहित्यकारहरूलाई अघि ल्याउन महत्वपूर्ण भूमिका खेलेका छन्। यी पत्रपत्रिकाका मध्यमद्वारा रामारामा कृतिहरू बन्नसकेका छन्। मेघालयबाट प्रकाशनमा आएका पत्रपत्रिकाहरूको उल्लेख तल गरिएको छ-

गोर्खा सेवक(सम्पा० मणिसिंह गुरुङ, सन् १९३६), फिलिङ्गो (सम्पा० नारायण गुरुङ, सन् १९३८), जागृति(सम्पा० गणेशबहादुर, १९४९), ज्योति(सम्पा० हर्कबहादुर सुब्बा, १९५६), असम गोर्खा(सम्पा० भोलानाथ गुरुङ, १९५७), उषा(सम्पा०

मणिसिंह थापा,१९५९), सुमन (सम्पा० कृष्णप्रसाद जवाली,१९६५), आशा(सम्पा० गोपीनारायण प्रधान,१९६४), हाम्रो आशा(सम्पा० गोपीनारायण प्रधान,१९६६), सिस्नु(सम्पा० कपिल गुरुङ,१९६७), अभिनय(सम्पा० प्रितमबहादुर छेत्री,१९६७), तरुण (सम्पा० कुलप्रसाद उपाध्याय,१९६९),नयाँ चेतना(सम्पा० दिल साहनी,१९७०), मादल (सम्पा० दिल साहनी,१९७१), भुवन(सम्पा० गोर्खास्कुल,१९७१), विद्यार्थी(सम्पा० धर्मलाल भुसाल,१९७२), गोरेटो(सम्पा० तुलबहादुर मालेमा,१९७२), पोडे दाइ(सम्पा० दाजुरिङ्गे,१९७२), छात्र आवाज(सम्पा० धर्मलाल भुसाल,१९६४), रेखाचित्र(सम्पा० भूपेन्द्र अधिकारी,१९७३), मेघमाला (सम्पा० खेमलाल पोखरेल,१९७३), प्रशान्ति (सम्पा० सी०बी० लामा,१९७३), पूर्वालोको (सम्पा० भूपेन्द्र अधिकारी,१९७५), जनशक्ति(सम्पा० पदम गिरी,१९७६), हुरी (सम्पा० तीलबहादुर कार्की,१९७७), नेपाल फर्क(सम्पा० ईश्वरीप्रसाद खनाल,१९७७), नौलो सृजना (सम्पा० रणबहादुर क्षत्री,१९७७), पूर्व सन्देश(सम्पा० भूपेन्द्र अधिकारी,१९७९), अछेता (सम्पा० हेम जोशी,१९८०), सहकारी समीक्षा (सम्पा० दिलबहादुर नेवार,१९८२), सम्झौटो (सम्पा० कृष्णप्रसाद जवाली,१९८२), चौबाटो (सम्पा० विरेन्द्र तुम्बापो,१९८६), पूर्व चेतना (सम्पा० बी० आर० पौडेल,१९७७), अब जाग (सम्पा० नर राई,१९८८), युगदृष्टि (सम्पा० विक्रमवीर थापा,१९८९),पौरख (सम्पा० प्रकाश शर्मा'सङ्गम',१९९२),युगान्तर (सम्पा० विक्रमवीर थापा,१९९४), देवकोटा स्मारिका (सम्पा० मोतीलाल सुवेदी,१९९६), कोसेली (सम्पा० मोतीलाल सुवेदी,१९९६), स्वर्ण जयन्ति स्मारिका (सम्पा० तुरा निम्न प्रा० विद्यालय,१९९७), पुष्पाञ्जलि (सम्पा० दुर्गामन्दिर शिलाङ,२००२), सम्झौटो (सम्पा० टेकनारायण उपाध्याय,२००४) आदि।

८. मेघालयमा नेपाली भाषाको विकासमा शैक्षिक संस्थानहरूको योगदान

सन् १८६७ मा मेघालयमा गोर्खाली पल्टनको प्रवेशसँगै नेपाली भाषाको पनि प्रवेश भएको हो। यसै क्रममा १८७६ मा गोर्खा पाठशालाको प्रारम्भिक विजारोपण भएपछि विस्तारै नेपाली भाषाले विकास गर्ने मौका पायो र आज विभिन्न शैक्षिक संस्थाहरूले यसलाई अघि बढाइरहेका छन् । मेघालयमा अवस्थित जातीय शैक्षिक संस्थानहरूको परिचय तल दिइएको छ-

गोर्खा पाठशाला उच्च माध्यमिक विद्यालय(१८७६), मौप्रेम प्रेसबिटेरिएन एल०पी० र एम०ई० स्कुल(१९३६),नेपाली कन्या पाठशाला स्कुल(१९३७), गोर्खा सेकण्डरी स्कुल(१९४६),केटोन्मेन्ट बोर्ड नेपाली स्कुल(१९४७), गोर्खा स्कुल तुरा(१९४६), गोर्खा पाठशाला सेकेण्डरी स्कुल नयाँबङ्गला(१९५२), गोर्खा माईपर्वत स्कुल(१९५६), नडथुमाई नेपाली स्कुल(१९५७), मैदान लाबान नेपाली स्कुल(१९५७), सूर्योदय नेपाली स्कुल रीभोइ, सहयोगी नेपाली स्कुल वर्नीहाट(१९५९), पाउन्थरमुखा नेपाली स्कुल(१९६१), भानुभक्त नेपाली स्कुल(१९६२), मौप्रेम मोर्डन स्कुल(१९६४), लुम्पारिड नेपाली स्कुल(१९६५), नडपो नेपाली स्कुल(१९७५), सङ्गम नेपाली स्कुल(१९८७), बुद्ध भानु सरस्वती कलेज शिलाङ(१९९३)

(९). मेघालयका सामाजिक संस्थाहरूको भाषा-साहित्यको विकासमा योगदान-

मेघालयमा नेपाली भाषा-साहित्यको विकास गराउन विभिन्न सामाजिक सङ्घ-संस्थाहरूको पनि उल्लेखनीय योगदान रहेको छ। भाषा-साहित्यको विकास गराउने मुख्य संस्थाहरू हुन्-

गोर्खा पञ्चायत(१८७४), गोर्खा एसोसिएसन(१८८६), गोर्खा ठाकुरबाडी(१९०५), युवक सङ्घ(१९५२),नेपाली सङ्गीत कला समिति(१९५५), नेपाली साहित्य सङ्घ(१९५८), नेपाली साहित्य परिषद(१९६९), नेपाली साहित्य सृजन समिति(१९६५), तरुण दल(१९६५)असम भूतपूर्व गोर्खा युनियन(१९५३), नेपाली महिला समिति(१९६४), अल शिलाङ नेपाली स्टुडेन्ट युनियन(१९६७), श्रीश्री गोर्खा दुर्गा मन्दिर समिति(१९६९), भोइ एरिया दुग्ध उत्पादन संयुक्त समिति(१९७४) अखिल शिलाङ भानु जयन्ती समारोह समिति((१९७४), अखिल शिलाङ नेपाली विद्यार्थी सङ्घ(१९७१)नेपाली साहित्य प्रकाशन समिति(१९९४), नव जागृति नेपाली साहित्य एवं सांस्कृतिक सङ्गठन(१९९३), नेपाली पाठ्यपुस्तक समिति(१९९८), भारतीय गोर्खा परिसङ्घ(२००१) आदि।

(१०) मेघालयका पाठ्यपुस्तकहरूको भाषा-साहित्यको विकासमा योगदान-

भाषा-साहित्यको विकासमा पाठ्यपुस्तकको प्रमुख स्थान हुन्छ। विद्यालयमा पुस्तक नभए विषयमा शिक्षा अघि बढ्नसकदैन। मेघालयमा सन् १९४० को दशकदेखि नै स्थानीय तहका पाठ्यपुस्तकहरू निर्माण गरी भाषा-साहित्य अघि बढाउने प्रयास गरिँदै आइएको छ। मेघालयबाट प्रकाशित पाठ्यपुस्तकको सुची तल दिइएको छ-

नेपाली पहिलो पुस्तक र नेपाली सरल भूगोल(गङ्गाधर उपाध्याय,सन् १९४२),असमको इतिहास(कृष्णप्रसाद जवाली सन् १९६२),अब पढ्न जाऊँ(कृष्णप्रसाद जवाली सन् १९६३),नेपाली ज्यामिति(लालबहादुर सुनार,सन् १९६३),मेरो किताब भाग १-३(धनमाया छेत्री र रामचन्द्र उपाध्याय सन् १९७३)नेपाली विज्ञान,सुगम स्वास्थ्य,नेपाली सरल गणित,स्वास्थ्य संहिता,नेपाली विज्ञान बोध १-२ नेपाली प्राथमिक भूगोल, नेपाली माध्यमिक भूगोल(डी.टी.जिम्बा न् १९७४),नेपाली रचनावली(सम्प.गोपीनारायण प्रधान, सन् १९८३),नेपाली नवीन पाठ सङ्ग्रह(सम्पा.गोपीनारायण प्रधान, सन् १९९३),सरल नेपाली भाग- १,२,३ र माध्यमिक नेपाली साहित्य- भाग २ र ४(शरद जवाली)सरल नेपाली साहित्य भाग २,४, माध्यमिक नेपाली साहित्य १,३,५ ,उच्च माध्यमिक नेपाली साहित्य र स्नातकीय नेपाली साहित्य(टेकनारायण उपाध्याय),सरल अङ्क गणित भाग १, २(हरिकुमार प्रधान), सरल अङ्क गणित भाग ३,४(डी.पी. जोशी),पर्यावरण अध्ययन भाग १-४(शान्तराम जोशी र सूर्यप्रसाद अधिकारी),सरल नेपाली सामाजिक अध्ययन १ वसन्तराज जोशी र सामाजिक अध्ययन- २(मोतीलाल सुवेदी)।

११. उपसंहार

मेघालयको एक सय पच्चीस वर्षको नेपाली भाषा-साहित्यको विकासमा कविता, कथा, उपन्यास, निबन्ध, नाटक, पत्रपत्रिका आदिको उल्लेखनीय विकास भएको छ। तुलचन आले, धनवीर भँडारी, पद्मप्रसाद उपाध्याय ढुङ्गाना, दिल साहनी, गोपीनारायण प्रधान, कृष्णप्रसाद जवाली, बलराम पोखरेल, अनामिका, टेकनारायण उपाध्याय आदि कविकाका कविता सङ्ग्रह प्रकाशित छन्। कतिपय कविहरूका कविता विभिन्न पत्रपत्रिकामा पनि प्रकाशित छन्। कथा साहित्यमा अर्जुन निरौला, बिक्रमवीर थापा, अनामिका, गीता लिम्बू आदि कथाकारका कथासङ्ग्रह प्रकाशित छन्। बबुर बहादुर राणा, अर्जुन निरौला, विक्रमवीर थापा आदिले विभिन्न विषय र आयामका उपन्यास प्रकाशित गरी उपन्यास विधामा विशिष्टता प्रदान गरेका छन्। कृष्णप्रसाद जवाली, दिलबहादुर नेवार, विक्रमवीर थापा, डी०पी० जोशी, सीताराम पौड्याल आदिले विभिन्न विषय र भावका निबन्धको रचना गर्नुका साथै सङ्ग्रह प्रकाशनमा ल्याई उल्लेखनीय योगदान दिएका छन्। नाटक साहित्यको विकाश त्यति उत्साहजनक नभए तापनि नाटक लेखन र मञ्चनको परम्परा चलिनै रहेको छ। कविता, कथा, उपन्यास, निबन्ध सरह नाटकाकार कृतिहरू प्रकाशित नभए तापनि यसको लेखन परम्परा थामिएको छैन। मेघालयको नेपाली साहित्यको विकाश गराउनमा पत्रपत्रिकाको पनि विशेष योगदान रहेको छ। **गोर्खा सेवक, फिलिङ्गो, उषा, सुमन, मादल, युगान्तर, कोसेली** आदि जस्ता पत्र-पत्रिकाहरूको भाषाको विकासमा महत्वपूर्ण भूमिका रहेको छ। पत्रपत्रिकाकै माध्यमबाट उत्कृष्ट कवि, कथाकार, उपन्यासकार आदिले अघि आउने मौका पाएका छन् एवं भाषा विकासमा सहयोग पुराएका छन्। मेघालयका विभिन्न साहित्यिक विधाले समसामयिक युगका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शोषण, आत्याचार, अन्याय, मानसिक पीडा आदि विषयको प्रकटीकरण गरेका छन्। समग्रमा मेघालयको नेपाली साहित्यको विकाश उन्तशील एवं गतिशील रहेको छ। सुस्त गतिमै भए तापनि कविता, कथा, उपन्यास, निबन्ध, पत्रपत्रिका आदि विविध विधाको विकास वर्तमानसम्म चलिनै रहेको छ। मेघालयको नेपाली साहित्यका विभिन्न विधामा यहाँको यथार्थताको चित्रण भएको छ। सम्पूर्ण साहित्यकारहरूको भाषा सरल,सहज र बोधगम्य छ। मेघालयका नेपाली भाषीहरू भाषाप्रति सचेत र जागरूक छन् त्यसकारण भाषाको संरक्षण हेतु स्कुल, कलेज खोलेर, संस्था बनाएर, पाठ्यपुस्तक प्रकाशित गराएर आफ्नो अस्तित्व जोगाउने प्रयासमा निरन्तर लागि रहेका छन्।

सन्दर्भसामग्री सूची

- अधिकारी, एकदेव, **दिलबहादुर नेवार व्यक्ति र कृति**, बडसोला : नेपाली साहित्य सभा, सन् २००३।
- अधिकारी, दुर्गाप्रसाद, **कर्मवीर मणिसिंह गुरुङ, जीवनी र योगदान**, काठमाडौं : साझा प्रकाशन, वि०सं०२०६०।
- अनामिका, **अन्तरद्वन्द्व**, तेजपुर : सुबेदी प्रकाशन, सन् २०००।
- _____, **नीलकण्ठ**, तेजपुर : सुबेदी प्रकाशन, सन् २००१।
- _____, **बादलपारीको आह्वान**, तेजपुर : सुबेदी प्रकाशन, सन् २००२।
- अर्याल, कलाधर, **दिल सहानीको जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन**, अप्रकाशित एम्०ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५८।
- उपाध्याय, टेकनारायण, **मणिसिंह थापा जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्व**, अप्रकाशित एम्०ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५२।
- _____, **एउटा सहर**, शिलाङ : आरुणा कुमारी उपाध्याय, सन् २०११।
- उपाध्याय, पद्मप्रसाद, **रामायण-शिक्षा-पद्म-प्रकाश सप्तकाण्डम्**, शिलाङ : कमला आर्टप्रेस, सन् १९३९।
- _____, **रामायण सप्तरत्न पद्मप्रकाश(दो सं)**, काठमाडौं : रीणा प्रिन्टिङ प्रेस, वि०सं० २०६०।
- उपाध्याय, भीमकान्त, **सरसर्ती पद्दा**, मालीगाउँ : नयाँ घुम्ती प्रकाशन, सन् १९८३।
- _____, **सवाई र लहरी काव्य-सङ्ग्रह**, दिल्ली : साहित्य अकादेमी, सन् १९९९।
- उपाध्याय, मनोजकुमार, **गोपीनारायण प्रधानको जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन**, अप्रकाशित एम्०ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५२।
- कार्की, टी, **विजयका हातहरू**, गुवाहाटी : गोकुल प्रकाशन, सन् १९९०।
- क्षत्री, तारा, **नेपाली साहित्यमा सुमन पत्रिकाको योगदान**, अप्रकाशित एम्०ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५०।
- क्षत्री, पदम, **आदिम सडक**, असम : नेपाली साहित्य परिषद, सन् १९८५।
- क्षत्री, रणबहादुर, **नरबुङको सवाई**, नङ्पो : गोकुल प्रकाशन, सन् १९८९।
- क्षत्री, लीलबहादुर, **पूर्वाञ्चल भारतीय नेपाली कथा साहित्य र पत्रकारिताको इतिवृत्ति**, गुवाहाटी : पङ्कज पल्लव प्रकाशन, सन् १९९७।
- खरेल, भोलानाथ, **साहित्यकार खेमलाल पोखरेलको जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन**, अप्रकाशित एम्०ए० शोधपत्र, स्नातकोत्तर क्याम्पस, विराटनगर, वि०सं० २०५७।
- जैसी, श्यामराज, **असममा नेपालीहरूको ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**, असम : बोधकुमारी प्रकाशन, सन् १९९०।
- जोशी, डी०पी० **मरेको सिपाही**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २००२।
- _____, **जिउँदो सिपाही**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २००६।
- _____, **मेरो यात्रा स्वर्ण मन्दिर परिसरमा**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २००८।
- _____, **मेरो यूरोप यात्रा**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २००९।
- _____, **केन्सर रोगमाथि विजय**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २०११।
- _____, **मेरो केनेडा यात्रा**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २०१४।
- _____, **मेरो यात्रा देश परदेश**, शिलाङ : डी०पी० जोशी, नङ्थुमाई, सन् २०१४।
- जोशी, हरिप्रसाद, **कर्मवीरको पदचिन्ह**, तेजपुर : सुबेदी प्रकाशन, सन् २००६।
- कृष्णप्रसाद जवाली, **कृष्णप्रसाद जवालीका कविताहरू**, गुवाहाटी : नेपाली साहित्य कला निकेतन, सन् २०००।
- _____, **पीपलको छहारी**, काठमाडौं : साझा प्रकाशन, वि०सं० २०३२।
- थापा, मणिसिंह, **कविताकुञ्ज**, सिक्किम : आँकुरा प्रकाशन, सन् १९९१।
- थापा, विक्रमवीर, **टिस्टादेखि सतलजसम्म**, असम : नेपाली साहित्य परिषद, सन् १९८६।
- _____, **माटो बोल्दो हो**, गोलाघाट : गुराँस साहित्य प्रकाशन, सन् २००६।
- _____, **विगतको परिवेशभिन्न**, शिलाङ : हर्कु प्रकाशन, सन् १९८३।
- _____, **बीसौं शताब्दीकी मोनालिसा**, असम : सप्तऋषि साहित्य प्रकाशन, सन् १९९७।

थापा, शान्ति, असमेली नेपाली कथायात्रा, असम : नेपाली साहित्य परिषद, सन् २००८।
 निरौला, अर्जुन, एउटा रात बितेपछि, काठमाडौं : रत्नपुस्तक भण्डार, वि०सं० २०२९।
 _____, घाम डुबेपछि, गान्तोक : आँकुरा प्रकाशन, सन् १९८९।
 _____, शिशिरको बतास, काठमाडौं : रत्नपुस्तक भण्डार, वि०सं० २०२८।
 _____, साँझ सँगसँगै, काठमाडौं : लेखक स्वयं, सन् १९७९।
 नेवार, दिलबहादुर, इन्द्रेणी, शिलाङ : नेपाली साहित्य सृजन समिति, सन् १९९१।
 _____, मेरा बितेका दिनहरू(पहिलो भा०), शिलाङ : नेपाली साहित्य सृजन समिति, सन् १९८०।
 _____, मेरा बितेका दिनहरू(दो०भा०), शिलाङ : नेपाली साहित्य सृजन समिति, सन् १९८२।
 _____, यात्रा संस्मरण, शिलाङ : नेपाली साहित्य सृजन समिति, सन् २००३।
 _____, विचारमा डुबेको मान्छे, शिलाङ : नेपाली साहित्य सृजन समिति, सन् २००४।
 पराजुली, उमादेवी, अर्जुन निरौलाको जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन, अप्रकाशित
 एम० ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५३।
 परिश्री, एम, जनकवि गोकुल प्रसाद जोशीको सङ्क्षिप्त जीवनी, काठमाडौं : आलोक प्रकाशन, वि०सं० २०४०।
 पोखरेल, बलराम, जीवन सङ्घर्षदेखि डराएको मान्छे, असम : विन्दु प्रिन्टिङ प्रेस, सन् १९८२
 _____, देवरूपा, शिलाङ : नेपाली साहित्य प्रकाशन समिति, सन् १९९६।
 पौडेल, ताराराज, गोकुलप्रसाद जोशी जीवनी, व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन, अप्रकाशित एम० ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय
 विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०४१।
 प्रधान, गोपीनारायण, आकाशले पनि ठाउँ खोजिरहेछ!, शिलाङ:नेपाली साहित्य परिषद, सन् २००७।
 _____, यस्तो भूल पो गरेछु!, शिलाङ : नेपाली साहित्य परिषद, सन् १९७८।
 _____, साइलक आइरहेछ! शिलाङ : नेपाली साहित्य परिषद, सन् १९७५।
 मुक्तान, एन०पी, सम्झना, शिलाङ : रिखासी प्रेस, सन् १९९२।
 रावत, गोविन्दसिंह, नेपाली साहित्यको विकासमा मेघालयको योगदान, अप्रकाशित एम० ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय विभाग,
 त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०४०।
 _____, पूर्वाञ्चल भारतको नेपाली कविता एक सर्वेक्षण, असम : नेपाली साहित्य परिषद, सन् १९८६।
 गीता लिम्बू, बुढाबाको छाता, लापालाङ : अमर लिम्बू, शिलाङ, सन् २००३।
 _____, बिहानी, लापालाङ : अमर लिम्बू, शिलाङ, सन् २००८।
 लुइटेल्, खगेन्द्रप्रसाद, नेपाली उपन्यासको इतिहास, काठमाडौं : नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, वि०सं०, २०६९।
 लुइटेल्, लीला, नेपाली उपन्यास, असम : गुवाहाटी विश्वविद्यालय, सन् २०१०।
 _____, नेपाली कथा, असम : गुवाहाटी विश्वविद्यालय, सन् २०१०।
 _____, भारतीय नेपाली महिला कथाकार, गरिमा(३९७,२०६८), पृ३०५
 शर्मा, कृष्णप्रसाद, कृष्णप्रसाद जवाली जीवनी व्यक्तित्व र कृतित्वको अध्ययन, अप्रकाशित एम० ए० शोधपत्र, नेपाली केन्द्रीय
 विभाग, त्रि०वि, कीर्तिपुर, वि०सं० २०५१।
 शाह, रामबहादुर, अन्तिमहेछु!, शिलाङ : शकुन्तला शाह, सन् २००८
 श्रेष्ठ, अविनाश(सम्पा), आधुनिक भारतीय नेपाली कथा, काठमाडौं : साझा प्रकाशन, वि०सं० २०६४।

Head Deptt. Of Nepali

B B S College, Mawprem, Shillong- 793002

Mail- tshillong@gmail.com

Ph 0364 - 91-9612874926:

असममा नेपाली भाषा साहित्यको इतिहास

डा० दैवकी देवी तिमिसिना

विषय प्रवेश

असम बहुजाति र बहुभाषी प्रान्त हो । यहाँका विविध भाषा साहित्य मध्ये नेपाली भाषा साहित्यको स्थान पनि विशिष्ट रहेको छ । विभिन्न सन्दर्भमा असम प्रवेश गरेका नेपालीहरूले आफ्नो भाषा, संस्कृति र साहित्यको संरक्षणमा निकै ठूलो प्रयास गर्नु परेको छ । आफ्नो भाषा, साहित्य र संस्कृतिप्रति गर्व गर्ने असमेली नेपालीहरूले विभिन्न आन्दोलन गरेर नै भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा नेपाली भाषालाई राष्ट्रिय भाषाको रूपमा स्थापित गर्न सफल भएको देखिन्छ । असममा नेपाली भाषाको विकास, विस्तारसँगै साहित्य लेखनको पृष्ठभूमि कसरी तयार भएको हो भन्ने विषयलाई ऐतिहासिक तथ्यका साथ यहाँ स्पष्ट गर्ने काम गरिएको छ । प्राचीन कालदेखि वर्तमान समयसम्म नेपालीहरूको बसोवास, जनसङ्ख्या, नेपाली भाषाको पठन पाठन आदिको पृष्ठभूमिसहित यहाँ नेपाली भाषा साहित्यको इतिहासलाई देखाइएको छ ।

असममा नेपाली भाषाको आरम्भ र विकास

असममा नेपाली भाषा साहित्यको आरम्भ र यसको विकासका शृङ्खलामा १८९३ मा रचित तुलाचन आलेको मणिपुरको लडाइको सवाइ नै पहिलो लिपिबद्ध साहित्य हो भन्ने इतिहास पाइन्छ (क्षत्री, २००० : २) । नेपाली भाषाको र विकासको चर्चा गर्दा असममा नेपालीहरूको प्रवेश जहिलेदेखि भयो त्यतिबेलादेखि भाषाको पनि प्रवेश भएको मानिन्छ । नेपालीहरूले असममा प्रवेश गर्दा आफ्नो भाषा र संस्कृति पनि साथै लिएर आएका हुन् । उनीहरूले आफ्नो भाषा संस्कृतिका साथै छिमेकी जातिको भाषा संस्कृति पनि सिक्दै गएको देखिन्छ । यसका साथै उनीहरूबाट आफ्नो भाषाको संरक्षण गर्नु पर्ने कुरा पनि सिकेको पाइन्छ । असममा नेपाली भाषाको विकासको चर्चा गर्ने क्रममा मूलतः असमको नेपाली भाषाको प्रारम्भिक कालदेखि नै अध्ययन गर्नु पर्ने देखिन्छ । असममा नेपाली भाषाको विकास भनेको नेपालीहरूले बोलिचालीका क्रममा प्रयोग गरेको भाषा नेपाली-नेपालीहरूको बीचमा व्यवहार गरिने भएको भाषा, दैनिक जीवनका काम, व्यवहारबाट नै आरम्भ भएको स्पष्ट हुन्छ । नेपाली भाषाको विकास क्रमलाई अध्ययन गर्दा क्रमशः नेपालीहरूले भाषालाई पठनपाठनको माध्यम पनि बनाएको देखिन्छ । यसक्रममा नेपाली भाषा बोलिने असमका जिल्लाहरूमा नेपालीहरूको जनसङ्ख्याको उल्लेख गर्नु पनि आवश्यक हुन्छ । यसका साथै असममा शिक्षा विभागले सरकारी तहमा पहिला पाठ्यक्रमको विकास गरेको हो । त्यस पश्चात नेपाली माध्यमका प्राथमिक र माध्यमिक तहको शिक्षण व्यवस्थाको प्रारम्भ भएको देखिन्छ । यसपछि मात्र नेपाली परीक्षा दिने व्यवस्था, शिक्षक नियुक्तिको व्यवस्था, उच्चतर

माध्यमिक र उच्च महाविद्यालयमा नेपाली पठनपाठनको व्यवस्था, शिक्षक नियुक्तिको व्यवस्था, महाविद्यालय स्तरमा नेपाली पठनपाठनको व्यवस्था, गुवाहाटी विश्वविद्यालयमा नेपाली पठनपाठन, प्राथमिकदेखि विश्वविद्यालय तहसम्मको नेपाली माध्यमको पाठ्यक्रम व्यवस्था र अन्य विषयहरूको चर्चा गर्नु पनि आवश्यक हुन्छ ।

असममा बसोवास गर्ने नेपालीहरूको जनसङ्ख्याको स्थिति

हालको असम जम्मा २३ जिल्लामा विभाजित छ । ती सबै जिल्लाहरूमा बसोवास गर्ने नेपालीहरूको जनसङ्ख्या समान छैन ।

२००१ को जनगणनाअनुसार वर्तमान असमको नेपालीको जनसङ्ख्या निम्नानुसार देखिन्छ (शर्मा, २०११ : १४९) ।

वर्तमान असमको नेपाली जनसङ्ख्या तालिका

| क्र.सं. | जिल्ला | जनसङ्ख्या |
|---------|-------------|-----------|
| १. | धुबुरी | २१९१ |
| २. | कोकराभाङ | १९२९२ |
| ३. | गोवालपाडा | २६६५ |
| ४. | बडगाइगाउँ | ६५०५ |
| ५. | कामरूप | ३७३८८ |
| ६. | नलबारी | २३७१४ |
| ७. | बरपेटा | २४७४ |
| ८. | दरङ | ४७३०६ |
| ९. | शोणितपुर | १३१२७० |
| १०. | लखिमपुर | २४८४५ |
| ११. | धेमाजी | ३०९८० |
| १२. | डिब्रुगढ | २७८६४ |
| १३. | तिनसुकिया | ८७८५० |
| १४. | नौगाउँ | १३०२६ |
| १५. | मरिगाउँ | २८७१ |
| १६. | कार्विआडलङ | ४६८९८ |
| १७. | उत्तरकछाड | १२४०४ |
| १८. | शिवसागर | १०५६६ |
| १९. | जोरहार | ४६५१ |
| २०. | गोलाघाट | २४९०४ |
| २१. | कछाड | ४१११ |
| २२. | करिमगञ्ज | ६७४ |
| २३. | हाडलाकान्दि | ३४१ |
| | जम्मा | ५६४७९० |

स्रोत : अविकेश शर्मा र सपरिवार ।

२५. वाक्(१)
 २६. बरपेटा
 २७. पिछवनाच
 २७. बगाइगाउँ

२७. सराङदेउ
 ३०. पिराङ
 ३१. मापुलि
 ३२. उदकगुडि
 ३३

उपर्युक्त तथ्याङ्क अनुसार असमका विभिन्न जिल्लामा नेपालीहरूको जनसङ्ख्या विद्यमान रहेको कुरा पुष्टि हुन्छ (शर्मा, २०६४) ।

नेपाली विषयको पठनपाठनको प्रारम्भ

असममा औपचारिक रूपमा विद्यालयमा नेपाली भाषा पठनपाठन हुनुभन्दा अघि स्वतन्त्र र अनौपचारिक रूपमा यस भाषामा लेखिने र घरायसी कामकाजका लागि उपयोग गर्ने तथा पठनपाठन एवं लेखन, वाचन हुने काम सुरुवातै भएको देखिन्छ । १८१८ मै स्थान र व्यक्ति पहिचान हुन नसकेको कुनै एक मुन्सिले पार्सी भाषाका तीनवटा कथा नेपालीमा अनुवाद भएको कुरा उल्लेख भए पनि सो कुरा स्पष्टसँग खुल्न सकेको पाइँदैन (शर्मा, २०११ : १४९) । १८२० को अगस्ट महिनामा कलकत्ता (हाल कोलकाता) फोर्ट विलियम कलेजका प्राध्यापक जे.ए. एटनले नेपालीको पहिलो व्याकरण **अ ग्रामर अफ द नेपालीज ल्याङ्गुवेज** (शर्मा, २०११ : १४९) पुस्तक तयार गरी पछि चाहिँ नेपाली भाषामा औपचारिक रूपमा ग्रन्थहरू लेखिन थालेको अभिलेख प्राप्त हुन्छ । भारतका दार्जिलिङ, कालेडपुङ, सिक्किम, बनारस, देहारादुन क्षेत्रमा नेपाली भाषामा धेरै काम भएका छन् । तर यस अध्ययनको मूल क्षेत्र असम भएको हुनाले यो अध्ययन यस क्षेत्रमा मात्र केन्द्रित भएको छ ।

अध्ययन गर्दै जाँदा तत्कालीन वृहत् असमको शिलडमा १८७२ मा गोर्खा लाइब्रेरी क्लबको स्थापना भएको देखिन्छ । यसै गाउँमा १८८६ मा भारत भरिकै पहिलो नेपालीको सामाजिक संस्था **गोर्खा एसोसिएसन**को स्थापना भएको पनि पाइन्छ । १९०७ र ०८ मा दार्जिलिङमा मोरावियन मिसनेरीहरूले मिसन स्कुलहरूमा पहिलो नेपाली पाठ र दोस्रो नेपाली पाठ पढाइ आरम्भ गरेको कुरा अभिलेखबाट पुष्टि हुन्छ (शर्मा, २०११ : १५०) । यसपछि १९११ मा प्रयाग विश्वविद्यालयले नेपालीहरूको आवश्यकतालाई कदर गर्दै नेपाली भाषालाई शिक्षाको माध्यमका रूपमा स्वीकृति प्रदान गरेको देखिन्छ (शर्मा, २०११ : १५०) । यसपछि मात्र नेपालीमा प्रवेशिका परीक्षा दिन पाइने व्यवस्थाको प्रारम्भ भएको देखिन्छ । यता १९१८ बाट कलकत्ता विश्वविद्यालयले पठनपाठनका निम्ति स्नातक (बी.ए.) सम्मको व्यवस्थालाई स्वीकृति प्रदान गरेको देखिन्छ (शर्मा, १९९६ : ९७, ८०) । यसरी १९१८ मा कलकत्ता विश्वविद्यालयले सूचना नं. १ मिति २४/७/१९१८ द्वारा नेपालीमा प्रवेशिका, इन्टरमिडियट (प्रवीणता प्रमाणपत्र तह) र स्नातक परीक्षा दिन पाउने व्यवस्थाको थालनी गरेको देखिन्छ । विस्तारै १९२० देखि भारतमा शिक्षाको माध्यम मातृभाषा हुनुपर्छ भन्ने भाग उठ्दै गए पछि नेपाली भाषामा पनि पठन पाठनको व्यवस्था सुरु भएको हो ।

यसपछि १९३१ मा नेपालीको पहिलो पूर्णाङ्क कोश व्युत्पत्ति सहित २६ हजार शब्द भएको आर.एल. टर्नरको “अ कम्पारेटिभ एण्ड एटिमोलोजिकल डिक्सनरीअफ द नेपाली ल्याङ्गुवेज” प्रकाशमा आएको देखिन्छ । मातृभाषाको माग चर्किरहेकै बेला १९३६ मा असमको पहिलो नेपाली साप्ताहिक पत्रिका **गोर्खा सेवक** मणिसिंह गुरुङको सम्पादनमा

शिलङ्बाट प्रकाशित भएको अभिलेख प्राप्त छ । भारतमा अन्य भारतीय भाषाहरूका मान्यताको बारेमा भाषाप्रति उठेका विभिन्न मागहरूले अरू भारतीय सरह नेपालीहरूलाई पनि आधुनिक शिक्षा तर्फ आकृष्ट गराएको देखिन्छ ।

स्वाधीनता पूर्व असममा नेपाली पाठशाला

असम क्षेत्रको पाठशालाको इतिहास निम्नानुसार आरम्भ भएको देखिन्छ : प्राक्-स्वाधीन कालमा भारतमा विद्यालय र पठनपाठनको सुविधा थिएन । त्यसवेला पाठ्यक्रम निर्माण भएको थिएन र पाठ्यसामग्री पनि तयार थिएनन् । त्यस्तै स्थितिमा १८२४ मा अपर शिलङ्मा 'गोर्खा पाठशाला' नामले असमको पहिलो पाठशाला स्थापना भयो (शर्मा, २०११ : ?) । पाठ्यसामग्री तथा भवन निर्माण नभएको हुँदा पाठ दानमा साधारण धर्मकर्मसँग सम्बद्ध, लेखन पठनमा लागेका व्यक्तिहरूले धेरै समस्याहरू भेल्लु परेको थियो । पाठशालामा तत्कालीन समाजले शिक्षकलाई पारिश्रमिक तोकेर राख्न सक्ने अवस्था थिएन । सामाजिक कार्यकर्ता मिलेर शिक्षकको अभावको समस्यालाई पूर्ति गर्दै आउनुपरेको स्थिति थियो । यसरी सञ्चालित भएका विद्यालयको निश्चित स्थान भवन र भौतिक सुविधा नभएका कारण उक्त विद्यालयले स्थान परिवर्तन गरिरहनु पर्दथ्यो । तर १८८६ मा आइपुग्दा यस गोर्खा पाठशालाको एउटा भवन निर्माण भएको पाइन्छ । अठारौँ शताब्दीको पहिलो दशकतिर असम क्षेत्रमा स्थायी रूपले बसोवास गर्दै आएका सिल्हट लाइट इन्फेन्ट्रीबाट अवकास प्राप्त गरेको सेनाहरूको प्रयासमा एउटा भवन निर्माण भएको इतिहास पाइन्छ । नेपाली भाषा साहित्यको प्रारम्भदेखिको यात्रालाई आँकलन गर्दा १९२८, अर्थात् १०४ वर्षपछि मात्र यो शैक्षिक संस्थालाई सरकारले औपचारिक रूपमा अनुदान प्रदान गर्दै स्थायी गराएको पुष्टि मिल्छ (शर्मा, २०११ : १५१) । यसै क्षेत्रका मणिसिंह गुरुडले १९१५ मा कलकत्ताबाट स्नातक उपाधि प्राप्त गरे । गुरुडले उक्त विद्यालयमा अध्यापन गर्न थालेको १५ वर्षपछि मात्र उनकै प्रयासले सो विद्यालय सरकारी भएको पुष्टि हुन्छ (शर्मा, २०११ : १५१) ।

यसैगरी स्वाधीनता पूर्व स्थापित भएका नेपाली पाठशालाहरू निम्नानुसार देखिन्छन् :

स्वाधीनता पूर्व स्थापित भएका नेपाली पाठशालाहरू

| क्र.सं. | पाठशाला | स्थान | स्थापित मिति |
|---------|---------------------------------------|---------------------------|--------------|
| १. | गोर्खा पाठशाला | अपर शिलङ् | १८२४ |
| २. | बयज मिडल स्कुल | आइजोल मिजोराम | १९२२ |
| ३. | सरकारी नेपाली पाठशाला | आइजोल मिजोराम (खतला बजार) | १९२५ |
| ४. | बडगोलाई नेपाली पाठशाला | तिनसुकिया | १९२६ |
| ५. | ए.ओ.सी. नेपाली एल.पी. स्कुल | डिगबोई | १९४२ |
| ६. | उजान बजार गोर्खा एम.ई. (मि.वि.) स्कुल | गुवाहाटी | १९४० |

| | | | |
|-----|---------------------------------|--------------------|------|
| ७. | गोर्खा मा.वि., नि.मा.वि., स्कुल | गुवाहाटी/उजान बजार | १९४७ |
| ८. | तुटा गोर्खा पाठशाला | गारो पहाड | १९४६ |
| ९. | | १९४६ | १०. |
| १०. | ए.ओ.सी. नेपाली एम.ई. स्कुल | डिगबोई | १९४७ |

स्रोत : अविकेशरी शर्मा र सपरिवार ।

स्वाधीन उत्तर स्थापित भएका नेपाली पाठशालाहरू

| क्र.सं. | पाठशाला | स्थान | स्थापित मिति |
|---------|---------------------------------------|------------------------|--------------|
| १. | तुरा गोर्खा नि.मा.वि. | गारो पहाड | १९५१ |
| २. | बोकापथार देवीचरण नि.मा. विद्यालय | लखिपथार | १९५४ |
| ३. | बडागाऊँ नेपाली विद्यालय | गुवाहाटी (देवकोटा नगर) | १९५९ |
| ४. | पूर्वाञ्चल नेपाली विद्यालय | डिगबोई | १९६२ |
| ५. | गोर्खा माध्यमिक विद्यालय | गारोपहाड | १९६२ |
| ६. | शिशु विद्यालय | दुलियाजान | १९६७ |
| ७. | सरुतारी गाऊँ नेपाली प्रा.वि. (एल.पी.) | कामरूप | १९६७ |
| ८. | इन्दिरा प्राथमिक विद्यालय | गोलाई (डिगबोई) | १९७० |
| ९. | गोर्खा माध्यमिक स्कुल (१) | पल्टन बजार | १९८८ |
| १०. | गोर्खा माध्यमिक स्कुल (२) | पल्टन बजार | १९८८ |

स्रोत : अविकेशरी शर्मा र सपरिवार ।

उपर्युक्त विद्यालयहरू मध्ये बोकापथार देवीचरण प्राथमिक विद्यालय (एल.पी.) आज असमिया माध्यममा परिवर्तन भइसकेको छ । अरू दुलियाजान शिशु विद्यालय हिन्दी माध्यममा परिवर्तन भएको छ । त्यसैगरी सरुतारी नेपाली प्राथमिक विद्यालय (एल.पी.) सरकारी हुनु अघि असमिया माध्यममा परिवर्तन भएको छ । इन्दिरा प्राथमिक विद्यालय हिन्दी माध्यममा परिवर्तन भएको छ । गोर्खा माध्यमिक स्कुल माध्यमको भगडाले बन्द भएको छ । वर्तमान असममा नेपाली माध्यमका विद्यालयहरू गुवाहाटीमा चारवटा र डिगबोइमा दुईवटा गरी ६ वटा मात्र बाँकी रहेका छन् (शर्मा, २०११ : १५२) ।

नेपाली पठनपाठन र परीक्षा प्रणालीको व्यवस्था

अनौपचारिक पठनपाठनबाट आरम्भ भएको नेपाली विषय लामो सङ्घर्षपछि औपचारिक पठनपाठनको विषय बनेको छ । औपचारिक रूप प्राप्त गरेपछि पाठ्यक्रम पाठ्य विषय र परीक्षा पद्धतिको व्यवस्थाले पनि औपचारिक रूप प्राप्त गर्दै गएको छ । यस क्रममा शिलङमा स्थापित गोर्खा पाठशाला १९७२ सम्म वृहत् असम भित्र नै थियो । तत्कालीन अवस्थामा ६ कक्षासम्म नेपाली माध्यमबाट पढाइ भएको देखिन्छ । माध्यमिक विद्यालयको शिक्षा अङ्ग्रेजी अथवा अन्य भारतीय भाषामा दिइन्थ्यो (शर्मा, २०११) । औपचारिक रूपमा पठनपाठन सुरु भएको समयदेखि सत्तरीको दशकसम्म नेपाली भाषामा प्रवेशिका परीक्षा दिने

व्यवस्था थिएन । यसको कारण के हो भने नेपाली भाषालाई प्रमुख आधुनिक भारतीय भाषा (एम.आइ.एल.) का रूपमा सामेल गरिएको थिएन । वैकल्पिक भाषाहरू मध्ये संस्कृत र नेपाली मध्ये एक लिनु पर्ने प्रावधान रहेको देखिन्छ । यसर्थ पहाडी भेकका नेपालीमा परीक्षा उत्तीर्ण गरेका विद्यार्थीहरूले उच्च माध्यमिक स्तरमा वैकल्पिक भाषा लिने गरेको पाइन्छ । संस्कृतको विकल्प नेपाली भाषा लिने छात्रहरूका निम्ति एम.आइ.एल. को व्यवस्था नभएका विद्यार्थीहरूका निम्ति त्यस बेलाको अङ्ग्रेजी तैस्रो पत्रमा दिइने अनुवाद अंश नेपालीमै दिने व्यवस्था भएको देखिन्छ (शर्मा, २०११ : १५१) ।

१९७२ सम्म उच्च माध्यमिक स्तरमा असम सरकारले भाषाको माध्यम नस्वीकारेको हुनाले नेपाली भाषाका माध्यममा पठनपठान हुने एउटै उच्च माध्यमिक स्कुल असममा रहेका देखिदैनन् (उपाध्याय, १९८३ : २) । फलस्वरूप माध्यमिक स्तरसम्म नेपाली भाषाको माध्यममा शिक्षा लिएर मा.वि. (एम.इ.) उत्तीर्ण गरेका छात्रछात्राहरूले उच्च माध्यमिक स्तरमा आएर हिन्दी अथवा असमिया भाषाको माध्यममा शिक्षा लिन बाध्य हुनु परेको देखिन्छ । यसले गर्दा माध्यमिक स्तरसम्म पनि आफ्नो मातृभाषाको माध्यममा शिक्षा लिने छात्रछात्राहरूको सङ्ख्यामा कमी आउन थालेको पाइन्छ । यस विषयका अध्येता भीमकान्त उपाध्यायले आफ्नो पुस्तक “सरसर्ती पढ्दा” (१९८३) तारापति उपाध्यायबाट लिइएका जानकारीमा यसरी उल्लेख गरेका छन् : “असम सरकारले उच्च माध्यमिक स्तरमा नेपाली माध्यमलाई नस्वीकारे पनि नेपाली विषयलाई असमिया, बंगला, हिन्दी सरह प्रथम भाषाको रूपमा स्वीकारेको छ र नेपाली छात्रछात्राको सङ्ख्या अधिक रहेका शैक्षिक संस्थाहरूमा नेपाली प्रथम भाषा पढाउने व्यवस्था गर्न सम्बन्धित अधिकारी वर्गलाई निर्देश दिएको छ” (उपाध्याय, १९८३ : १३) । असमको शिक्षा विकासको सन्दर्भमा यस क्षेत्रमा पहिलो पल्ट सन् १९४८ मा गुवाहाटी विश्वविद्यालय स्थापना भएको पाइन्छ । यसअघि बृहत् असमको शिक्षा व्यवस्था र पाठ्यक्रम परीक्षा सञ्चालन व्यवस्था कलकता विश्वविद्यालयको नियन्त्रणमा रहेको देखिन्छ । सो विश्वविद्यालयको पाठ्यक्रम बमोजिम महाविद्यालयहरूमा नेपाली (एम.आइ.एल.) को रूपमा एउटा विषय लिने व्यवस्था भने १९१८ देखि नै लागू हुँदै आएको देखिन्छ तर शिक्षक प्राध्यापकहरूको अभावका कारणले विद्यार्थीहरूले स्वतन्त्र अध्ययनका रूपमा परीक्षा दिने व्यवस्था हुँदै आएको पाइन्छ । गुवाहाटी पल्टन बजारको गोर्खा प्राथमिक विद्यालय (एल.पी.) निम्न माध्यमिक विद्यालय (एम.इ.) मा प्रा.वि.को पढाइ असमियामा र नि.मा.वि. (एम.ई.) को पढाइ नेपालीमा भएको देखिन्छ । धेरैपछि स्कुल सञ्चालन समितिले प्रा.वि. (एल.पी.) मा पनि नेपाली माध्यमको व्यवस्था सञ्चालन गरेर अष्टयारो परिस्थितिबाट यसलाई मुक्त गराएको हो (क्षत्री, १९९९ : १४२) । असमको पहाडी भाग र मैदानी भागमा डिगबोइलाई छोडेर माध्यमिक स्तरमा नेपाली पठनपाठनको व्यवस्था देखिदैन । प्रवेशिका पास गरेपछि मात्र तराई इलाकामा नेपाली विद्यार्थीहरूले महाविद्यालय स्तरमा नेपाली एम.आइ.एल. (आधुनिक भारतीय भाषा) पढ्न पाउने व्यवस्था भएको हो ।

असमका विभिन्न शैक्षिक संस्थाहरूमा नेपाली भाषा पठनपाठन र सो प्रयोजनका लागि शिक्षकहरूको नियुक्तिको व्यवस्था सरकारी तहबाट अनुमोदन गराउन नेपाली भाषा साहित्यको स्थापनामा सङ्घर्ष गर्दै आएका समाज सेवीहरूले ठूलो सङ्घर्ष गर्नु परेको कुरा उपर्युक्त अध्ययनबाट पुष्टि हुन्छ । उक्त शैक्षिक र संस्थागत मान्यताका आधारमा नेपाली भाषा साहित्यको प्रतिष्ठा क्रमशः हुँदै गएको कुरा पनि अनुसन्धानले पुष्टि गर्दछ ।

नेपाली भाषाको मान्यता सम्बन्धी आन्दोलन

भारतवर्ष १९४७ को १५ अगस्तमा अङ्ग्रेजहरूको शासनबाट मुक्त भएको हो । तर यस देशलाई सञ्चालन गर्ने एउटा दर्विलो संविधान भने १९५० को २७ जनवरीका दिनदेखि मात्र लागू हुन पुग्यो । उक्त संविधानमा विभिन्न धारा, उप-धाराहरू मध्ये आठौँ अनुसूचीभित्र देशका उन्नत तथा विकसित भाषाहरूलाई मात्र अन्तर्भुक्त गर्ने प्रावधान रहेको देखिन्छ । त्यस समयमा भारतभित्र जम्मा चौध भाषाहरू जस्तै : असमिया, बङ्गाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नाडी, कश्मिरी, मराठी, मलयालम, उडिया, पञ्जाबी, संस्कृत, तामिल तेलुगु र उर्दूलाई राष्ट्रिय दर्जा दिएर आठौँ अनुसूचीमा गाभिन्छ (गुरुङ, २००४ : १) । नेपाली भाषा पनि उक्त भाषा सरह नै विकसित भाषा हुँदाहुँदै यस भाषाले राष्ट्रिय मान्यता पाएन । भाषाका निम्ति यस्तो पक्षपात देखेर जाग्रत गोर्खा नामक पत्रिकाका प्रधान सम्पादक आनन्दसिंह थापा अग्रसर भएको देखिन्छ । थापाले आफ्ना दुई सहयोगी साथीहरू क्रमशः वीरसिंह भण्डारी र नरेन्द्रसिंह थापाको संयुक्त हस्ताक्षरमा पहिलो पल्ट नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यताको माग गर्दै तत्कालीन भारतका प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद समक्ष १९५६ को १५ जनवरीका दिन भाषाको माग प्रस्तुत गरेर एउटा स्मारक पत्र चढाएको पुष्टि हुन्छ (नेवार परिषद् पत्र, १९९७ : ५८७) ।

उक्त स्मारक पत्रमा नेपाली भाषालाई अरू भारतीय भाषा सरह भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा अन्तर्भुक्त गराउने बारे उल्लेख गरिएको थियो । राष्ट्रपतिले उक्त स्मारकपत्र राजकीय भाषा आयोगलाई प्रेषित गरिदिएकाले आयोगका अध्यक्ष वी.जी. खरेलले उक्त स्मारक पत्रको जवाफ १९५६ को ३० जनवरीमा यसरी दिएका थिए “नेपाल एउटा स्वतन्त्र देश भएकाले त्यो देशको भाषालाई संविधानको आठौँ अनुसूचीमा सामेल गरिएन ।” आनन्दसिंह थापाले पुनः आफ्नो प्रतिक्रिया १९५६ फेब्रुअरी २३ का दिन पठाएको तर कुनै प्रतिउत्तर आएको देखिँदैन (क्षेत्री, २०११ : १८१) । यसभन्दा अघि १९५५ मै राजकीय भाषा आयोगको प्रतिवेदन प्रकाशित भएको थियो । उक्त प्रतिवेदनमा आयोगकै एक सदस्य भाषाविद् सुनीतिकुमार चटर्जीले आफ्नो मन्तव्यमा यसरी लेखेका थिए “कुनै भाषाको महत्त्व बुझी ती भाषा

बोल्नेहरूको इच्छा अनुसार आठौँ अनुसूचीमा अरू भाषा सरह सिन्धी र नेपाली भाषा पनि गाभिनु पर्छ” (क्षेत्री, २०११ : १९१) । यता सिन्धीहरूले यो प्रतिवेदन प्रकाशित भएपछि नै भाषा आन्दोलन आरम्भ गरेका हुन् । १९६७ मा सिन्धी भाषाले भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा स्थान पाउन सफल भएको देखिन्छ । १९५६ मइ १४ का दिन अविभाजित बङ्गाल विधान सभाका सांसद कमरेड रतनलाल ब्राह्मणले शपथ पाठ नेपाली भाषामा गर्ने प्रयत्न गरेको देखिन्छ तर यो शपथ पाठ १८/१/१९५६ मा सङ्घबद्ध तरिकाले भएकाले उनको प्रयत्न विफल हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९१) । १९५६ मा संसद सत्येन मजुमदार दार्जिलिङ जिल्लादेखि राज्य सभामा निर्वाचित भए पछि भारतीय संसदको इतिहासमा सर्वप्रथम नेपाली भाषालाई संविधानको आठौँ अनुसूचीमा गाभेर संवैधानिक मान्यता प्रदान गर्न सरकारलाई माग गरेको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९१) ।

१९६१ गणेशलाल सुब्बा दार्जिलिङ जिल्लास्तरमा भाषा आन्दोलनको नेतृत्व दिने संयुक्त तथा सर्वदलीय भाषा मान्यता समितिका सभापति हुन् । दार्जिलिङका नेपालीहरूले आठौँ अनुसूचीमा भन्दा पश्चिम बङ्गाल भाषा विलमा बढी ध्यान दिएको देखिन्छ । १९६१ मा उक्त भाषा विल प. बङ्गाल विधान सभामा पारित भएपछि दार्जिलिङ जिल्लाका तीन महकुमाहरू दार्जिलिङ, खरसाङ र कालेबुङमा सरकारी भाषाको रूपमा नेपाली भाषा चलाउनु पर्छ भन्ने आदेश सरकारले जारी गरेको देखिन्छ । १९६६ मा पुनः प. बङ्गालका सांसद निरेन घोषले राज्य सभामा नेपाली भाषालाई पनि सिन्धी भाषासँगै मान्यता प्रदान गर्नका निम्ति माग गरेको देखिन्छ । तर त्यो माग सिधै नकारिन्छ । त्यसकै दोस्रो वर्ष १९६७ मा १६ नोभेम्बरका दिन दार्जिलिङको अन्य एकजना सांसद मैत्रेयी बोसेले लोक सभामा नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यताका निम्ति पहिलो प्राइभेट विल पेस गरेको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११) । यसरी भाषा मान्यताका निम्ति पेस भएका विलहरू एक एक गर्दै खारेज हुँदै गएका तर प्रयास भने जारी नै रहेको देखिन्छ । सरकारको उदासीनताले गर्दा आन्दोलनमा पनि शिथिलता आएको र एक दशकसम्म आन्दोलन उठ्न सकेन । यसपछि १०/१२/१९६६ मा नेपाली साहित्य अध्ययन समितिले, २१/१०/१९६७ मा अखिल भारतीय नेपाली भाषा सङ्ग्राम परिषद्, दार्जिलिङले, १९६८ तिर आसाम गोर्खा सम्मेलनको रामपुर (टिराप) अधिवेशनले (क्षेत्री, २०११) र १९६८ मा नेपाली छात्र सङ्घ गुवाहाटीले १२/११/१९६९ मा नेपाली साहित्य सम्मेलन र दार्जिलिङले, संवैधानिक मान्यताको माग दोहोर्‍याएको देखिन्छ ।

नेपाली भाषाको मागलाई सङ्घ संस्थाहरूमा मात्र सीमित नराखी जनसाधारण बीचमा पनि पुर्‍याउने र भाषाका निम्ति व्यापक प्रचार प्रसार चलाउने उद्देश्यले १९७१ मा गुवाहाटीमा नेपाली भाषा मान्यता सङ्घर्ष समिति गठन हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९२) । यसकै दोस्रो वर्ष १९७२ जनवरी ३१ मा दार्जिलिङमा अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको गठन भएको छ (शर्मा, २०१० : २८) । गुवाहाटीमा १९७१ मा गठन भएको सङ्घर्ष समितिलाई नेपाली भाषा समितिसँग

गाभेर एउटै सङ्गठनको छत्रछायाँमा बसेर भाषा मान्यता आन्दोलन अधि बढाउने भन्ने निर्णय भएकाले यी दुवै सङ्गठनलाई एकै ठाउँमा गाभिन्छ (क्षेत्री, २०११ : २९२) ।

असम गोर्खा सम्मेलन असमको साहित्य साधनामा जुटेको संस्था हो । असम गोर्खा सम्मेलनको १९६६ को १० अप्रिलमा जन्म भएको थियो । भाषा आन्दोलनको प्रारम्भिक चरणमा यस संस्थाले त्यति चासो नराखे पनि पछि गएर यस संस्थाले नेपाली भाषा माग सम्बन्धी केही काम गरेको देखिन्छ । १९६८ मा गोर्खा सम्मेलनको रामपुर (तिराप) अधिवेशनमा नेपाली भाषा माग सम्बन्धी केही प्रस्ताव ग्रहण गरेको देखिन्छ । १९७३ को असम गोर्खा सम्मेलनको गोवालपाडा जिल्लाको पाटगाउँमा भएको अधिवेशनमा अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिका केन्द्रीय नेता प्रेमकुमार आलेलाई खुला सभामा बोल्न अनुमति दिएको देखिन्छ । सम्मेलनका नेतृवर्गले पनि नेपाली भाषाका समर्थनमा पाटगाउँ अधिवेशनदेखि मात्र खुलेर आफ्ना वक्तव्यहरू राखेको कुरा पुष्टि हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९२) ।

नेपाली भाषाको मान्यता सम्बन्धी असमका नेपाली छात्रछात्राहरू पनि समयमै अग्रसर भएको उनीहरूका गतिविधिबाट थाहा लागेको छ । १९६८ को मार्च महिनामा गुवाहाटीमा आयोजित गुवाहाटी नेपाली छात्र सङ्घको वार्षिक साधारण सभामा नेपाली भाषाको मान्यता सम्बन्धी प्रस्ताव ग्रहण गरेको देखिन्छ । सोही प्रस्ताव बमोजिम १९६८ को २२ जुलाईका दिन अखिल भारतीय कङ्ग्रेस कमिटीका अध्यक्षलाई चिठी पठाएर सोही माग दोहोर्‍याएको पाइन्छ (गुरुङ, २००४ : ४) । १९७४ को ३०, ३१ डिसेम्बर र १ जनवरीको दिन तिन दिने अधिवेशन असमको दरङ जिल्ला अन्तर्गत उदालगुडीमा विभिन्न कार्यक्रमहरूका साथ अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको प्रथम अधिवेशन सम्पन्न भएको देखिन्छ (नेवार, १९९७ : २७) ।

असमको हवाइपुरमा गठन भएको हवाइपुर नेपाली साहित्य सम्मेलनले पनि १९८५ नोभेम्बर १५ का दिन नेपाली भाषालाई भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा अन्तर्भुक्त गराउनलाई तत्कालीन भारतका प्रधानमन्त्री समक्ष प्रस्ताव टेलिग्राम गरेर प्रेषण गरेको पुष्टि हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९२) ।

मेघालयको शिलङबाट पनि भाषा मागको समर्थनमा विभिन्न संस्थाहरूले काम गर्दै आएको देखिन्छ । शिलङका संस्थाहरू मध्ये शिलङ नेपाली साहित्य सृजन समिति, नेपाली साहित्य परिषद्, अखिल शिलङ नेपाली विद्यार्थी सङ्घ, भानु जयन्ती कमिटी गोर्खा एसोसिएसन आदि सङ्गठनले भाषा आन्दोलन चलाउँदै आएको देखिन्छ । १९७२ मा नेपाली भाषा आन्दोलनलाई सक्रिय बनाउनका निम्ति उपर्युक्त सबै संस्थाहरू मिलेर **मेघालय नेपाली भाषा सङ्घर्ष समितिको** गठन गरेको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९२) । यस समितिको नेतृत्व गोपीनारायण प्रधानले गरेका हुन् ।

भाषा आन्दोलनका निम्ति पूर्वाञ्चलका अन्य राज्य मणिपुर, नागालेण्ड, मिजोरामबाट पनि विभिन्न सङ्गठनहरूको प्रायः समर्थन प्राप्त भइरहेको देखिन्छ । गुवाहाटी मालिगाउँको एक साहित्यिक संस्था हाम्रो सयपत्रीले १९७१ मा आयोजन गरेको भानु जयन्तीको उपलक्ष्यमा मालिगाउँ रेलवे इन्स्टिच्युट भवनमा नेपाली भाषालाई संवैधानिक मान्यता दिलाउने औचित्य बारे एउटा संगोष्ठिको आयोजन गरेको देखिन्छ । उक्त संगोष्ठिमा असम गुवाहाटी विश्वविद्यालयका ऐन विभागका प्राचार्य क्षितिज मेधी, गुवाहाटी विश्वविद्यालय अङ्ग्रेजी विभागका प्राध्यापक हिरेन गोहाइ, गुवाहाटी विधान सभा समष्टिका तत्कालीन विधायक र वरिष्ठ अधिवक्ता श्री थैनेल मेधी र अङ्ग्रेजी दैनिक असम ट्रिन्यूनका सह-सम्पादक श्री विरेन शर्माले भाग लिएको देखिन्छ । असममा असमिया बुद्धिजीवीहरूले नेपाली भाषाको समर्थनमा बोलेको यही पहिलो अवसर हो (गुरुङ, २००४ : ५३) ।

भाषा आन्दोलनलाई प्रारम्भिक चरणदेखि नै समर्थन गर्दै आउने रतनलाल ब्राह्मण १९७१ को आम चुनावमा दार्जिलिङ समष्टिबाट लोक सभामा निर्वाचित भएको देखिन्छ । उनले पुनः १९५६ को कार्यलाई दोहोर्‍याउँदै १९७१ मार्च २२ को दिन संसदमा नेपालीमा शपथ गर्ने चेष्टा गरेका हुन् । उनको दोस्रो पटकको प्रयासलाई पुनः रोक लगाइएको पाइन्छ । १९७१ को २९ जुन लोक सभामा यातायात मन्त्रालयको बजेटमाथि बहस थियो । त्यस बहसमा भागलिदै रतनलाल ब्राह्मणले नेपाली बाहेक अन्य भाषामा बोल्न नसक्ने मान्छे नेपालीमा बोल्न थालेका हुन् । उनलाई पुनः रोक लगाइको तर उनले नेपाली बाहेक अन्य भाषामा बोल्न नसक्ने आफ्नो अवस्था बताएपछि अध्यक्षले अनुमति दिन बाध्य हुनु परेको थियो (क्षेत्री, २०११ : १९३) । यस प्रकार भारतीय लोक सभाको इतिहासमा पहिलो चोटि नेपाली भाषामा आफ्नो वक्तव्य राखेको देखिन्छ । १९७१ को अगस्तमा रतनलाल ब्राह्मणले गृह विभाग विषयक सल्लाहकार समितिको बैठकमा नेपाली भाषालाई संविधानको आठौँ अनुसूचीमा गाभ्ने बारे आफ्नो मन्तव्य पेस गरेका हुन् । भारत सरकारको गृह विभागले अन्तमा नेपाली भाषालाई भारतको एक राष्ट्रिय भाषाको रूपमा मान्न कर लागेको देखिन्छ । यसै साल उनले संसदका ७४ जना सदस्यहरूले हस्ताक्षर गरेको स्मारक पत्र तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गान्धीलाई चढाए (क्षेत्री, २०११ : १९३) । यस मागमा विभिन्न राजनैतिक दलहरूले समर्थन जनाएका थिए । नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यतामा भारतव्यापी नेपालीहरूका आ-आफ्नै संस्थाहरूले व्यापक समर्थन जनाए पनि सवै धार्मिक तथा राजनैतिक संस्थाहरूलाई एकजुट पारेर एउटै मञ्चमा ल्याउने प्रयास हुन थालेको देखिन्छ । यसकारण दार्जिलिङमा भेला भएका बुद्धिजीवीहरूले १९७२ जनवरी ३१ का दिन नेपाली भाषा समिति भन्ने एउटा संस्थालाई जन्म दिएका हुन् । यस संस्थाको नाम भाषा समिति मात्र राखिएको हुँदा दार्जिलिङमा आयोजना गरेको दोस्रो भाषिक अधिवेशनले यसको पुनः नामकरण गरेर 'अखिल भारतीय नेपाली भाषा समिति' नाम दिएको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११) । यस संस्थाको केन्द्रीय कार्यालय दार्जिलिङमा नै राखेर भारतभरि यस संस्थाका शाखाहरू गठन गर्दै लगेको देखिन्छ । भारतका तेह राज्यहरूमा प. बङ्गाल, असम, सिक्किम, मेघालय,

नागालेण्ड, मणिपुर, मिजोराम, अरुणाञ्चल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाञ्चल प्रदेश, जम्मु कश्मीर, पन्जाब र त्रिपुरामा यसका शाखा गठन भएको देखिन्छ । संस्थाको मुखपत्र हाम्रो भाषाद्वारा नेपाली भाषा मागको प्रयोजनीयताबारे जन चेतना जगाउन चालेको देखिन्छ । १९७७ को फेब्रुअरी महिनामा असमको डिब्रुगढमा आयोजन गरिएको पूर्वाञ्चलीय अखिल भारतीय नेपाली भाषा अभिवर्तनले पूर्वाञ्चलनका सातै राज्य (असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोराम, त्रिपुरा, नागाल्याण्ड) मा चेतना जाग्रत गराएको पुष्टि हुन्छ (क्षेत्री, २०११) ।

भारतको संविधानको आठौँ अनुसूचीमा स्थान पाउनको निम्ति कुनै पनि भाषाले साहित्य अकादमी, नयाँ दिल्लीबाट मान्यता पाउनु अनिवार्य देखिन्छ । त्यसैले गर्दा नेपालीका साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक संस्थाहरूका साथै पारसमणि प्रधानको अथक प्रयासले (नेवार, १९९७ : ८७) १९७४ को ३ डिसेम्बरका दिन साहित्य अकादमी, नयाँ दिल्लीको एडभाइजरी बोर्डले नेपाली भाषालाई मान्यता प्रदान गर्न सिफारिस गरिदिएको र १९७५ को १९ फेब्रुवरीको दिन साहित्य अकादमीले नेपाली भाषालाई भारतको एक आधुनिक भाषाको रूपमा मान्यता प्रदान गरेको कुरा पुष्टि हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९४) ।

भाषिक मान्यता आन्दोलन व्यापक बन्दै गएपछि पश्चिम बङ्गाल, सिक्किम र त्रिपुराका विधान सभाहरूमा भाषा मान्यता सम्बन्धी प्रस्ताव सर्वसम्मतिद्वारा पारित भएको देखिन्छ । १९७८ मा उक्त प्रस्तावहरू केन्द्र सरकारसमक्ष पठाएको देखिन्छ । यस्तै प्रकारका प्रस्ताव हिमाञ्चल विधान सभाले पनि पारित गरेकाले त्यो प्रस्ताव पनि केन्द्रीय सरकार समक्ष पेस गरेको देखिन्छ ।

भारतका नेपाली बहुल राज्यहरूमा भाषा मान्यताको माग उठिरहेकै देखिन्छ । दार्जिलिङमा अ.भा.ने.भा.सं. गठन भए पश्चात् भारतभरि यसका शाखा गठन भएको देखिन्छ । १९७५ को १ जनवरीको दिन अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको पहिलो अधिवेशन असमको दरङ जिल्ला अन्तर्गत उदालगुडीमा सम्पन्न भएको जानकारी प्राप्त हुन्छ (नेवार, १९९७ : ८७) । भाषा मान्यताका मुद्दा उठिरहेकै बेला असमका नेपालीहरूले विभिन्न समस्याहरू भेल्नु परेको थियो । पहिलो त १९६० मा असमिया भाषालाई सरकारी भाषा घोषित गरिएको थियो । यो घोषणापछि असममा ठूलो साम्प्रदायिक दङ्गा हुन पुगेको छ । धेरै मानिस मारिएका, घरहरूमा आगो लगाइएको छ । यसको १० वर्षपछि १९७० मा असमिया भाषा महाविद्यालयको शिक्षा माध्यम घोषित भएको देखिन्छ । सन् १९८९ देखि विदेशी वहिष्कार आन्दोलन आरम्भ हुन पुग्यो । त्यसपछि फेरि बोडो जनजातिको आन्दोलन सुरु भएको पाइन्छ । एउटा पछि अर्को अर्कोपछि अर्को पृथकतावादले यो प्रान्त ग्रस्त भएको देखिन्छ । यस्तो परिस्थितिमा पनि आफ्नो ज्यानको परवाह नगरी असमका नेपाली जनताहरूले भाषाको माग पूर्तिका निम्ति विभिन्न संस्थाहरू मार्फत भोक हडताल, जुलुस पदयात्रा र सभाहरू गरेर भाषाको आन्दोलनलाई जारी राखेको देखिन्छ (नेवार, १९९७ : ८७) ।

१९७२ को ३१ जनवरीमा भाषा मान्यताको मागलाई अझ तेजिलो बनाउन नेपालीहरूको साभ्का मञ्च गठन हुन्छ । त्यो साभ्का मञ्च 'अखिल भारतीय नेपाली भाषा समिति' (अ.भा.न.भा.स.) दार्जिलिङमा गठन भएको देखिन्छ । भाषाको मागलाई लिएर समितिले नयाँ दिल्लीमा १९७२ को १५ अप्रिलदेखि १९७५ सम्म प्रधानमन्त्रीसँग पाँच-पाँचपल्ट भेट गरेको छ । तर समितिले पठाएका प्रतिनिधि मण्डललाई नाना प्रकारका युक्तिहीन कारणहरू दर्शाएर दिल्लीले रिक्त हात फर्काएको देखिन्छ (गुरुङ, २००४ : १०५) ।

यसै समयमा देशमा सङ्कटकालीन अवस्थाको घोषणा भएको छ र उन्नाइस महिनासम्म सम्पूर्ण सामाजिक र राजनैतिक गतिविधिहरू ठप्प भएका छन् । अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिका गतिविधिहरू पनि रोकिन्छन् । उन्नाइस महिनाको अन्धकारमय परिस्थितिबाट देश मुक्त हुन्छ र १९७७ मा आम निर्वाचनले केन्द्रमा कङ्ग्रेसको सरकार ढल्छ र जनता दलले मोरारजी देशाइको नेतृत्वमा सरकार गठन गर्छ । देशमा आएको नयाँ परिवर्तनले नेपाली भाषाप्रति रहिआएको दिल्लीको नकरात्मक भावना परिवर्तन आउन सक्छ भन्ने उद्देश्यले अ.भा.ने.भा.स. सेप्टेम्बरको अन्त्यतिर एउटा सर्व भारतीय प्रतिनिधिमण्डल नयाँ सरकारसँग कुराकानी गर्न दिल्ली पठाउने निर्णय लिएको देखिन्छ (गुरुङ, २००४ : १०५) । असमको दिल्ली जाने त्यस प्रतिनिधि मण्डलहरूमा गुवाहाटीबाट चन्द्रविनोद चालिसे, शिशिरकुमार गुरुङ (हाल स्वर्गीय) र उदालगुठीबाट तारापति उपाध्याय रहेका छन् । केन्द्रीय समिति दार्जिलिङका पदाधिकारी वर्गमा सर्वश्री ए.एम. स्याङ्देन (उपाध्यक्ष), प्रेमकुमार आले (मूल सचिव), डी.आर. लामा (संयुक्त सचिव) के.एन. प्रधान, युगेन गोले (सदस्य) । सिक्किमबाट सर्वश्री आर.जे. प्रसाद (सदस्य), एस.के. गुरुङ र के.एस. मसिया । मेघालयबाट खेमलाल पोखरेल, गंगाधर पाठक, भानुभक्त सुवेदी । मिजोरामदेखि दशरथ शाही, चेतनकुमार छेत्री र केशव घिमिरे, उत्तर प्रदेशबाट हरिवहादुर शाही, परशुराम थापा र वी.एस. विष्ट हिमाचलबाट लेफ. जे.एस. खडका गरी जम्मा २२ जना प्रतिनिधिहरू दिल्ली पुग्छन् । दिल्लीबाट अरू पाँच जना प्रतिनिधिहरू सर्वश्री चुडामणि उपाध्याय, आई.के. सिंह, टंकप्रसाद उपाध्याय, देवराज शर्मा कडेल र सुश्री सरला अधिकारी प्रतिनिधिका रूपमा रहेका देखिन्छन् (गुरुङ, २००४ : १०८) । उक्त प्रतिनिधि मण्डलले २८-९-१९७७ बिहानको ११ बजे तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाईसँग द्विपक्षीय भेटवार्ताको क्रम आरम्भ गरेर आफ्ना माग गरेको देखिन्छ । उक्त अन्तर्वार्ताको क्रममा मोरारजी देसाइले दिएको वार्ता यस प्रकार थियो

नेपाली भाषा, गुजराती भाषा जस्तै समृद्धशाली र धनी भाषा हो । यो नेपाली भाषाको माग गर्न आउने पहिलो प्रतिनिधि मण्डल होइन, अघि आउने प्रतिनिधि मण्डललाई हुँदैन भनेको छु । म आठौँ अनुसूची बढाउने पक्षमा छुइन । नेपाली भाषालाई संविधानको आठौँ अनुसूचीमा गाभ्दा अझ ५० वटा आदिवासी (ट्राइबल) भाषाहरूका लागि ढोका खोल्नु पर्ने बाध्यता आइपर्थे नेपाली एउटा विकसित भाषा हो जसलाई साहित्य अकादमीले मान्यता दिएको छ भन्ने समिति तर्फको भनाइमा

उनी भन्छन् त्यो मान्यता सहजै खारेज गर्न सकिन्छ। नेपालीहरू जुन जुन प्रान्तमा छरिएर बसेका छन् तिनीहरूले ती राज्यका भाषा सिक्नु पर्छ।

सिन्धी र नेपाली भाषाको आन्दोलन प्रायः सँगसँगै आरम्भ भएको हो तर सिन्धी भाषाले मान्यता पायो तर नेपाली भाषाले त्यो स्थान पाउन सकेन भनी भाषा समितिले गुनासो प्रकट गर्दा उनी यसरी जवाफ दिन्छन् “सिन्धी भाषालाई मान्यता दिनु अधिल्लो सरकारको भूल हो, तर सिन्धी भाषासँग नेपाली भाषाको तुलना हुन सक्दैन। सिन्धीहरू भारतीय हुन्, देश विभाजनपछि तिनीहरू भारत आएका हुन् भने नेपालीहरू सेनामा भर्ती हुन आएर भारतका विभिन्न ठाउँमा बसोवास गर्दै आएका हुन्। आवश्यक परेमा भारतीय सेनामा नेपालीहरूको भर्ती रोकिदिने धम्की पनि देसाइले दिएको देखिन्छ। यस प्रकार आशा लिएर गएका प्रतिनिधि मण्डल निराश भएर फर्केको देखिन्छ। समितिका तर्फबाट सोधिएर तेह्रवटा प्रश्नहरूमा एउटा उत्तर पनि सन्तोषजनक नभएको अभिलेखहरूबाट थाहा लाग्छ (गुरुङ, २००४ : १०९)। मोरारजी देशाईको उक्त वार्ताका प्रतिवादमा १९७९ मई २९, ३१ प्रधानमन्त्रीको दार्जिलिङ भ्रमणकालमा दार्जिलिङ बन्द गर्नुका साथै प्रधानमन्त्रीलाई कालो झण्डा देखाइएको थियो (क्षेत्री, २०११ : १९४)।

१९७८ को २६ अप्रिलका दिन मालिगाउँ स्थित तरुणराम फुकन हिन्दी विद्यालयमा बसेको सभाले असम राज्य शाखाको स्थायी समिति गठन गरेको थाहा हुन्छ। यसपछि जिल्लाका विभिन्न गाउँवस्तीमा रहेका शाखाहरूलाई सक्रिय बनाउन र शाखा नभएका ठाउँमा नयाँ शाखा गठन गर्ने अभियानको आरम्भ भएको देखिन्छ (गुरुङ, २००४ : १०)।

यसै वर्ष १९७८ मणिपुरमा अखिल भारतीय नेपाली भाषा समिति अन्तर्गत केन्द्रीय समितिको बैठक बस्छ। त्यही बैठकमा इन्द्रवहादुर राईले आनन्दसिंह थापा नै भाषा आन्दोलनका प्रथम प्रयोक्ता हुन् र उनैले १९५६ मा पहिलो पल्ट तत्कालीन राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादलाई नेपाली भाषालाई संविधानको आठौँ अनुसूचीमा अन्तर्भुक्त गर्नु पर्छ भन्ने माग राखेका हुन् भन्ने औपचारिक रूपमा घोषणा गरेको देखिन्छ (गुरुङ, २००४ : २)।

१९७९ मा सिक्किममा काङ्ग्रेसको सरकार गठन भयो। नरवहादुर भण्डारी भारतको इतिहासमा नै प्रथम नेपाली मुख्यमन्त्री चुनिए। यसपछिका दिनहरूमा उनले केन्द्र समक्ष आफ्ना मागहरूमध्ये पहिलो माग नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यतालाई राखेको देखिन्छ। यसपछि भाषा मान्यता आन्दोलनमा उत्साह थपिएको पाइन्छ। केन्द्रमा मुरारजी देसाई सरकारको पतनपछि १९८४ मा श्रीमती इन्दिरा गान्धीको सरकार केन्द्रीय सत्तामा आयो। यसपछि भाषा मान्यताको आन्दोलनलाई अझ बलियो पार्न भारतका तत्कालीन प्रधानमन्त्रीको ध्यान आकर्षित गराउन अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको आयोजनामा ७ र ८, १९८१ मा “दिल्ली जाउँ अभियान” प्रारम्भ भएको देखिन्छ। यस अभियानमा पूर्वाञ्चलबाट सबैभन्दा बढी प्रतिनिधिहरू दिल्ली पुगेका हुन्। असमबाट मात्र साढे तीन सय प्रतिनिधिहरू भाग लिएको देखिन्छ। दिल्लीको वोटक्लवमा अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको आह्वानमा १३ हजारभन्दा बढी सङ्ख्यामा भाषा सङ्ग्राममा भेला भएको

उल्लेख पाइन्छ (नेवार, १९९७ : ८८) । बोट क्लवको विराट जनसभामा भारतका विभिन्न विद्वान् वक्ताहरूले नेपाली भाषा मान्यता सम्बन्धी आ-आफ्नो वक्तव्य राखेको देखिन्छ । यसपछि भाषा मान्यता सम्बन्धी प्रधानमन्त्री समक्ष स्मारक पत्र चढाएको पुष्टि हुन्छ (नेवार, १९९७ : ८८) । १९८४ को मध्यसम्म इन्दिरा सरकारले भाषा मान्यता सम्बन्धी प्रश्नलाई वेवास्ता गरेको छ । उक्त सरकारले प्रगतिशील भाषाहरूको विकास मात्र गर्ने सिद्धान्त लिएको देखिन्छ ।

१९८४ अक्टोबर २९ मा भाषा समितिको एउटा वरिष्ठ टोलीसँग सिक्किमका राज्यपाल कोण प्रभाकर रावले सरकारको सिद्धान्त जनाएर सोही अनुरूप चल्ने निर्देश जारी गरेको देखिन्छ । यसरी भाषा मान्यता सम्बन्धी कुनै काम नहुने भएपछि "नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यता नभएसम्म भारतका नेपालीहरू आफ्नो भाषाको विकासमा मात्र सन्तुष्ट रहने छैनन् भन्ने प्रेमकुमार आलेको सिद्धान्तमा अडिग रहेको देखिन्छ । यसैबीच १९८४ को ३१ अक्टोबरका दिन भारतकी प्रधानमन्त्री श्रीमती गान्धीको निर्मम हत्याले भाषा मान्यता आन्दोलनलाई ठूलो घात पुऱ्याएको देखिन्छ ।

भाषा आन्दोलन चलिरहेकै बेला १९८६ अप्रिल १३ देखि दार्जिलिङमा गोर्खा ल्याण्ड आन्दोलन चरममा पुगेको देखिन्छ (नेवार, १९९७ : ५८८) । माटो र भाषाको आन्दोलन मुद्धिने सम्भावना देखिएकाले नेपाली भाषा मागको काम अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिले गर्ने र गोर्खा राष्ट्रिय मुक्ति मोर्चा (गो.रा.मु.मो.) ले भाषा समितिलाई सहयोग पुऱ्याउने छ भन्ने आश्वासन गो.रा.मु.मो. का अध्यक्ष सुभाष घिसिङले गरेको पुष्टि हुन्छ (नेवार, १९९७ : ८९) । यसै बीच सरकारसँग गो.रा.मु.मो. को वार्ता हुने भएपछि गो.रा.मु.मो. ले माटोको समस्यासँग भाषाको माग पनि राख्ने विचार प्रकट गरेको देखिन्छ । १९८६ को जुलाई १९ का दिन अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिले नेपाली भाषाको माग गो.रा.मु.मो. ले राख्न सक्छ भनी लिखित पत्र गो.रा.मु.मो. को अध्यक्षलाई अर्पित गर्‍यो (नेवार, १९९७ : २५) । तर १९८७ को जुलाई २२ मा तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजिव गान्धीसँग दार्जिलिङ समस्या समाधानको माग राख्दा नेपाली भाषाको सट्टा गोर्खा भाषाको माग गरेपछि देशभरिका नेपाली भाषा समिति र गो.रा.मु.मो बीच मनोमालिन्य भएको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९४) ।

१९८८ को २२ जुलाईमा कलकत्तामा भएको सम्झौताले माटाको समस्या समाधान भयो । सरकारले गोर्खाल्याण्डको सट्टा दार्जिलिङ गोर्खा पार्वत्य परिषद् भनेर यसलाई नामकरण गर्‍यो र १९८८ को २३ अगस्तमा दिल्लीमा भएको द्विपक्षीय सम्झौताले नेपाली भाषा मान्यता आन्दोलनको ३२ वर्षको परिश्रम लथालिङ पारिदिएको पुष्टि हुन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९४) । यस सम्झौतामा नेपाली भाषा मान्यताको सट्टा त्यसको साहित्य परम्परालाई विकास गर्ने सरकारको सिद्धान्तलाई गोर्खा राष्ट्रिय मुक्ति मोर्चाका नेतालाई

मान्न लगाई हस्ताक्षर लिएको अभिलेखमा पाइन्छ (क्षेत्र, २०११ : १९४) । यस घटनाले नेपाली भाषाप्रेमीहरूलाई मर्माहत तुल्याएको पाइन्छ ।

गोर्खा राष्ट्रिय मुक्ति मोर्चाको नेपाली भाषाप्रतिको त्यो व्यवहारले भाषा आन्दोलन गर्ने सङ्घ संस्थाहरूमा शिथिलता ल्याइदिएको देखिन्छ । त्यसबेला पूर्वाञ्चल असममा विदेशी बहिष्कार आन्दोलन चरमसीमामा पुगेको पाइन्छ । भाषाले मान्यता नपाएर त्यसै मार्मिक बनेका नेपालीहरूलाई विदेशी बहिष्कार आन्दोलनले डर र त्रासमा एकैचोटि होमिदिएको पाइन्छ । नेपालीका जग्गा जमिन खोसिने, आगो लगाउने जस्ता घटनाहरू देखिन थालेका छन् । यस्तो स्थितिमा नेपाली भाषा मागको आन्दोलन गर्नु असम वासीहरूका निम्ति जोखिमपूर्ण रहेको छ । त्यसले गर्दा अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको काममा शिथिलता देखा पर्‍यो । असममा भाषा समितिको काम गर्न गाह्रो भएकाले र दार्जिलिङको पनि त्यस्तो व्यवहारले भाषा समितिको कार्य गर्न गाह्रो भएको देखिन्छ । १९८९, १-३ मईमा भाषा समितिको सातौँ अधिवेशन देहरादुनमा गरी भाषा समितिको केन्द्रीय कार्यालय देहरादुनमा सारियो, तर त्यस बेलासम्ममा देशभरि गोर्खा भाषा र नेपाली भाषाको विवाद आरम्भ भइसकेको देखिन्छ (नेवार, १९९७ : ९०) ।

यस्तो संकटकालीन समयमा नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यतालाई नै मुख्य उद्देश्य बनाएर गान्तोकमा ११ र १२ जुन, १९९० मा अखिल भारतीय नेपाली भाषा सम्मेलनको आयोजना गरेको देखिन्छ (नेवार, १९९७ : ९०) । उक्त सम्मेलन भाषाप्रेमी मुख्यमन्त्री नरबहादुर भण्डारीको प्रयासमा सम्पन्न भएको थियो । यस सम्मेलनले 'भारतीय नेपाली राष्ट्रिय परिषद्' भन्ने संस्थालाई जन्म दियो । सिक्किमका मुख्यमन्त्री नरबहादुर भण्डारीलाई परिषद्को अध्यक्षको अभिभारा अर्पण गरिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९५) । यो परिषद्ले भाषा समितिले गरेका कार्यलाई तन, मन, धनले विकास गर्दै लग्यो । असमबाट भाषाका निम्ति आत्मादाह गर्ने घोषणा पनि भयो । १७७ औँ भानु जयन्तीलाई भारतीय नेपाली राष्ट्रिय परिषद्ले 'एकता दिवस' को रूपमा पालन गर्ने आह्वान गरेको पुष्टि हुन्छ । समस्त भारतीय नेपालीहरूले १७७ औँ भानु जयन्तीलाई भारतीय नेपाली भाषा एकता दिवसका रूपमा पालन गरेको अभिलेखहरूबाट पुष्टि हुन्छ (नेवार, १९९७ : ९०) ।

१९९०, २५-२७ मार्चका दिनहरूमा प्रधानमन्त्री र विपक्षका नेताहरूसँग भाषा समितिको शिष्ट मण्डलको भेटवार्तामा भाग लिने मुख्य रूपमा भाग्सु हिमाचल प्रदेशका श्यामकुमार गुरुङ भएको जानकारी पाइन्छ । १९९० जुलाईमा हिमाचल पञ्जाब गोर्खा एसोसिएसनद्वारा नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यताको लागि भारत सरकारलाई मागपत्र चढाएको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९३) ।

सिक्किममा गठन भएको भारतीय नेपाली राष्ट्रिय परिषद्का अध्यक्ष सिक्किमका मुख्यमन्त्री नरबहादुर भण्डारीको नेतृत्वमा १९९० को सेप्टेम्बरका दिन ५० जना विभिन्न राजनैतिक दलका लोक सभा संसद र ३६ जना राज्य सभा संसदहरूको संयुक्त हस्ताक्षरमा नेपाली भाषाको संवैधानिक माग तत्कालीन प्रधानमन्त्री भी.पी. सिंह समक्ष राखेको अभिलेख पाइन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९५) । भी.पी. सरकारले यस विषयमा विधेयक ल्याइनेछ भन्ने सरकारी आश्वासन दिएको थियो तर यसै बीच भी.पी. सिंह सरकारको पतनले पुनः भाषा आन्दोलन रोकिएको देखिन्छ । त्यसपछि सन् १९९१ मा केन्द्रमा चन्द्रशेखरको प्रधानमन्त्रीत्वमा सरकार गठन हुन पुगेको र नयाँ सरकार समक्ष भारतीय नेपाली राष्ट्रिय परिषद् र अखिल भारतीय नेपाली भाषा समितिको संयुक्त टोलीले १९९१, १९ फेब्रुअरीका दिन प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखरलाई स्मारक पत्र चढाएर माग दोहोर्‍याएको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९५) ।

१९९१, ९ सेप्टेम्बरका दिन सिक्किम सङ्ग्राम परिषद्को लोक सभा संसद श्रीमती दिलकुमारी भण्डारी र राज्य सभाका संसद कर्मा ताप्छेनले आफ्ना संयुक्त हस्ताक्षरमा नेपाली भाषालाई अष्टम अनुसूचीमा शीघ्र मान्यता दिइयोस् भनी देशभरिका ३१ राजनैतिक दलका नेता तथा लोक सभाका र राज्य सभाका एक सय चारजना सांसदहरूको हस्ताक्षर बटुलेर प्रधानमन्त्री पी.भी. नरसिंह रावलाई स्मारक पत्र चढाउँदै सङ्ग्रामी माग राखेको देखिन्छ ।

४.४ संविधानमा नेपाली भाषालाई मान्यता

१९९२, २८ फेब्रुअरीका दिन नेपाली भाषा मान्यता सम्बन्धी आन्दोलन सदन बाहिर र सदन भित्र जारी देखिन्छ । सिक्किमकी सांसद श्रीमती दिलकुमारी भण्डारीले आफ्नो बिल संसदमा पेस गरिन । दिलकुमारी भण्डारी र दार्जिलिङका राज्य सभाका सांसद श्री आर.बी. राईले विभिन्न राजनैतिक दलका सांसदहरूको समर्थन जुटाएर सदनको वर्षाकालीन सत्रमा विधेयक ल्याउन प्रयासरत देखिन्छन् । यसरी सदनको वर्षाकालीन सत्रको अन्तिम दिन १९९२, २० अगस्तको अधिल्लो दिन संसद बडो तनावग्रस्त देखिएको छ । यस बीच दार्जिलिङबाट निर्वाचित सांसद श्री इन्दरजीत खुल्लरले नेपाली भाषाको विरोध गर्दै यसलाई विदेशी भाषा भनेकोमा समग्र सदन नै उत्पन्न भई उठेको अभिलेखमा उल्लेख पाइन्छ । श्रीमती भण्डारीले तुरुन्तै खुल्लरले भनेको कुरालाई प्रतिवाद गर्दै आमरण अनशनमा बस्ने धम्की दिएको पाइन्छ ।

राज्यसभा र लोकसभा दुवै सदनका सांसदहरू बीच नेपाली भाषाको विषयमा चर्चा भएको छ । १९९२, ७ अगस्तको दिन लोक सभामा गृह राज्य मन्त्री श्री एम.एम. जेकबले भाषा विधेयक ल्याइने आश्वासनको आधारमा त्यस दिन दिलकुमारी भण्डारीले आफ्नो निजी विधेयक फिर्ता लिएको देखिन्छ । लोकसभा सर्वप्रथम मार्क्सवादी कम्युनिष्ट संसदीय दलका नेता श्री सोमनाथ चटर्जीले नेपाली भाषाको प्रसङ्ग उठाएर केन्द्र सरकार माथि अभियोग लगाउँदै “जब सबै राजनैतिक दलहरू नेपाली भाषाको समर्थनमा छन् भने सदनमा विधेयक

नल्याइएको कारण खुलस्त पार्नुपर्छ” भनेर आवाज उठाएको देखिन्छ । यसै प्रयासमा दिनांक १९९२, २० अगस्त १९९२ को दिन विधेयक ल्याइएन भने सदनभित्र नै कुनै उग्र प्रकारको कार्यक्रम ल्याउन राई र भण्डारी तत्पर देखिन्छन् (गुरुङ, २००४ : ४६) । १९९२ को २० अगस्त वर्षाकालीन सत्रको अन्तिम दिन संसदमा जाने नियमित समयभन्दा केही समय अघि नै सांसदद्वय सदनमा पुग्दछन् । दुवैजना तनाउग्रस्त अवस्थामा समयको अग्रगतिप्रति सचेत देखिन्छन् । २० अगस्तका दिन बहस हुने ३७ वटा विषयहरू मध्ये २२ देखि ३० सम्म विभिन्न सरकारी विधेयकहरू माथि बहस गरी पारित गर्नु पर्ने वैधानिक कार्य भने छुट्याइएको छ । तर त्यसमा नेपाली भाषा विधेयक विषयमा कुनै उल्लेख नदेख्दा भण्डारी चिन्तित हुँदै कार्यसूचीमा नपरेको विषय अवश्यै विधेयकको रूपमा ग्रहण गरिदैन भन्ने निष्कर्षमा पुगेपछि भण्डारी लोक सभा अधिल्तिर धरनामा बसको देखिन्छ । उनी उत्तेजित र आक्रोशित भएको कुरा अभिलेखबाट पुष्टि हुन्छ (गुरुङ, २००४ : ४७) । अन्त्यमा सदन नेपाली भाषाको विधेयक ल्याउन बाध्य भएको र कसैको विना विरोधमा ३२३ मतद्वारा नेपाली भाषालाई राष्ट्रिय भाषाका रूपमा स्वीकृत गरेको पाइन्छ ।

यसरी नेपाली भाषाको संवैधानिक मान्यता दिलाउन सरकारी संविधान संशोधन विधेयक १९९२ लाई लोक सभाले ३४३ मतले र राज्य सभाले पनि १३० को पूर्ण मतले स्वीकृत दिएको देखिन्छ (क्षेत्री, २०११ : १९६) । भारतीय संविधानको ७१ औं संशोधनद्वारा नेपाली भाषालाई आठौं अनुसूचीमा एघारौं स्थान प्राप्त भएको छ । उक्त विधेयकलाई ३१ अगस्त १९९२ का दिन माननीय राष्ट्रपति महोदयले स्वीकृति दिएको र १ सेप्टेम्बर १९९२ दिन गेजेट नोटिफिकेशन (राजपत्र) मा प्रकाशित भएको देखिन्छ । नेपाली भाषाको विल लोक सभाबाट स्वीकृत हुने समयमा राज्य सभाला पनि दार्जिलिङकै सदस्य आर.बी. राईले महत्त्वपूर्ण भूमिका खेलेको अभिलेखमा उल्लेख छ (क्षेत्री, २०११ : १९६) । नेपाली भाषाले स्वीकृत पाएपछि नेपाली भाषामै पहिलो पल्ट राज्य सभाको उपाध्यक्षलाई तथा सदस्यहरूलाई धन्यवाद टक्याइएको देखिन्छ ।

नेपाली भाषाले मान्यता पाएपछि सारा भारतवर्षमा हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण देखिएको छ । १९५६ मा आनन्दसिंह थापाबाट आरम्भ भएको भाषा आन्दोलन श्रीमती भण्डारीमा आएर समाप्त भएको छ । यस भाषा आन्दोलनले छत्तीस वर्षको लामो यातना भेलेको देखिन्छ । यसमा संलग्न भएका संस्थाहरू अखिल भारतीय नेपाली भाषा समिति (१९७२) असम गोर्खा सम्मेलन, संयुक्त तथा सर्वदलीय भाषा मान्यता समिति, असम नेपाली छात्र सङ्घ, नेपाली साहित्य सम्मेलन, नेपाली भाषा मान्यता सङ्घर्ष समिति (१९७०), पूर्वाञ्चल नेपाली विद्यार्थी सङ्घ (१९७०), शिलङ नेपाली साहित्य सृजन समिति, नेपाली साहित्य परिषद्, अखिल शिलङ नेपाली विद्यार्थी सङ्घ, भानु जयन्ती कमिटी, गोर्खा एसोसिएशन आदि छन् र यिनको प्रयासमा नेपाली भाषाले मान्यता पाउन सफल भएको देखिन्छ ।

४.५ निष्कर्ष

असम बहुजाति र बहुभाषिक प्रान्त हो । यहाँका भाषा साहित्यमा नेपाली भाषा साहित्यको विशिष्ट स्थान रहेको छ । विभिन्न पेसा र व्यवसायका निम्ति असम प्रवेश गरेका नेपालीहरूले मौखिक साहित्यसँगै लिखित साहित्यको अभ्यास गरेको देखिन्छ । असमेली नेपाली कविताको अहिलेसम्म प्राप्त कविता १८९३ को तुलाचन आलेद्वारा लिखित 'मणिपुरको लडाइँको सवाइ' काव्य हो । यसपछि असममा निरन्तर काव्य लेखन र भाषिक आन्दोलन भएको पाइन्छ । भारतको स्वतन्त्रतापछि स्थानीय भाषाहरूले पठनपाठनको मान्यता प्राप्त गर्ने क्रममा नेपाली भाषाले पनि मान्यता प्राप्त गरेको छ । भारतीय भाषाहरूको मान्यता प्राप्त गर्न असमेली नेपालीहरूले सङ्घर्ष गर्नु परेको र धेरै पछि अर्थात् अगस्ट २०, १९९१ मा नेपाली भाषाले भारतीय संविधानको आठौँ अनुसूचीमा स्थान पाएको हो । नेपाली भाषाको विकास र विस्तारसँगै राजनीतिक रूपमा नै मान्यता प्राप्त भाषाका रूपमा नेपाली भाषाले सम्मान पाएको छ । यसले नेपाली साहित्यको विकास र विस्तारमा विशेष सकारात्मक हौसला थपेको छ ।

सन्दर्भग्रन्थ

१. उपाध्याय, भीमकान्त(१९८३), सरसर्ती पद्दा, गुवाहाटी: नयाँ घुम्ती प्रकाशन,
२. गुरुङ, शिशिर कुमार(२००८), नेपाली भाषा आन्दोलन, असम, दार्जिलिङ: रोदी घर प्रकाशन।
३. क्षेत्री, लीलबहादुर(२०११)
४. नेवार, चन्द्रकला(१९९७), परिषदपत्र, गुवाहाटी: पङ्कज पल्लव प्रकाशन।
५. क्षेत्री, लीलबहादुर(१९९९), झ्याउरे पार्टीमा लाग्दा, दो.सं. गुवाहाटी: पङ्कज पल्लव प्रकाशन।
६. शर्मा अविकेशर(२०११), 'असममा नेपाली पठनपाठन एक दृष्टि', सभापत्रिका, तेजपुर: अ.ने.सा.स.पु. १४९।
७. शर्मा टीकाप्रसाद(१९९६), लोहित तेजपुर: मित्रदेव शर्मा।
८. गुहा, अमलेन्दु(१९७१), प्लेन्टार राज टु स्वराज, नई दिल्ली: इण्डियन काउन्सिल अफ हिस्टोरिकल रिसार्स, पृ. ४७।
९. घिमिरे, दुर्गाप्रसाद, (१९८३), धुकधुकी, तेजपुर: विद्यादेवी।
१०. सुवेदी, प्रेमसिंह(१९८४), असमका पशुपालक र दुग्ध व्यवसाय वर्गको ऐतिहासिक वृत्तान्त, गुवाहाटी, साहित्य निकेतन।
११. उपाध्याय विष्णुलाल, श्री नन्दलाल उपाध्याय खेत विप्लव, तेजपुर, अन्नपूर्णदेवी।
१२. जैसी श्यामराज(१९९०) असमका नेपालीहरूको ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: डिगबोई बोधकुमारी स्मृति प्रकाशन।
१३. थापा, रूपमान(२००८) अखमर तलुवा नेपाली समाज, दो.स. डिगुगढ: कौस्तुभ प्रकाशन।
१४. अलि प्रोफेसर एम.एस.(१९८१) पुरान्स पिपल्स, नई दिल्ली पब्लिसिङ हाउस।
१५. दुङ्गेल, विपिनदेव(सम्पा.)
१६. हाजारिका, लखेश्वर(१९७१), असमिया जातीय चेतनार प्रतिक श्री छविलाल उपाध्याय, सात दिनिया नागरिक डिसेम्बर, पृ. ३।
१७. नाथ, लिपिता(१९७७) नेपाली इन आसाम हियार दे विल,, एडिटेड थापा एन्ड क्षेत्री, असम।

साहित्यकार परिचय

मोहनप्रसाद दाहाल(मोहन पी. दाहाल)

| | |
|------------------------------|---|
| जन्म साल | २२.१०.१९५७ |
| जन्म स्थान | जम्मू काश्मीर |
| पिता-माता | स्व०रविलाल दाहाल र यशोदा देवी दाहाल |
| शिक्षा | एम.ए.पीएच.डी |
| पेशा | अध्यापन सिलगढी कमर्स कलेज(१९८०-८१) दार्जिलिङ्गस रकारी कलेज(१९८२-८६) |
| पद | प्रोफेसर उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय(१९८६ देखि) |
| प्रथम प्रकाशित रचना | इन्द्रधनु(कविता, इन्द्रधनु अङ्क १वर्ष २ सन् १९७३) |
| मौलिक | प्रस्फुटन(विविध विषयक, संयुक्त लेखन, सन् १९८०)२. लेख-प्रलेख(अनुसन्धानमूलक लेख सङ्ग्रह,सन्१९९२)३. आधुनिक नेपाली उपन्यास(समीक्षा, सन् १९९३)४. केही अध्ययन पत्रहरू(अनुसन्धानमूलक, सन् १९९३) ५. झुकदै नझुकने पहाडको छोरो(जीवनी, सन् १९९९) ६. गणेशलाल सुब्बा:व्यक्तित्व र कृतित्व, सन् १९९९) ७. नेपाली भाषा आन्दोलनमा रतनलाल ब्राह्मणको भूमिका, सन् २०००) ८. दार्जिलिङ्गको नेपाली उपन्यास:परम्परा र प्रवृत्ति(शोध, सन् २००१) |
| सम्पादन पुस्तक, पत्रपत्रिका: | १. हाम्रा संस्था:एक विचार१९९६ २. दार्जिलिङ्गको सानो रेल(निबन्ध सङ्ग्रह,लेखक एस.एन.छेत्री, सन् १९९६) ३. गणेशलाल सुब्बाका साहित्यक समालोचना र अन्य लेखहरू, सन् २००० ४. रूपनारायण सिंहका प्रबन्ध र सम्पादकीय लेखहरू, सन् २००० ५. इतिहासको दर्शन(लेखक गणेशलाल सुब्बा, सन् २००६ ६. गैसफमा रतनलाल ब्राह्मण(लेखक बट्टीनारायण प्रधान, सन् २००९ ७. नर्थ पोइन्ट(सन्त जोसेफ कलेजको वार्षिक नेपाली पत्रिका, सन् १९७५-७७ ८. हिमाली आभा (समाचारपत्र,सिलगढी, सन् १९८२) ९. मनन (साहित्यिक पत्रिका,दार्जिलिङ्ग, सन् १९८२) १०. भाषा-सङ्घर्ष(सामयिक,सिलगढी, सन् १९९२) ११. स्मारिका(रतनलाल ब्राह्मण सालिग निर्माण समिति, सन् २००२) १२. समारोह समिधा(सिलगढी,सन् २००३) १३. नेपाली जर्नल(नेपाली विभाग उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय, सन्२००२) १४. नेपाली आदिकवि जर्नल(उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय, सन् २००६ देखि) |
| संलग्नता | १. नेपाली साहित्य प्रचार समिति,सिलगढी(सदस्य र परीक्षा सचिव) २. अखिल भारतीय नेपाली भाषा सङ्घर्ष समिति(अध्यक्ष,सन् १९९०-९२) ३. भारतीय नेपाली राष्ट्रिय परिषद्(क्षेत्रीय प्रतिनिधि सदस्य,सन् १९९०-९२) ४. उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय नेपाली अकादमी(सचिव)५. मङ्गल माइती पब्लिक च्यारिटेबल ट्रस्ट, सिलगढी(आजीवन सदस्य) ६. गोर्खा दुख निवारक सम्मेलन,दार्जिलिङ्ग(आजीवन सदस्य) ७.युनिभर्सल पीस फेडरेसन(शान्तिदूत) |
| निवास | मोताजोटे,गौचरण, मतिगडा, दार्जिलिङ्ग- १० |
| सम्पर्क | फोन ६२९४१८०५९८, ईमेल:mohanpdahal.nbu@gmail.com |

सञ्जय बान्तवा (राई)

जन्मस्थान : नागरी फार्म, दार्जिलिङ, भारत

शिक्षा : एम ए पिएच डी

साहित्य लेखनमा रूचिको क्षेत्र : कविता, समालोचना

प्रकाशित कृति : १. विसंगतिमा भिक्टिमस कविताहरू (कविता सङ्ग्रह सन् १९८९) २. मोहदंश (कविता सङ्ग्रह सन् १९९१) ३. महाभिनिष्क्रमण (कविता सङ्ग्रह सन् १९९४) ४. शब्ददाह (कविता सङ्ग्रह सन् २००४) ५. त्यो गाउँ त्यो बस्तीमा (कविता सङ्ग्रह सन् २००७) ६. कविताको सन्दर्भ (समालोचना सङ्ग्रह सन् २०१२) ७. समीक्षण (समालोचना सङ्ग्रह सन् २०१३) ८. आवर्त काल (समालोचना सङ्ग्रह सन् २०१५)

सम्पादन : १. लालिमा (त्रयमासिक साहित्यिक पत्रिका, सन् १९८५) २. गोर्खाथुम (विविध विषयक पत्रिका, सन् १९८६)

३. पानिस एण्ड केमेलियाज (दार्जिलिङ सरकारी महाविद्यालयको मुखपत्र, सन् १९८८) ३. सङ्क्रमण (सङ्क्रमण कविता लेखन-आन्दोलनको घोषणा-पत्र, सन् १९९३-१९९८) ४. रचना (भारतको पहिलो रङ्गीन विविध-विषयक पत्रिका, सन् २००५-२००९)

सम्मान पुरस्कार : १. युगपरिवोध गिरी पुरस्कार (युगपरिवोध साहित्यिक संस्थान, दार्जिलिङद्वारा प्रदान, सन् १९९२)

२. देवकोटा शताब्दी सम्मान (त्रिमुर्ति निकेतनद्वारा स्थापित महाकवि लक्ष्मीप्रसाद ३. देवकोटा शताब्दी सम्मान समारोह समिति, काठमाडौँद्वारा, सन् २०१०) ४. भानुभक्त द्विशतवार्षिकी सम्मान (संस्कृति मन्त्रालय नेपाल सरकार, नेपाल, सन् २०१३) ५. नक्षत्रवल्लभ पुरस्कार (नक्षत्रप्रकाशन, काठमाडौँ, नेपाल सन् २०१४) ६. भाषा सम्मान (गोर्खाल्याण्ड क्षेत्रीय प्रशासन, दार्जिलिङ, सन् २०१५) ७. भारतीय भाषा सम्मान (हिन्दूस्थान समाचार लखनऊ-वाराणसी, सन् २०१५) ८. विशिष्ट शिक्षक सम्मान (शिक्षा सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय र मैत्रेयी भवन वाराणसी, सन् २०१६) सम्प्रति : अध्यापन, भारतीय भाषा विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (सन् १९९८ – २०१८)

अध्यापन, नेपाली विभाग, उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय, दार्जिलिङ (सन् २०१८-)

सम्पर्क : नेपाली विभाग, उत्तर बङ्ग विश्वविद्यालय, दार्जिलिङ- ७३४ ०१३

मोबाइल नम्बर : ०९४५०५३२९८९, ९४५५०४६५८९

ईमेल : sanjaybantawa@gmail.com

खेमराज नेपाल

जन्म साल सन् १९५८

जन्म स्थान तेलेनी गाउँ, शोणितपर

पिता-माता कृष्णप्रसाद नेपाल र कौशिल्या देवी

शिक्षा एम.ए.पीएच.डी

पद नेपाली परामर्श, साहित्य अकादमी नयाँ दिल्ली

प्रथम प्रकाशित रचना यहीं जन्मेका हौं भनी अब चिन्हारी दिनुपर्यो (सन् १९८४ मा असम गोर्खा बुलेटिन)

मौलिक प्रकाशित कृतिहरू १. मेरो सेश हिजो आज र भोलि (खण्डकाव्य सन् १९९३) २. नेपाली लोक साहित्यको रूपरेखा (सन् २००३) ३. भाषा र साहित्यका केही पक्ष (सन् २००६) ४. केही कृति ; केही आकृति (सन् २०१६) ५. अविनाशी (संस्कृतबाट नेपालीमा अनुवाद, सन् २००५) ६. पूर्वाञ्चल भारतको नेपाली साहित्यको इतिहास (प्रकासोन्मुख साहित्य अकादमी) ७. असमीया-नेपाली जनजीवन (असमीया, सन् २०१४) ८. असमीया आरू नेपाली भाषा तुलनात्मक अध्ययन (असमीया, सन् २०१६)

सम्पादन पुस्तक, पत्रपत्रिका: १. विश्वनाथ (साहित्य परिषदको मुखपत्र, सन् १९९१) २. विष्णुलाल उपाध्याय व्यक्ति र कृतित्व एक सङ्कलन, सन् २००४) ३. विष्णुलाल त्रिद्वैत (सन् २००८) ४. हिस्ट्री एण्ड कलचर अफ आसामिज-नेपाली (सन् २००९) ५. पूर्वाञ्चलीय वैदिक सम्मेलन स्मृतिग्रन्थ (सन् २०१२) ६. नेपाली सांस्कृतिक शब्दकोश (सन् २०१३) ७. पूर्वाञ्चलीय नेपाली निबन्ध

| | |
|----------|---|
| | यात्रा(सन् २०१३)८.स्व.रामचन्द्र शास्त्रीको डाक स्व.नरपति उपाध्यायको एटमबम(खण्डकाव्य,सन् २०१४)९.नन्द भट्टराई रचना सङ्कलन(सन् २०१५)१०.मणिसिंह गुरुङद्वारा सम्पादित गोर्खासेवकको सङ्कन र सम्पादन(सन्२०१६)११.चारालि उच्चतर माध्यमिक तथा बहुमुखी विद्यालय स्मृति ग्रन्थ(असमिया सन्२००५) १२. कालिपुखु माजलीया विद्यालय स्वर्ण जयन्ती स्मृतिग्रन्थ(सन् २००७)१३. असम जातीयतावादी युव छात्र परिषद स्मृतिग्रन्थ-युवक कल्लोल(सन् २०१३) |
| संलग्नता | १. साहित्य परिषद,विश्वनाथ, विश्वनाथ संस्कृति प्रतिष्ठान(सचिव, सन् १९८८-९६) २. सदस्य नेपाली साहित्य परिषद. ३. सदस्य असम गोर्खा सम्मेलन ४. सदस्य असम साहित्य सभा ५. कामरुप अनुसन्धान समिति |
| सम्मान | अविनाशी उपन्यासका लागि साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार(सन् २०११) असम सरकारले साहित्य पुरस्कार(सन् २०१४) |
| निवास | कालिपोखरी, डाक: बुढीगाड,विश्वनाथ चारालि,विश्वनाथ |
| सम्पर्क | फोन ८६३८२६७८४८ ईमेल: kherane@gmail.com |

टेकनारायण उपाध्याय

| | | |
|---------------------|---|--|
| माता-पिता | : | कृष्णलाल उपाध्याय र धनकुमारी उपाध्याय |
| जन्म | : | २१ जुलाई १९६९,नक्से शिलाड, मेघालय, भारत) |
| शिक्षा: | | एम०ए,पिएच डी |
| सामाजिक कार्य | : | लामो समयदेखि पाठ्यपुस्तक लेखन,प्रचार प्रसारमा संलग्न सचिव पाठ्यपुस्तक समिति शिलाड सहसचिव कोसेली साप्ताहिक प्रकाशन शिलाड, अजीवन सदस्य भागोप मेघालय |
| सम्प्रति | : | विभागाध्यक्ष बुद्ध भानु सरस्वती कलेज शिलाड, मेघालय |
| पहिलो रचना | : | विन्ती (कविता) सैनिक समाचार, नयाँ दिल्ली सन् १९९१ |
| प्रकाशित कृति | : | १. एउटा सहर (कविता सङ्ग्रह, सन, २०११), शिलाड -२। |
| लेखन / सम्पादन | : | १. सरल नेपाली साहित्य - भाग २,नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति, शिलाड-२ २. सरल नेपाली साहित्य - भाग ४ नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति,शिलाड-२ ३. माध्यमिक नेपाली साहित्य भाग १,नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति,शिलाड-२ ४. माध्यमिक नेपाली साहित्य -भाग ३,नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति, शिलाड-२ ५. माध्यमिक नेपाली साहित्य-भाग ५, नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति, शिलाड-२ ६. उच्चमाध्यमिक नेपाली साहित्य-भाग-१,नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशनसमिति,शिलाड-२ ७. स्नातकीय नेपाली साहित्य, नेपाली पाठ्यपुस्तक प्रकाशन समिति, शिलाड,सन् २०१५ |
| पत्रपत्रिका सम्पादन | : | १. सुमन २. युगान्तर ३. निव ४. सम्झौटो |
| सम्मान | : | १. सिक्किम साहित्य परिषद्वारा सम्मान। २. भानु पुरस्कार, शिलाड |
| निवास | : | ९ (A) झालुपाडा, शिलाड, मेघालय, भारत। |
| फोन | : | ०९१-९६१२८७४९२६, email : tnshillong@gmail.com |

खगेन शर्मा

असमको उदालगुडी जिल्लाको रौतामा ६ मार्च १९७१ मा जन्मिएका खगेन शर्मा(चम्लागाई) त्रिभुवन विश्वविद्यालयबाट नेपाली साहित्यमा एम.ए.पिएचडी गर्ने असमको दोस्रो व्यक्तिहुन्। नेपाली भाषा,साहित्य र संस्कृतको अध्ययन गर्ने खगेन शर्मा गुवाहाटी विश्वविद्यालयमा आधुनिक भारतीय भाषा तथा साहित्य अध्ययन विभागको तुलनात्मक भारतीय साहित्य भन्ने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रममा नेपाली भाषा-साहित्य-संस्कृति अध्यापन गराउने पहिलो अध्यापक हुन्। उनी गुवाहाटी विश्वविद्यालयकै दूर शिक्षा संस्थानको नेपाली स्नातकोत्तर विषयको संयोजक पनि थिए। धेरै प्राज्ञिक कार्यमा संलग्न रहेका शर्माका दुइवटा मौलिक किताब छन् भने धेरैवटा सम्पादित कीर्ति तथा पत्रिका छन् भने फुटकर रचना पनि धेरै छन्। उनी विभिन्न सामाजिक तथा साहित्यिक सङ्गठनसित संलग्न छन्,

सम्पर्क ८०११५-८६१४०,

khagen.Sharma@gmail.com

दैवकी देवी

जन्म सन् ३१.१२.१९६७
माता-पिता जमुना देवी सेढाई र केवलीप्रसाद सेढाई
जन्मस्थान: रौता मराधनसिरी,असम
शिक्षा: नेपाली एम०ए०,पिचडी
साहित्य लेखनमा रुचिको क्षेत्र: कविता, समालोचना
प्रकाशित कृति: १. तिम्रो स्थान कहाँ?(कविता सङ्ग्रह) सन् २०१०। २. घाम पानी घाम पानी स्यालको बिहे (कविता सङ्ग्रह) सन् २०१५। अप्रकाशित: १. सानु लामाको कथाकरिता शोधग्रन्थ। २. असमेली नेपाली कविता यात्रा पिएच डी शोधग्रन्थ। सम्पादन: १. संकृति सुषमा, सन् २०१०। २. अमृतावल्ली तिहार स्मृतिग्रन्थ
सम्मान पुरस्कार: १. मितेरी स्वागत सम्मान वि०स० २०६६।२. गोर्खा उन्नयन परिषदद्वारा अनुदान। ३. असम नेपाली साहित्य सभाद्वारा सम्मान। ४. नेपाल विद्याभूषण स्वर्णपदक। ५. महेन्द्र छात्रवृत्ति अनुदान
सम्प्रति: १. सहायक अध्यापक सतिया महाविद्यालय। २. विभागाध्यक्ष: चतिया कलेज, सोतिया विश्वनाथ
सम्पर्क: फोन: ९६१३७६५५६३ / ७००२८४१४ daibakidevi@gmail.com

GYANKUNJ

DISCLAIMER

**The responsibility for the facts and opinions
expressed rest with the contributors. Gyankunj
accepts no responsibility for it.**

